भाकृअनुप
ICAR

अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष 2016 को समर्पित

इक्षु

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 5 अंक 1
जनवरी-जून 2016

भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

2016 INTERNATIONAL YEAR OF PULSES

इक्षु-राजभाषा पत्रिका का "अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष-2016" को समर्पित विशेषांक

इक्षुः राजभाषा पत्रिका
वर्ष 5 : अंक 1
जनवरी–जून, 2016

इक्षु

संरक्षक एवं प्रकाशक
अश्विनी दत्त पाठक

सम्पादक
अजय कुमार साह

सह–सम्पादक
सुधीर कुमार शुक्ला
अरूण बैठा
एस. आई. अनवर
जी. के. सिंह
अभिषेक कुमार सिंह

कला एवं छायांकन
विपिन धवन
योगेश मोहन सिंह
अवधेश कुमार

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
ISO 9001 : 2008

© भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संस्थान अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अपने लेख एवं सुझाव भेजें :

संपादक, इक्षु एवं
प्रभारी, राजभाषा प्रकोष्ठ
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
पो. आ.: दिलकुशा, लखनऊ–226 002
ई–मेल : ikshuiisr@yahoo.in

वर्ष 2015–16: संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य

डा. अश्विनी दत्त पाठक	अध्यक्ष
डा. सुधीर कुमार शुक्ल	सदस्य
डा. वी. पी. सिंह	सदस्य
डा. (श्रीमती) राधा जैन	सदस्य
डा. महराम सिंह	सदस्य
डा. ए. के. सिंह (कृषि अभियंत्रण)	सदस्य
डा. एस. एन. सिंह	सदस्य
डा. एस. आई. अनवर	सदस्य
श्री रत्नेश कुमार	सदस्य
डा. जी. के. सिंह	सदस्य
श्रीमती आशा गौर	सदस्य
श्री अभिषेक कुमार सिंह	सदस्य
डा. ए. के. साह	सदस्य सचिव

प्रकाशक
निदेशक
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पोस्ट : दिलकुशा, लखनऊ 226 002
फोन : 0522–2480735 / 36, 37, फैक्स : 0522–2480738
ई–मेल : director.sugarcane@icar.gov.in
वेबसाइट : www.iisr.nic.in

अश्विनी दत्त पाठक
निदेशक

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002
ISO 9001 : 2008

निदेशक की लेखनी से.....

सर्वविदित है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा ने दिसम्बर 21, 2013 को ही वर्ष 2016 को अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष घोषित कर दिया था। अन्तर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष के मनाए जाने से दलहन फसलों खास तौर से चना, मसूर, राजमा तथा अन्य दालों के खाद्यान्न सुरक्षा में भूमिका की व्यापक स्तर पर जागृति आयी है। साथ ही यह एक ऐसा मौका भी है जिसमें विभिन्न संस्थाएं मिलकर दलहन फसलों को और बढ़ावा दे सकती हैं।

भारतवर्ष दलहनों का सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता तथा आयातक भी है। देश की खाद्यान्न सुरक्षा में दालें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। यह एक संयोग है कि अतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष में देश में दालों की कीमतों में वृद्धि हुई है। गरीबी रेखा के नीचे रह रहे लोगों के लिए दालों को खरीदना मुश्किल हो गया है। भारतवर्ष में दलहन फसलों की उत्पादकता अन्य विकसित देशों की तुलना में काफी कम है और यही कारण है कि भारतवर्ष को प्रतिवर्ष 4–5 मिलियन टन दलहन का आयात करना पड़ता है। देश में 22–23 मिलियन टन की दलहन खपत के सापेक्ष में मात्र 18 से 19 मिलियन टन दलहन उत्पादन ही होता है। वर्ष 2014–15 में भारतवर्ष को दलहन आयत के लिए 2.8 बिलियन डालर (लगभग 16800 करोड़ रूपये) खर्च करने पड़े। दलहनों के आयात को कम करने के लिए दो प्रकार की रणनीति अपनाए जाने की आवश्यकता है पहला उत्पादन का बढ़ाया जाना तथा दूसरा उत्पादकता का बढ़ाया जाना।

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ गन्ने की उत्पादकता बढ़ाने में शोधरत है और इसके लिए संस्थान में कई प्रौद्योगिकियाँ भी विकसित की गई है। ऐसी ही एक प्रौद्योगिकी गन्ना में दलहनों की अन्तःफसली खेती करना विकसित की गई है। संस्थान ने गन्ना में अन्तःफसली दलहन की खेती को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न मशीनें भी बनाई हैं जिनके प्रयोग से आसानी से गन्ने की दो पंक्तियों के बीच दलहन फसल की एक या दो पंक्तियों की बुआई की जा सकती है। अगर कृषक बन्धु गन्ने में दलहनों की अन्तःफसल की खेती करते हैं तो देश में दलहन उत्पादन बढ़ाने के लिए अतिरिक्त क्षेत्रफल उपलब्ध हो सकेगा। उपरोक्त तथ्यों के मद्देनजर अतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष 2016 के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संस्थान ने शोध एवं प्रसार का कार्य किया है तथा किसानों को विभिन्न प्रशिक्षण, भ्रमण एवं सर्वेक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से इस सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की गई है।

वर्तमान परिदृश्य में अन्तर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष – 2016 का भारत देश के संदर्भ में विशेष महत्व है। इन बातों का संज्ञान लेते हुए राजभाषा पत्रिका 'इक्षु' का यह अंक अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष – 2016 को समर्पित किया गया है। इस अंक के ज्ञान विज्ञान संभाग में ज्यादा से ज्यादा लेख दलहन से संबधित विषयों पर समाहित किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष – 2016 को समर्पित यह अंक दलहन उत्पादन तकनीकों एवं दलहन के पौष्टिक गुणों से संबंधित जानकारी को जन–मानस तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह अंक दलहन सम्बन्धित जानकारी जनमानस तक पहुँचाने के साथ–साथ इस पत्रिका के पाठकों के लिए रोचक एवं उपयोगी सिद्ध होगी।

लखनऊ

1 अगस्त, 2016

(अश्विनी दत्त पाठक)

डॉ. अजय कुमार साह
प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभारी, प्रसार व प्रशिक्षण
संपादक (इक्षु) एवं प्रभारी, राजभाषा प्रभाग प्रकोष्ठ

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002

'इक्षु–सार'

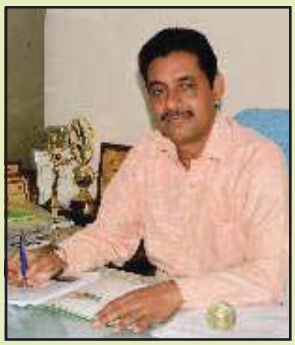

विश्व खाद्य संगठन ने वर्ष 2016 को अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष घोषित किया है। विश्व के सभी देशों की सरकारें, गैर सरकारी संगठन और सभी साझेदार संस्थाएँ एक–जुट होकर अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष– 2016 मना रहा है। इसका मुख्य उददेश्य दलहन के पौष्टिक गुणों के बारे में जन–मानस को जागरूक कर टिकाऊ खाद्य उत्पादन और खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करना है।

विश्व में दलहनी फसलों की खेती का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। वर्तमान में विश्व में लगभग 790 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में दलहनी फसलों की खेती की जाती है। दलहनी फसलों की खेती का मुख्य उददेश्य खाद्य सुरक्षा, कुपोषण को खत्म करके मानव स्वास्थ्य में सुधार लाना, विश्व भर में गरीबी कम करना तथा मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाकर कृषि को टिकाऊ बनाना है। दलहन की खेती कृषि, मानव स्वास्थ्य तथा पोषण सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के बावजूद इसके उत्पादन में गुणात्मक वृद्धि नहीं हुई है। वैश्विक स्तर पर पिछले पचास वर्षों में जहाँ एक तरफ धान, गेहूँ, मक्का, सोयाबीन इत्यादि फसलों के उत्पादन में 200 से 800 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है वहीं दूसरी ओर इसी समय अवधि में दलहन उत्पादन में सिर्फ 60 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। भारत विश्व में दाल के क्षेत्र में सबसे बड़ा उत्पादक, उपभोक्ता तथा आयातक देश है। पूरे विश्व का लगभग एक तिहाई दलहन की खेती तथा कुल दलहन उत्पादन का लगभग पाँचवा हिस्सा भारत में होता है। साथ ही ज्यादातर भारतीयों के शाकाहारी होने के कारण उनके भोजन में प्रोटीन का मुख्य स्रोत दाल है। इसके बावजूद भारत में दलहनी फसलों के उत्पादन में अन्य खाद्यान्न फसलों की तरह आशानुरूप वृद्धि नहीं हुई। हाल के वर्षों में दाल की आसमान छूते बाजार भाव के कारण गरीबों की थाली से दाल गायब होता जा रहा है जो कि अत्यंत चिंता का विषय है। पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार दलहनी फसलों की खेती को बढ़ावा देने का भरसक प्रयास कर रहा है और इसलिए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर दलहन उत्पादन की उन्नत तकनीकों का किसानों के खेतों पर प्रदर्शन कार्यक्रम चलाया जा रहा है। वर्ष 2016–17 के लिए सरकार द्वारा घोषित दलहन के न्यूनतम समर्थन मूल्य में भी उत्साहजनक वृद्धि हुई है। इन साकारात्मक उपायों से उम्मीद है कि आने वाले वर्षों में देश के अन्दर दलहन उत्पादन में आशातीत वृद्धि होगी तथा दूसरे देशों पर दाल आयात के लिए निर्भरता कम हो जायेगी।

राजभाषा पत्रिका 'इक्षु' के इस अंक को अन्तर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष – 2016 को समर्पित करते हुए हमें बहुत ही हर्ष की अनुभूति हो रही है। दलहन से सम्बधिंत विषयों पर आलेखों का समायोजन 'इक्षु' के इस अंक को कुछ खास एवं अलग बनाता है। कुपोषण एवं खाद्य सुरक्षा के लिए दलहन, विभिन्न दलहनी फसलों के उत्पादन की उन्नत तकनीकों, मृदा स्वास्थ्य के लिए दलहनी फसल, दलहन आधारित फसल विविधिकरण, गन्ने के साथ दलहनी फसलों की अन्तः खेती इत्यादि जैसे अति महत्वपूर्ण विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा लिखित आलेख इस अंक में समाहित किया गया है जो पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक तथा रूचिकर होगा। 'इक्षु' के अन्य अंकों की तरह इस अंक में भी राजभाषा प्रभाग तथा आमोद–प्रमोद सम्भाग में रूचिकर विषयों पर जानकारी प्रस्तुत किया गया है जो आप सभी पाठकों को पसंद आयेगा। 'इक्षु' के लेखकों तथा पाठकों द्वारा प्राप्त सहयोग के लिए उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि आगे भी ज्ञान की गंगा से मोती चुनकर 'इक्षु' के रूप में पिरो कर आपके समक्ष प्रस्तुत करता रहूँगा।

लखनऊ

1 अगस्त, 2016

(अजय कुमार साह)

इक्षुः राजभाषा पत्रिका
राजभाषा प्रकोष्ठ की अर्धवार्षिक पत्रिका
वर्ष 5 : अंक 1
जनवरी–जून, 2016

विषय वस्तु

राजभाषा प्रभाग 1–6

'विश्वभाषा' रूप में हिंदी की पुनर्रचना 1
सूर्यप्रसाद दीक्षित

सही हिंदी सीखना बहुत सरल है 4
श्रीराम महरोत्रा

संघ की राजभाषा नीति 6

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग 7–81

भारत में दलहन उत्पादन का वर्तमान परिदृश्य 7
ब्रह्म प्रकाश एवं अश्विनी कुमार शर्मा

अरहर उत्पादन में उन्नत तकनीक 18
एस.एस. सिंह

लाभकारी मूल्य प्राप्त करने के लिए दलहनों की प्रभावी विपणन व्यवस्था की भूमिका 20
अश्विनी कुमार शर्मा एवं ब्रह्म प्रकाश

खरीफ मूँग की उन्नत उत्पादन तकनीक 23
पंकज कुमार सिंह, राजीव कुमार सिंह एवं राम जीत

मक्का की वैज्ञानिक खेती 25
कार्तिकेय सिंह, भूपेन्द्र सिंह, मोनिका जायसवाल, मेघा विभूते एवं अजीत सिंह

जायद/ग्रीष्म कालीन मूंग एवं उर्द की उन्नत खेती 27
के.के. सिंह, वी.पी. सिंह एवं प्रसून वर्मा

चना उत्पादन की उन्नत तकनीक 30
एस.एस. सिंह

बाकलाः एक बहु–उपयोगी दलहनी फसल 32
डी. के. उपाध्याय, विनोद कुमार सिंह एवं सुरेश सिंह

दलहनी फसलें उगाओ–मृदा की उर्वरा शक्ति एवं उत्पादकता बढ़ाओ 34
ओम प्रकाश, मीना निगम, अशोक कुमार श्रीवास्तव, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल, वरूचा मिश्रा, पल्लवी यादव एवं अजय कुमार साह

दलहन आधारित फसल विविधीकरण का अधिक उत्पादन एवं मृदा उर्वराशक्ति बनाये रखने में योगदान 38
अनिल कुमार सिंह एवं मेंही लाल

मक्का की एकल क्रॉस संकर किस्मों का बीज उत्पादन 44
सोनी कुमारी, प्रांजल यादव, अवनि, ईश्वर सिंह

कुपोषण एवं खाद्य–सुरक्षा हेतु दलहन एक श्रेष्ठ समाधान 47
अनीता सावनानी, अल्का डेविड एवं अभिषेक कुमार सिंह

गन्ने में दलहनी फसलों की अन्तः फसली खेती : टिकाऊ खेती का आधार 49
अनिल कुमार सिंह एवं हरीश चन्द्र

गन्ना खेती में अन्तराक्षेत्रीय सम्बद्धता से जुड़े कतिपय महत्वपूर्ण पहलू 53
अश्विनी कुमार शर्मा एवं ब्रह्म प्रकाश

ताड़ (पाम) गुड़ 55
मीना निगम, ओम प्रकाश, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल, वरूचा मिश्रा एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

मीठी ज्वार उगाओ, भरपूर लाभ पाओ 57
राघवेन्द्र कुमार, ए. डी. पाठक एवं संगीता श्रीवास्तव

गन्ना उत्पादक देशों में मृदा की समस्याएँ और उनका गन्ने की उत्पादकता पर प्रभाव 58
वरूचा मिश्रा, सोमेन्द्र शुक्ल, अनीता सावनानी एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

भारतवर्ष में गन्ना प्रजातियों का विकास 63
संगीता श्रीवास्तव एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

पशुओं के नवजात बच्चों में खीस की उपयोगिता 66
अतुल कुमार सचान, ब्रह्म प्रकाश, अश्विनी कुमार शर्मा एवं मो. अश्फॉक खान

चारा एवं चारागाह फसलों में सूत्रकृमियों का प्रकोप और उनका निदान 70
राकेश कुमार सिंह

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन एवं प्रबंधन 72
कामता प्रसाद, कमला कान्त, गोपाल साँखला एवं निकिथा एल

फलोद्यानों में सघन बागवानी 75
वन्दना धामी, वी.पी. सिंह एवं सी.पी. सिंह

कृषि में जलवायु परिर्वतन का प्रभाव एवं निराकरण की पहल 79
यू.एस. गौतम, अतर सिंह, एस. के. दुबे, अजीत कुमार श्रीवास्तव एवं अवनीश कमार सिंह

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग 82–102

गन्ने में ग्रीष्मकालीन बेधकों का समेकित प्रबंधन 82
अरूण बैठा एवं एम आर सिह

दलहनी फसलों की कीटों से सुरक्षा 85
विनोद कुमार सिंह, ऋचा सिंह, डी. के. उपाध्याय एवं सुरेश सिंह

चने की फली बेधक की पहचान तथा नियंत्रण 93
यीतेश कुमार, एम. आर. सिंह, वाय.के. यदु, अनुप्रिया चंद्राकार, एम. पी. शर्मा एवं सन्तोष कुमार पांडेय

जैविक खेती में रोग नियंत्रण हेतु जैव नियंत्रकों का प्रयोग 96
दीक्षा जोशी एवं एस के अवस्थी

एकीकृत रोग–कीट नियंत्रण अपनाकर अरहर का अधिक उत्पादन लें 98
प्रदीप कुमार बरेलिया, राजेश कुमार पाण्डे एवं अजय कुमार

मधुमेह प्रबंधन में ''मूँग'' का योगदान 100
कामना तलरेजा एवं अनीता सावनानी

क्या है ट्राइको कार्ड? 101
राघवेन्द्र कुमार एवं संगीता श्रीवास्तव

आमोद–प्रमोद प्रभाग

डिजिटल लाइब्रेरीः ज्ञान का भंडार 103
आशीष सिंह यादव

पानी रे पानी 103
मिथिलेश तिवारी एवं एस.आई. अनवर

कविताएँ 104
एस.आई. अनवर

जन्म–मृत्यु–एक रहस्य 106
एम. सी. दिवाकर

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय –3), लखनऊ 107

शब्दकोश 108

आपके पत्र 113

समाचार प्रभाग 114

राजभाषा प्रभाग

'विश्वभाषा' रूप में हिंदी की पुनर्रचना

सूर्यप्रसाद दीक्षित
पूर्व प्राध्यापक, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विश्वभाषा का तात्पर्य है– वह भाषा, जो विश्व के कई देशों में व्याप्त होती है, जैसे अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन आदि। हिंदी को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि यह हिंदुस्तान के अतिरिक्त अनेक राष्ट्रों में प्रचलित है। देशान्तर के इन राष्ट्रों को तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं–

- भारतवंशी बहुल राष्ट्र, मुख्यतः हिन्द महासागर के वे द्वीप, जहाँ लगभग ड़ेढ सौ वर्ष पूर्व भारतीय मजदूर अंग्रेज शासकों के नियंत्रण में 'गिरमिटिया' मजदूर के रूप में लाये गये थे और वहाँ बस गये थे। ऐसे देश हैं–मारीशस, फिज़ी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद आदि। यहाँ भारतवंशियों की संख्या लगभग आधी है। इनकी हिंदी की अपनी अलग समस्याएँ हैं।
- भारत के पड़ोसी देश, जो पहले बृहत्तर भारत के अंग थे, जैसे–नेपाल, वर्मा, भूटान आदि। पाकिस्तान की भाषा भी यदि देवनागरी में लिख दी जाये तो हिंदी ही कही जाएगी। नेपाल शुद्ध हिंदीभाषी राष्ट्र है। इन सबमें हिंदी प्रचार के लिए एक विशिष्ट कार्यक्रम अपेक्षित है।
- आप्रवासी भारतीय समाज, जो इन दिनों यूरोप, अमेरिका और खाड़ी देशों में लाखों की संख्या में विद्यमान हैं। सम्प्रति इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, नार्वे, स्वीडन, सऊदी अरब, दक्षिण अफ्रिका आदि में सर्वत्र भारतीय भरे हुए हैं। भारत में जनसंख्या–विस्फोट, बढ़ी हुई बेरोजगारी, विदेशों में घटती जनसंख्या, जीविका के बेहतर अवसर आदि अनेक कारणों से भारतीयों का पलायन या प्रवजन पिछले दशकों में बढ़ा है और विभिन्न अवरोधों के बावजूद यह निरंतर बढ़ता रहेगा। इसलिए कि पश्चिमी देशों की अपनी विवशता है। वहाँ जन्म दर शून्य प्रतिशत पर पहुँच गयी है और मानव संसाधन का संकट उपस्थित हो गया है। मशीनों से कौतुक–वृत्ति भले शान्त हो जाये, पर सत्य यह है कि हर कार्य मशीनों के ही सहारे सम्भव नहीं हैं, इसलिए पश्चिमी देशों के निवासी अब अप्रवासी भारतीयों के स्वागत हेतु मजबूर हैं। अप्रवासी भारतीय हिंदी भाषी होने के साथ–साथ पंजाबी, गुजराती और तमिल भाषी आदि विदेश में सब हिंदी भाषी ही माने जाते हैं। भारत में चाहे जितना भाषा भेद हो, भारत के बाहर ये हिंदीमय हो जाते हैं। हिंदी वहाँ भारतीयता का पर्याय है। जैसे भारत में पंजाब, हिमांचल आदि क्षेत्रों में हिन्दुस्तानी का अर्थ होता है–गंगा–जमुना के मैदान के निवासी।

विदेशों में बसे हुए ये भारतीय नागरिक आर्थिक लाभ–लोभवश वहाँ रहने को बाध्य हैं पर उनकी जीवन–पद्धति को पूरी तरह आत्मसात नहीं कर पाये हैं। उन्हें द्वितीय कोटि की नागरिकता प्राप्त है। विदेशी वहाँ पर इनका उपयोग तो करते हैं पर बराबर का दर्जा नहीं देते। महत्वपूर्ण कार्य का श्रेय वे स्वयं लेते हैं और भर्ती वाला कार्य भारतीय डाक्टरों, इंजीनियरों एवं वैज्ञानिकों से करवाते हैं। यह बात दीगर है कि भारतमूल के डाक्टर व इंजीनियर वहाँ के स्वदेशी इंजीनियरों, डाक्टरों की तुलना में अपेक्षाकृत ज्यादा सफल हैं पर चिकित्सा विज्ञान और इंजीनियरिंग के आविष्कार क्षेत्र में वे प्रथम पंक्ति में नहीं पहुँच पाये हैं। विदेशों में सर्वाधिक खपत भारतीय कुशल श्रमिकों जैसे धोबी, बढ़ई, थवई आदि की है। यदि इन्हें इन देशों में स्थायित्व मिल गया तो कुछ ही वर्षों में वंशवृद्धि करके वे जनसंख्या का अनुपात उलट देंगे। खाड़ी देशो में अपार सम्पदा है किन्तु कार्मिकों का अभाव है। इनकी स्थानापूर्ति भारतीयों द्वारा हो रही है। यह हिंदी के विकास का एक शुभ लक्षण है। एक दिन ऐसा आयेगा जब शून्य प्रतिशत की जन्मदर वाले देशों में आप्रवासी भारतीय भर जायेंगे और हिंदी विश्व के अनेक क्षेत्रों में फैल जाएगी। ये आप्रवसी भारतीय चाहते हैं कि उनकी संतति पश्चिमी सभ्यता की चपेट में न आये बल्कि वे भारतीय संस्कृति से जुड़े रहें। भारतीय संस्कृति की संवाहिका संस्कृत, जो अब इनकी समझ से परे है। उसकी ज्येष्ठ एवं घनिष्ठ उत्तराधिकारिणी है हिंदी, जिसका प्रयोग बहुत सुगम है। प्रवासी भारतीयों का प्रयास है कि वे अपने–अपने देशों में हिंदी प्रशिक्षण केन्द्र खोलें, हिंदी संस्थाएँ स्थापित करें और हिंदी के माध्यम से भारतीय समाज को एकजुट रखें। सम्प्रति अनेक पत्र–पत्रिकाएँ विदेशी हिंदी संस्थाओं से प्रकाशित हो रही हैं। भारत सरकार ने 'सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद्' के तत्वावधान में इन देशों में हिंदी शिक्षकों की व्यवस्था कर रखी है। विदेशी हिंदी विद्वानों को अनेक सुविधाएँ भी यहाँ से दी जा रही हैं। मारीशस, फिजी आदि देशों को प्रकाशन और मुद्रण यंत्रों की पर्याप्त आपूर्ति की गयी है। वहाँ स्पष्टतः तीन घटक दिखाई देते हैं: 1. भारतवंशी, 2. स्वामीवर्ग (अंग्रेज, फ्रांसीसी, चीनी, डच आदि) 3. आदिवासी।

वहाँ का राजनीतिक परिदृश्य इसी त्रिकोण पर आधारित है। हिंदीभाषियों के एकजुट हो जाने से इन देशों का शासनसूत्र भारतवंशियों के हाथ में आ गया। तात्पर्य यह है कि हिंदीभाषी समाज एक मजबूत वोट बैंक है अतः वहाँ इनका भविष्य सुरक्षित है। निष्कर्ष यह है कि विश्वभाषा रूप में हिंदी का चरित्र सुस्पष्ट है। अंग्रेजी के विश्वभाषा होने की बड़ी डींग मारी जाती है जबकि तथ्य यह है कि अंग्रेजी केवल इन राष्ट्रों में बहुसंख्यक वर्ग की भाषा है दूसरी ओर हिंदी अनेक देशों में बहुसंख्यक वर्ग के साथ

जुड़ी हुयी है, जैसे– नेपाल, पाकिस्तान, मारीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना, फिजी, दक्षिण अफ्रीका आदि। बहु–भाषिकता की दृष्टि से हिंदी अंग्रेजी में मात्र ड्यौढ़े का अंतर है। इतना विश्व प्रचलन न चीनी का है और न रूसी भाषा का। ऐसी स्थिति में हिंदी को विश्वभाषा पद से पृथक् नहीं किया जा सकता।

विश्वभाषा का दूसरा अर्थ है– वह भाषा, जिसमें वैश्विक चेतना अर्थात् सार्वभौम चिन्तन का स्वर हो। हिंदी अपने जन्मकाल से ही विश्वबोध से ओतप्रोत रही है। उसके भीतर बौद्धों, शैवों, शाक्यों, योगिकों, नाथों, वैष्णवों अर्थात् विभिन्न मतावलम्बियों के संस्कार हैं। उसने अरबी, फारसी, पुर्तगाली, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं से शब्द संस्कृति ग्रहण की है। इसके भीतर बौद्ध, इस्लाम, सूफी, ईसाई अनेक साधना पद्धतियों का योग है। हिंदी रचनाकार कभी क्षेत्रीयता से ग्रस्त नहीं रहे। दक्षिण अफ्रीका, जापान (हिरोशिमा, नागाशाकी) विलायत और वियतनाम आदि में जब जो घटित हुआ उसकी अनुगूँज हिंदी साहित्य में सुनाई पड़ी है। देशकाल का इतना विस्तार संस्कृत के अतिरिक्त और किसी भाषा में नहीं है। दक्षिणी भाषाएँ द्रविड़ संस्कृति तक सीमित हैं। बंगलाभाषी 'अमार सोनार बंगला' कहने में ही मगन है। यही स्थिति अन्य प्रादेशिक भाषाओं की है। हिंदी जन–जन की संवाहिका है। इस वैश्विक चरित्र के कारण उसको विश्वभाषा का दर्जा दिया जाना अनिवार्य हो गया है। विदेशों में आयोजित पाँच विश्व हिंदी सम्मेलन इस कथन के प्रमाण हैं। यदि योजनाबद्ध रूप से इन देशों में हिंदी की स्थिति सुदृढ़ कर डालें तो भारतवंशियों का एक विशाल समुदाय संगठित हो जायेगा। दूसरे, हिंदी भाषी राष्ट्रों के साथ हम भावानात्मक रूप से जुड़ जायेंगे जिससे हमारी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और मजबूत हो जायेगी। इस हिंदी भाईचारे के सहारे हम अपना विदेशी व्यापार बढ़ा सकते हैं। इसके सहारे हम अपनी विदेश नीति बदल सकते हैं। आवश्यकता यह है कि हमारे जनप्रतिनिधि दूरदर्शितापूर्वक इसका अनुमान करें और इसका सुनियोजित कार्यान्वयन भी करें। देशान्तर में प्राप्य और प्रयुक्त हिंदी भाषा के अनेक रूप हैं जैसे मारीशस, फिजी आदि देशों में हिंदी 'खड़ी' बोली के बजाय भोजपुरी और अवधी से जुड़ी हुयी है। वहाँ के निवासियों ने उसमें डच और फ्रेंच शब्दों को मिलाकर एक 'क्रिओल' भाषा बना ली है। कहीं–कहीं हिंदी पंजाबीपन से ग्रस्त है और कहीं गुजराती, मराठी या बंबइया फिल्मी भाषा से प्रभावित दिखती है। विदेशियों को हिंदी प्रयोग में सबसे अधिक समस्या होती है लिंग और वचन के अनुसार परिवर्तित होते हुए शब्दों के प्रयोग के कारण। उन्होंने प्रायः अपनी एक टूटी–फूटी भाषा बना ली है। भारतीय महानगरों में उनसे प्रभावित होकर एक ऐसी टूटी–फूटी हिंदी बोलने का एक फैशन–सा चल पड़ा है।

अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी को लेकर अनेक प्रकार के आँकड़े प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सबका यही निष्कर्ष है कि विदेशों के शताधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पठनपाठन की व्यवस्था है। इसमें कोई आश्यर्च की बात नहीं है। विश्वविद्यालय का अर्थ ही है जहाँ विश्वभर के ज्ञान–विज्ञान, भाषा, साहित्य आदि का अध्ययन कराया जाये। इसीलिए पश्चिम के विश्वविद्यालयों में मात्र हिंदी ही नहीं, पचासों, सैकड़ों भाषाओं के ज्ञानार्जन की व्यवस्था है। प्रायः हर देश की मुख्य भाषा का एक केन्द्र विकसित राष्ट्रों में अवश्य मिलेगा। हिंदी और उर्दू भारत की प्रमुख भाषाएँ हैं इसलिए इनकों वहाँ पढ़ना–पढ़ाना स्वाभाविक ही है। विडम्बना यह है कि कई देशों में यह भ्रान्त धारणा प्रचलित है कि भारत की राजभाषा आज भी अंग्रेजी ही है। इसलिए वे हमारे प्रतिनिधि मण्डलों के साथ राष्ट्रीय आयोजनों के अवसर पर भी अंग्रेजी के ही दुभाषियों की व्यवस्था करते हैं। इसका दोष और दायित्व मुख्यतः हमारे दूतावासों का है। यह कमी है हमारी विदेशनीति की। यह भारतीय नौकरशाही की 'कान्वेण्ट' मानसिकता की उपज है। इसको नियंत्रित किया जा सकता है बशर्ते पहले हमारी राष्ट्रीय भाषा नीति सुनियंत्रित हो जाये। विदेशी हिंदी को लेकर मुख्यतः संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी के प्रवेश के प्रश्न पर लोग यह तर्क देते हैं कि पहले पूर्णरूपेण अपने देश का तो हिंदीकरण कीजिए तब विदेशों तक पैर पसारने का सपना देखिए। इस तर्क में आंशिक सच्चाई है। यों हम हर क्षेत्र में स्वदेशी विकास के साथ–साथ विदेशी विकास की योजनाएँ चला रहे हैं। भारत एक ओर समृद्ध राष्ट्रों से सहायता लेता है, दूसरी और दुर्बल राष्ट्रों की सहायता करता भी है। वे दोनों कार्य समानान्तर चलते रहते हैं।

विदेशों में हिंदी की स्थिति गम्भीर चिन्ता का विषय है। मारीशस, फिजी आदि भारतवंशी बहुल राष्ट्रों की नयी पीढ़ी बड़ी तेजी से अंग्रेजी की ओर बढ़ रही है। कहीं–कहीं घरों में बोलचाल के तौर पर वे भोजपुरी अवधी बोल लेते हैं, यों प्रशासन में, दैनिक व्यवहार में हिंदी मात्र पुरानी पीढ़ी के मध्य ही प्रचलित दिखायी देती है। हिंदी का ग्राफ दिनोंदिन नीचे जा रहा है। उसी प्रकार जैसे भारत में साक्षरीकरण और नगरीकरण की बढ़त के साथ–साथ सुदूर गाँवों में अंग्रेजी का विस्तार बढ़ रहा है। उत्तर भारत का आम भारतीय जो बोलता है, उसमें पचास प्रतिशत से अधिक अंग्रेजी के शब्द होते हैं। इसे लोग मजाक में 'हिंगलिश' कहने लगे हैं। अब तो मीडिया (टी.वी.) द्वारा खुलेआम इस भाषा का प्रयोग होने लगा है। सम्भव है, आने वाले वर्षों में इसकी कोई पृथक क्रियोल भाषा निर्मित हो जाये, इसी तरह जैसे कभी उर्दू निर्मित हुयी थी अथवा जैसे मारीशस की ''क्रिओल'' बनी है। यह खिचड़ी भाषा अंग्रेजियत वाली मानसिकता की देन है। वार्तालाप में यदि अंग्रेजी की जगह कोई शुद्ध हिंदी के शब्द बोलता रहे तो सुनने वाले व्यंग्य करने लगते हैं कि यह तो बड़ी शुद्ध हिंदी बोल रहा है। गोया कि शुद्ध हिंदी बोलना अपराध है। यों भारतीय मध्यजीवी वर्ग पूरी शक्ति लगाकर अंग्रेजी ही बोलना चाहता है लेकिन अभी समाज में मात्र अंग्रेजी बोलकर काम नहीं चलाया जा सकता, इसलिए उसे हिंदी शब्द जोडने पड़ते हैं। इसके साथ ही समस्त व्याकरणिक कोटियों के साथ अंग्रेजी वाक्य बनाना और प्रवाहपूर्वक बोलते रहना अपेक्षाकृत कठिन है। इसलिए हम प्रायः सर्वनाम, क्रियापद आदि हिंदी के लगा देते हैं और वाक्य का शेष ढाँचा अंग्रेजी शब्दों के सहारे खड़ा करते हैं। आवश्यक यह है कि हिंदी वार्तालाप के प्रशिक्षण शिविर स्थापित किये जाँये और वहाँ

बोलचाल की एक मानक भाषा का अभ्यास कराया जाये। साठ घंटे में अंग्रेजी बोलना सिखाने का दावा करने वाली न जाने कितनी दुकानें देखते–ही–देखते इस दशक में खोली गयी हैं। समकालीन विपणन–व्यवस्था में यह बात प्रचारित की गयी है कि अच्छी नौकरी पाने के लिए फर्राटेदार अंग्रेजी का अभ्यास अनिवार्य है। परिणामस्वरूप रोजगार के प्रति व्याकुल युवा वर्ग अंग्रेजियत की ओर उमड़ पड़ा है। पहले भी व्यवसाय और नौकरी के लिए ही भारत में अंग्रेजी का प्रचलन किया गया था। लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी पढ़े युवकों को दफ्तर में बाबू बनने का अवसर दिया था। इधर नयी पीढ़ी को विदेशों का आकर्षण सता रहा है। वहाँ अंग्रेजी के बिना काम नहीं चलेगा, यह सोचकर वे अंग्रेजी के प्रति मोहासक्त हो उठे हैं। अंग्रेजी पत्र–पत्रिकाएँ, अंग्रेजी फिल्में और अंग्रेजी अमेरिकी संगीत के कैसेट्स इसीलिए वृद्धि पर हैं। प्रतियोगी परीक्षाओं में अंग्रेजी माध्यम वालों को बेहतर अंक मिल जाते हैं। वहाँ देशी भाषा की उपेक्षा की जा सकती है–यह धारणा घर कर गयी है। कुछ वर्ष पहले हिंदी भाषी क्षेत्रों में अंग्रेजी प्रयोग करने वालों को लोग टोक देते थे। प्रयोग करते हुए लोग क्षमायाचना करते थे। चाहे असली हो चाहे नाटकीय। उन्हें भय अवश्य रहता था कि इसका प्रतिवाद हो सकता है किन्तु अब प्रतिवाद होता प्रायः नहीं दिखता इसलिए झिझक समाप्त हो गयी है। जैसे सबने स्वीकार कर लिया हो कि यह सब चलता रहता है। अब स्वभाषा प्रयोग कोई गम्भीर राष्ट्रीय मुद्दा नहीं रहा गया है हम सुविधा भोगी हो गये हैं। अब कहीं सिद्धान्त की बाध्यता नहीं महसूस होती। हर जगह कामचलाऊ नीति। तात्कालिक हित बुद्धि के कारण हम दूरदृष्टि से वंचित हो गये हैं। इस सबका प्रभाव देशान्तरी हिंदी पर पड़ना अवश्यम्भावी है।

विदेशों में विशेषतः पश्चिमी राष्ट्रों में हिंदी की स्थिति चिंतनीय है। आप्रवासी भारतीयों की सन्तति अंग्रेजीमय हो गयी है। वे हिंदी के हॅसोड़ कवियों और संगीतज्ञों को भले ही झेल लें यों जनसामान्य हिंदी से परॉन्मुख हैं। यदि करोड़ों व्यक्तियों के बीच दस बीस हिंदी भाषी मिल भी गये तो उनका अनुपात समुद्र में बूँद की तरह ही माना जायेगा। अप्रवासी भारतीयों ने अपनी सांस्कृतिक संरक्षा के लिए इधर हिंदी के कुछ कार्यक्रम चलाये हैं जैसे मानसपाठ, भक्ति संगीत और पर्वोत्सवों का अयोजन, किन्तु इसे नक्कारखाने में तूती की आवाज ही कहा जायेगा। मैंने अपनी विदेश यात्राओं में रूस, चीन, उत्तर कोरिया, अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, मारीशस आदि कई राष्ट्रों में जो सुना, जो पाया, जो समझा, उसका निष्कर्ष यह है कि विदेशों में हिंदी की स्थिति प्रतीकात्मक ही है। इसको लेकर भावोच्छ्वसित नहीं हुआ जा सकता है। आवश्यकता यह है कि विदेशों में हिंदी प्रचार केन्द्र स्थापित किये जायँ। वहाँ मानक हिंदी व्याकरण और पाठ्य–पुस्तकें भेजी जायें। अधिकाधिक हिंदी फिल्मों का प्रदर्शन हो, लोकप्रिय पत्रिकाएँ प्रसारित की जायें और हिंदी शिक्षण की निःशुल्क व्यवस्था सुनिश्चित की जायें ताकि मानक उच्चारण तथा मानक वर्तनी का वैज्ञानिक उपकरणों के सहारे अभ्यास कराया जा सके। इस सबके लिए देशान्तरी हिंदी का एक आयोग गठित किया जाना उपयोगी होगा। मात्र 'सांस्कृतिक संबंध विस्तार परिषद्' पर्याप्त नहीं है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि हिंदी भाषा में एक विशिष्ट प्रकार की संक्रमणशील संवेदना है। जो सुन लेगा, वह सम्मोहित हो जायेगा। हाँ, उसका सुयोग बिठाना पडेगा। इसके अतिरिक्त विदेशी मिशनरी संस्थाओं के प्रचार पर नियंत्रण लगाना भी जरूरी है। ये संस्थाएँ ईसाई धर्म प्रचार और अंग्रेजी विस्तार को पूरक मानकर चल रही हैं। इनके पीछे चर्च की शक्ति है। इन्होंने भारतीय सीमान्त राज्यों में, आदिवासी क्षेत्रों में, विशेषतः हरिजन, गिरिजन वर्गों में धर्मान्तरण के साथ–साथ अंग्रेजीकरण का जाल फैला दिया है। इनका अपप्रचार मात्र हिंदीकरण के प्रतिरोध द्वारा ही रोका जा सकता है। भारतवंशी बहुत राष्ट्रों में इन मिशनरी प्रचारकों का कार्य युद्धस्तर पर चल रहा है। उन्होंने अंग्रेजी भाषा का वाह्याचार (मैनरिज्म) चतुर्दिक् फैला दिया है। इसका निवारण युक्तिपूर्वक ही किया जा सकता है। इनके विस्तार को दृढ़तापूर्वक रोकना होगा। धर्म–निरपेक्षता द्वारा हम उनसे प्रतिद्वन्दिता नहीं कर सकते। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का संघर्ष है। इतने बड़े भूभाग पर हिंदी की लड़ाई लड़ने के लिए हमें मुफ्त वितरण हेतु अनेक प्रकाशकों, प्रचारपत्रों और सम्मोहक उपहार वस्तुओं की आवश्यकता होगी। उसके लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होगी, जिसके लिए सरकारी अनुदान और सार्वजनिक दान दोनों अपेक्षित है।

जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो, वह अवश्य ही पवित्र है, और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती।

–महात्मा गाँधी

राजभाषा प्रभाग

सही हिंदी सीखना बहुत सरल है

श्रीराम महरोत्रा
पूर्व सतर्कता निरीक्षक एवं हिंदी अधिकारी, पंजाब एंड सिंध बैंक, लखनऊ

स्वर के अतिरिक्त जो वर्ण हैं वे व्यंजन कहलाते हैं। जो वर्ण स्वरों की सहायता के बिना न बोले जा सकें उन्हें व्यंजन कहते हैं। उदाहरण के लिए क्, च्, ट्, त् आदि व्यंजन के स्वरूप व्यंजन तब बनते हैं जब उच्चारण में अ स्वर की ध्वनि को मिला कर बोला जाता है और इस प्रकार इसका वास्तविक स्वरूप ऐसा होता है क्+अ=क, च+अ=च् + ट्+अ=ट आदि। इनकी संख्या 33 है। लिपि का ऐसा होना आक्षरिकता है अर्थात् व्यंजन चिह्न वस्तुतः अक्षर हैं। अक्षरः का अर्थ है व्यंजन और स्वर का संयुक्त रूप।

इनके अतिरिक्त अं तथा अः दो ऐसे व्यंजन हैं जिसमें पहला स्वर तथा अनुनासिक व्यंजन के मेल से बनता है और दूसरा स्वर और विसर्ग के मेल से बनता है। इस कारण इन्हें अयोगवाह व्यंजन कहते हैं। इनका मूल स्वरूप इस प्रकार है अ+ङ्= अं तथा अ+ह्= अः।

क्ष, त्र, ज्ञ तीन संयुक्त व्यंजन हैं। ये दो व्यंजनों के मेल से बनते हैं जैसे क्+ष्=क्ष्, त्+र=त्र और ज्+ञ्=ज्ञ। इन नियमित व्यंजनों के अतिरिक्त दो और व्यंजन हैं, ड़ तथा ढ़। ये दोनो व्यंजन नियमित वर्णमाला में तो शामिल नहीं हैं लेकिन भाषा के प्रयोग में इनका महत्वपूर्ण स्थान है, जैसे पढ़ा, चढ़ा, तथा पड़ा, बड़ा आदि।

मानव का मुख विवर एक जटिल ध्वनि यंत्र प्रणाली है जिसमें अनेक सूक्ष्म नलिकाएं हैं। ध्वनियां इन्ही यंत्र प्रणाली में अंतस्थ की प्राण वायु के संचरण से फूटती हैं। मुख विवर में जिह्वा एक बड़ा और दृश्यमान यंत्र है। मनुष्य जब बोलने का प्रयास करता है तब प्राण वायु श्वास नलिकाओं के मार्ग से सिकुड़ती या फैलती हुई जिह्वा से सम्पर्क स्थापित करके कंठ, तालू, मूर्धा, दंत ओष्ठ आदि मुख के विभिन्न भागों से टकराती है और इससे जो ध्वनि उत्पन्न होती है वही विशिष्ट ध्वनि वर्ण होती है। ध्वनियों के इन्हीं स्फुरण और वायु के आरोह–अवरोह से वांछित स्वर (आवाज) निकलता है। इसको ऐसे समझिए कि जैसे हारमोनियम एक डब्बा (यंत्र) है लेकिन उस यंत्र की विभिन्न प्रणालियों के आवश्यकतानुसार प्रयोग से उससे विभिन्न वैसी संगीत लहरी निकलती हैं जैसी के लिए संगीतकार इच्छा और क्रिया करता है। वैसे ही मानव के मुख विवर में स्थित विभिन्न यंत्र प्रणालियों में जैसी वायु का दबाव पड़ता है उसी प्रकार की ध्वनियां निकलती हैं। इन्हीं ध्वनि–स्थानों और वायु की क्रिया के आधार पर व्यंजनों का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया गया है जिसका संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है

कंठ्य ध्वनि– इस वर्गकी ध्वनियों का कंठ से निस्तारण होने के कारण कंठ्य ध्वनि कहते हैं। क,ख,ग,घ का उच्चारण करने पर ज्ञात होगा कि वे कंठ से निकल रही ध्वनियां हैं। अ,आ स्वर भी इसी स्थान से निकलते हैं।

तालव्य ध्वनियां– च, छ, ज, झ व्यंज और इ, ई स्वर गले से तालु स्थान से बोले जाने के कारण तालव्य ध्वनियां कहलाती हैं।

मूर्धन्य ध्वनियां– ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ऋ (सभी व्यंजन ध्वनियां) का मूर्ध्दा स्थान से उच्चारण होने के कारण मूर्धन्य ध्वनियां कहलाती हैं।

दंत्य ध्वनियां– ये वे वर्ण हैं जिनका उच्चारण ऊपर के दांतो पर जीभ लगने से होता है। ऐसे वर्ण हैं– त, थ, द, ध, न, ल और क्ष (सभी व्यंजन)।

औष्ठ्य ध्वनियां– दोनों ओठों को मिला कर उच्चारण किए जाने के कारण प, फ, ब, भ, म ध्वनियां तथा उ, ऊ, स्वर ध्वनियों को औण्ठ्य ध्वनियां कहते हैं।

नारिक्य ध्वनियां– उपरोक्त वर्गो के जिन व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा नासिका के सहयोग में आती है उनको नासिक्य ध्वनियां कहते है जैसे–अं, ड, ञ, ण, न, म।

अंतस्थ ध्वनियां– इन्हे अर्द्ध स्वर भी कहते हैं। य, र, ल, व ऐसी ही ध्वनियां है। इनको अंतस्थ इस कारण कहा जाता है क्योंकि ये स्वर और व्यंजन के मध्य स्थान से बोली जाती हैं। ये आधे स्वर और आधे व्यंजन भी कहे जाते हैं। इनके उच्चारण में जिह्वा विशेष सक्रिय नहीं रहती। य, र, ल, व व्यंजन कभी–कभी स्वरों में बदल कर इ, ऋ, लृ, उ बन जाते हैं और कभी वे स्वर इन व्यंजनों में बदल जाते हैं। एक दूसरे के अंदर रहने से भी इन्हे अंतस्थ कहते हैं।

ऊष्म ध्वनियां– श, ष, स, ह ध्वनियों के उच्चारण में स्वास का प्रबलता से प्रयोग करने के कारण एक प्रकार की गर्मी (ऊष्मा) उत्पन्न होती है। इस कारण इन्हें ऊष्म ध्वनियां कहते हैं।

संयुक्त ध्वनियां– क्ष, त्र, ज्ञ दो दो व्यजनों के मेल से बनने वाली ध्वनिया हैं जैसे क्+ष्=क्ष, त्+र्=त्र और ज्+ञ=ज्ञ।

व्यंजन ध्वनियों का विभाजन और अनेक आधारो पर किया जाता है लेकिन उसका विस्तृत विवेचन यहां आवश्यक नहीं है।

अनुस्वार और अनुनासिक

मुख विवर के विभिन्न स्थानों से स्वर और व्यंजन ध्वनियां निकल कर मनुष्य की बोली और भाषा बनती हैं। स्वर और व्यंजन

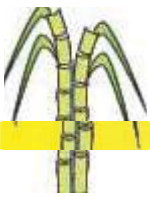

ध्वनियों के उच्चारण में मुख विवर को प्राण वायु का सहारा लेना पडता है जो मुख के अतिरिक्त कई समय नासिका यंत्र से भी निकलती है। ऐसी ध्वनि जब नासिका यंत्र के माध्यम से बाहर आती है तो वायु निस्सारण के आधार पर स्वर और व्यंजन के उच्चारण के साथ एक प्रकार की नाद ध्वनि भी निकलती है। जिसे अनुस्वार या अनुनासिक कहते हैं। इनके सहयोग से उच्चारण को अधिक सूक्ष्मता प्राप्त होती है। प्रयोग में इनके स्वतंत्र ध्वनि चिह्न भी हैं जैसे अनुस्वार के लिए (मात्र बिंदी) और अनुनासिक के लिए (चंद्र बिंदी) का प्रयोग करते हैं। हिंदी पठन–पाठन और लेखन में कई बार लोगों को इनके सही प्रयोग में समस्या होती है। अतः इसका समाधान करने के लिए इसकी अवधारणा स्पष्ट करना बहुत आवश्यक है।

अनुस्वार

अनुस्वार स्वर और व्यंजन के बीच की कड़ी है। अनुस्वार हमेशा स्वर के बाद आते हैं इसीलिए अनु+स्वार हैं। अनुस्वार का अर्थ ही है, वह जो स्वर का पीछा करे। उच्चारण प्रक्रिया में अनुस्वार शब्द के आरम्भ में उच्चरित न हो कर पीछे उच्चरित होता है। शब्द के आरम्भ में कभी अनुस्वार का प्रयोग नहीं होता. उसको इस उदाहरण से समझा जा सकता है कि कम्पन् शब्द (जिसे आम लेखन में कंपन लिखा जाता है) के प अक्षर में अनुस्वार का नाद आया, अतः प वर्ग का जो अनुस्वार चिह्न म है, उसका प्रयोग किया गया जो उच्चारण में स्वर के पीछे आया। हिंदी में ध्वनियों को वर्गों के साथ विभाजित करते समय प्रत्येक वर्ग के साथ उसकी अनुस्वार ध्वनि को रखा गया है और आवश्यकता के अनुसार एक वर्ग की ध्वनि के साथ उसी के लिपि चिह्न का प्रयोग सही होता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह श्रेष्ठ निर्धारण है। यदि अनुस्वार क,ख,ग,घ से पहले हो तो ङ के समान उच्चारण–होने के कारण ङ का प्रयोग होना चाहिए, जैसे गङ्गा, कङ्घा आदि। इसी प्रकार हर वर्ग के अक्षरों के अंत के अनुस्वार का प्रयोग उनके स्वरों के साथ करना चाहिए। आज कल वर्गात के विभिन्न अनुस्वार का प्रयोग न करके मात्र बिंदी का प्रयोग किया जाता है। छापाखानों की सीमाएं और शीघ्र हस्त लेखन तथा एक साथ लिपि संबंधी सीमित ज्ञान के कारण बिंदी के प्रयोग को मान्यता मिल गई है। अनुनासिक के लिए भी बहुत से लोग इसी से काम चलाते हैं जब कि उसके लिए चंद्र बिंदी ँ का प्रयोग होना चाहिए। जब स्वरों का उच्चारण मुख तथा नासिका, दोनों से एक साथ हो, तब वे अनुनासिक कहलाते हैं। इसी कारण अनुनासिक का स्वतंत्र उच्चारण नहीं होता। अनुस्वार में नासिका से सीधे नाद ध्वनि निकलने के कारण नाद स्वार का अनुवर्ती हो जाता है। आँत में शामिल अनुनासिकता का उच्चारण आ के साथ ही होगा न कि आ से पहले या आ के बाद, जब कि अंत में पहले अ का उच्चारण होगा, फिर अनुस्वार का। अनुस्वार और अनुनासिकता के प्रयोग से केवल उच्चारण में ही अंतर नहीं आता, बल्कि कई बार अर्थ में भी अंतर आ जाता है, उदाहरण के लिए, राम हंस को देखते ही हँसते हुए दौड़ा। इस वाक्य में हंस (पक्षी के अर्थ में) का ह वर्ण तथा अनुस्वार की ध्वनि बिलकुल अलग अलग स्पष्ट मालुम पड़ती है और अनुस्वार की ध्वनि उद्घोष के साथ निकलती है, किंतु हँस (हँसने की क्रिया) के उच्चारण में दोनों ध्वनियां मिल गई हैं और अनुनासिक का उच्चारण भी कोमल है। इस प्रकार अनुस्वार और अनुनासिक में केवल चिह्नों के आधार पर ही अंतर नहीं है, वरन् अर्थ और उच्चारण में भी अंतर है। आज कल देखा जाता है कि बहुत से लोग अनुनासिक के स्थान पर भी अनुस्वार का ही प्रयोग करते हैं, जो कि गलत है।

उच्चारण तथा लेखन की सुविधा की दृष्टि से यह स्वीकार कर लिया गया है कि जिन स्वरों की मात्राएं शिरोरेखा पर लगती हैं वहां पर अनुस्वार (ं) का प्रयोग किया जाता है और जहाँ स्वरों की मात्राएं शिरोरेखा पर नहीं लगतीं वहाँ पर अनुनासिक (ँ) का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए अनुस्वार–नींद, छींक ओंकार, कथाओं, मैं आदि। अनुनासिक– ऊँट, आँख, मुँह, अँधेरा आदि।

विसर्ग

हिंदी लेखन में एक और ध्वनि चिह्न का प्रयोग होता है जिसे विसर्ग कहते हैं और जिसका लिपि चिह्न (:) है। प्रातः, पुनः, अतः आदि शब्दों के अंत में होने वाली अह् ध्वनि के लिए इसका प्रयोग होता है। संस्कृत के कुछ तत्सम् शब्दों तक ही वस्तुतः इसका प्रयोग सीमित है। लिखने की सुविधा अथवा सही जानकारी के अभाव में कुछ लोग विसर्ग का प्रयोग नहीं करते, जैसे कुछ लोग **दुःख** में विसर्ग का प्रयोग करते हैं, किंतु कुछ लोग नहीं करते और **दुख** लिखते हैं। ऐसे ही कुछ लोग छः को छह भी लिखते हैं। भाषा की दृष्टि से सही तो विसर्ग का प्रयोग ही है किन्तु अब दोनो रूपों को प्रचलन में स्वीकृति मिल चुकी है, लेकिन कुछ शब्दों में इसके प्रयोग के बिना काम नहीं चलता, जैसे प्रायः, अतः आदि।

राजभाषा प्रभाग

संघ की राजभाषा नीति

संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी हैं। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप है [संविधान का अनुच्छेद 343 (1)]। परन्तु हिंदी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा का प्रयोग भी सरकारी कामकाज में किया जा सकता है (राजभाषा अधिनियम की धारा 3)।

संसद का कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जा सकता हैं परन्तु राज्यसभा के सभापति महोदय या लोकसभा के अध्यक्ष महोदय, विशेष परिस्थिति में सदन के किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकते हैं {संविधान का अनुच्छेद 120}।

किन प्रयोजनों के लिए केवल हिंदी का प्रयोग किया जाना है, किन के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है और किन कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाना है, यह राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा नियम 1976 और उनके अंतर्गत समय समय पर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की ओर से जारी किए गए निदेशों द्वारा निर्धारित किया गया है।

राजभाषा नियम, 1976

हिंदी के अनुमानित ज्ञान के आधार पर देश के राज्यों/संघ शासित प्रदेशों को तीन क्षेत्रों, यथा –क, ख, ग, में परिभाषित किया गया है।

भाषा क्षेत्र	राज्य/संघ राज्य
'क'	बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य हैं।
'ख'	गुजरातज, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य।
'ग'	उपरोक्त निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य।

शाकाहारी भोजन में दाल का महत्त्व

हमारे भोजन का मुख्य अंग कार्बोहाइड्रेट है, जो हमें चावल, गेहूँ इत्यादि से स्टार्च के रूप में तथा फलों से शर्करा के रूप में मिलता है। कार्बोहाइड्रेट से हमें ऊर्जा प्राप्त होती है, जिससे हम दैनिक कार्य आसानी से कर पाते हैं। शरीर में मांसपेशी बनने, शरीर के वृद्धि तथा पुराने ऊतकों को नवजीवन प्रदान करने में कार्बोहाइड्रेट से कोई सहायता नहीं मिलती है। इन कार्यों के लिए प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है। मांसाहारी लोगों को मांस से तथा शाकाहारियों को वनस्पतियों से प्रोटीन प्राप्त होती है। शाकाहारियों के लिए प्रोटीन प्राप्त करने का मुख्य स्रोत दालें हैं। इसलिए हमारे भोजन में दालों का होना बहुत आवश्यक है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

भारत में दलहन उत्पादन का वर्तमान परिदृश्य

ब्रह्म प्रकाश एवं अश्विनी कुमार शर्मा
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पोषण में प्रोटीन का महत्व आदिकाल से मानव को ज्ञात है। भारत की शाकाहारी जनसंख्या के बड़े भाग के लिए दालें प्रोटीन का प्रचुर स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त दालें ऊर्जा, खनिज लवण व विटामिनों का महत्वपूर्ण स्रोत हैं (सारिणी–1)। मृदा में जैविक नत्रजन स्थिरीकरण तथा जीवांश में वृद्धि द्वारा मृदा उर्वरता को बरकरार रखने में उल्लेखनीय योगदान के लिए कृषि में दलहनी फसलों का समावेश एक प्राचीन परम्परा रही है। विभिन्न दलहनी फसलें लगभग 23–188 कि.ग्रा./हे. वायुमण्डलीय नत्रजन का यौगीकरण करती है (सारिणी 2)। दलहनी फसलों का गहरा जड़ तंत्र थोड़ी सिंचाई अथवा सूखे में भी पौधो को जीवित रखने में सहायक होता है। सूखा सहनशीलता के गुण के कारण फसल पद्धति में दलहनी फसलों

सारिणी 1. दालों की पौष्टिक संरचना (प्रति 100 ग्राम भार)

दाल	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	प्रोटीन (ग्रा.)	वसा (ग्रा.)	शर्करा (ग्रा.)	कुल रेशे (ग्रा.)	लौह तत्व (मिग्रा.)	जस्ता (मिग्रा.)	कैल्शियम (मिग्रा.)	मैग्नीशियम (मिग्रा.)	पोटैशियम (मिग्रा.)	सोडियम (मिग्रा.)	सेलेनियम (मिग्रा.)
चना	368	21.0	5.70	61.0	22.7	6.2	3.4	105	115	875	24	8.2
अरहर	342	21.7	1.49	62.0	15.5	5.2	2.7	130	183	1392	17	–
उर्द	347	24.0	1.60	63.4	16.2	8.4	3.5	110	–	–	–	–
मूँग	345	25.0	1.10	62.6	16.3	6.7	2.7	132	189	1246	15	8.2
मसूर	346	27.2	1.00	60.0	11.5	7.5	4.7	56	122	955	6	8.2
मटर	345	25.1	0.80	61.8	13.4	4.4	3.0	55	115	981	15	1.6
राजमा	345	23.0	1.30	63.4	18.2	3.4	1.9	186	188	1316	18	12.9
लोबिया	346	28.0	1.30	63.4	18.2	4.54	3.77	80.3	250	1450	23	–
कुल्थी	321	23.6	2.30	59.1	15.6	7.0	–	287	–	–	–	
मोंठ	330	24.0	1.5	61.9	–	9.6	–	202	–	–	–	

दाल	थियामिन (मिग्रा.)	राइबोफ्लेविन (मिग्रा.)	नियासिन (मिग्रा.)	पैन्टोथेनिक एसिड (मिग्रा.)	विटामिन बी$_2$ (मिग्रा.)	फोलेट (माइक्रोग्राम)	विटामिन सी (मिग्रा.)	विटामिन ई (मिग्रा.)
चना	0.5	0.20	1.50	1.60	0.50	557	4.0	–
अरहर	0.6	0.18	2.90	1.26	0.28	456	–	–
उर्द	0.6	0.20	2.30	–	0.20	–	–	–
मूँग	0.6	0.20	2.30	–	0.20	–	–	–
मसूर	0.8	0.20	2.60	2.12	0.54	479	4.4	0.3
मटर	0.7	0.20	2.90	1.80	0.20	274	1.8	0.3
राजमा	0.53	0.22	2.08	0.79	0.40	399	4.6	–
लोबिया	0.94	0.22	2.36	1.39	0.44	545	–	–
कुल्थी	0.4	0.20	1.50	–	–	–	–	–
मोंठ	0.4	0.09	1.50	–	–	–	–	–

को सम्मिलित किया जाता है। विशेषकर प्रतिकूल मौसमी दशाओं में धान्य दलहनी फसल चक्र कृषकों के लिए एक वरदान सिद्ध होता है।

सारिणी 2. विभिन्न दलहनी फसलों द्वारा जैविक नत्रजन स्थिरीकरण

दलहनी फसलें	जैविक नत्रजन स्थिरीकरण (किग्रा./हे.)
चना	120.140
अरहर	150
उर्द	55.72
मूंग	112
मसूर	39.87
मटर	23.73
लोबिया	47.188
बाकला	64.92

भारत में दलहन उत्पादन :– भारत को विश्व के सर्वाधिक दलहन उत्पादन करने वाले राष्ट्रों में गौरवपूर्ण अग्रणी स्थान प्राप्त है। कुल वैश्विक दलहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में 34.42 प्रतिशत तथा कुल वैश्विक दलहन उत्पादन में 25.03 प्रतिशत का अंशदान भारत ही करता है। विश्व के प्रमुख दलहन उत्पादक देशों की जानकारी सारिणी 3 में दी गयी है। विश्व, एशिया तथा भारत में कुल दलहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र, उत्पादन व उत्पादकता सारिणी 4 में प्रदर्शित की गयी है। सारिणी 5 में निहित आंकड़े दर्शाते हैं कि भारत में दलहनी फसलों की उत्पादकता स्तर (635 कि.ग्रा./हे.) विश्व के अन्य देशों व विश्व की औसत उत्पादकता (901 कि.ग्रा./हे.) से काफी नीचे हैं। स्वतंत्रता के बाद पाँच दशकों में भारत में दलहनी फसलों का क्षेत्र 220 से 240 लाख हेक्टेयर तथा उत्पादन 120 से 146 लाख टन के मध्य घटता बढ़ता रहा। पंचवर्षीय योजनाकाल में कृषि के अन्य क्षेत्रों की भांति भारत में दलहन उत्पादन व उत्पादकता में कोई विशेष वृद्धि नहीं हो सकी। वर्ष 2010 में दलहनों का उत्पादन पहली बार 180 लाख टन के आंकड़े को पार कर सका। सारिणी 6 में प्रदर्शित दलहन, धान्यों तथा कुल खाद्यान्नों के उत्पादन के आँकड़ें ये दर्शातें हैं कि दलहनों की अपेक्षा धान्य का अंश बढ़ रहा है। धान्य दलहन अनुपात जो 1950 के दशक के आरम्भ में 5.4:1 था, वर्ष 2013–14 में बढ़कर 12.74 हो गया है। कुल खाद्यान्नों में दलहनों का अंश वर्ष 1950–51 में 16.55 प्रतिशत था जो वर्ष 2013–14 में घटकर 7.28 प्रतिशत रह गया है। दलहनी फसलों के लगभग स्थिर उत्पादन तथा लगातार तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के कारण दालों की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता जो वर्ष 1951 में 60.7 ग्राम थी, वर्ष 2013 में घटकर मात्र 41.9 ग्राम रह गई है। जबकि इस अवधि में धान्य फसलों की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता 334.2 ग्राम से बढ़कर 468.9 ग्राम हो गई है (सारिणी 7)। दालों की मांग व आपूर्ति में भारी अन्तर को कम करने हेतु भारत सरकार प्रतिवर्ष बड़ी मात्रा में दालों का विदेशों से आयात करती है परन्तु भारत में विदेशी मुद्रा

सारिणी 3: विश्व के मुख्य दलहन उत्पादक राष्ट्र (2014)

दलहन	राष्ट्र
कुल दलहन	भारत, कनाडा, चीन, म्यान्मार, ब्राज़ील, ऑस्ट्रेलिया, इथोपिया, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस व नाइजीरिया
चना	भारत, ऑस्ट्रेलिया, पाकिस्तान, म्यान्मार, इथोपिया, टर्की, ईरान, मैक्सिको, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा व रूस
अरहर	भारत, म्यान्मार, मलवी, केन्या, तन्जानिया, हैटी, डॉमिनिकन, गणराज्य, नेपाल, युगाण्ज व बुरून्टी
मसूर	कनाडा, भारत, ऑस्ट्रेलिया, टर्की, नेपाल, चीन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इथोपिया, बंगलादेश, ईरान व सीरिया
ड्राई बीन्स	भारत, म्यान्मार, ब्राज़ील, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मैक्सिको, चीन, तन्जानिया, युगाण्ज, केन्या व इथोपिया
मटर	कनाडा, चीन, रूस, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, भारत, फ्रांस, इथोपिया, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, तन्ज़ानिया व स्पेन
लोबिया	नाइजीरिया, नाइजर, बुर्कीनों फासों तन्ज़ानिया, म्यान्मार, कैमेरून, माती व केन्या

सारिणी 4: विश्व, एशिया तथा भारत में प्रमुख दलहनी फसलों के अंतर्गत क्षेत्र, उत्पादन व उत्पादकता

दलहनी फसल	क्षेत्र (लाख हे.)			उत्पादन (लाख टन)			उत्पादकता (किग्रा./हे.)		
	विश्व	एशिया	भारत	विश्व	एशिया	भारत	विश्व	एशिया	भारत
कुल दाले	810.0	406.6	28.17	732.1	340.9	18.3	904	839	654
चना	135.7	120.6	96.00	131.2	110.6	88.3	967	917	920
अरहर	62.3	53.2	46.50	46.8	38.4	30.2	751	722	650
मसूर	43.3	28.1	18.90	49.8	22.5	11.3	1150	801	600
ड्राई बीन्स	290.5	142.7	91.00	228.1	101.7	36.3	785	772	399
मटर	62.7	18.36	7.30	111.6	23.82	6.0	1779	1297	822

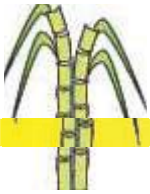

सारिणी 5: वर्ष 2013 के दौरान विश्व के कुछ देशों में दलहनी फसलों की औसत उत्पादकता

देश	उत्पादकता (किग्रा./हे.)	देश	उत्पादकता (किग्रा./हे.)	देश	उत्पादकता (किग्रा./हे.)
कुल दालें		**अरहर**			
फ्रांस	3638	बुरून्दी	1543	यूक्रेन	1558
ब्रिटेन	3374	मलावी	1327	स्पेन	1457
मिस्र	3123	बंगलादेश	1044	रूस	1398
जर्मनी	3019	नेपाल	943	ऑस्ट्रेलिया	1376
कनाडा	2548	म्यान्मार	917	म्यान्मार	1283
बेलारूस	2338	तन्ज़ानिया	861	बंगलादेश	951
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	2038	त्रिनिदाद व टोबैगो	844	भारत	822
इटली	1757	भारत	650	**ड्राई बीन्स**	
इथोपिया	1629	**मसूर**		मिस्र	2652
चीन	1548	चीन	2239	कनाडा	2425
ऑस्ट्रेलिया	1410	ऑस्ट्रेलिया	2237	बेलारूस	2378
कोलम्बिया	1303	कनाडा	2065	टर्की	2301
स्पेन	1301	मिस्र	2030	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	2093
म्यान्मार	1285	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	1621	ईरान	1661
नाइजीरिया	1258	फ्रांस	1613	इथोपिया	1401
रूस	1203	टर्की	1483	उगाण्डा	1401
नेपाल	1056	स्पेन	1296	म्यान्मार	1370
बंगला देश	950	इथोपिया	1265	कोलाम्बिया	1178
भारत	654	नेपाल	1099	इन्डोनेशिया	1124
चना		सीरिया	1097	चीन	1111
इज़राइल	4121	बंगला देश	1035	क्यूबा	1084
कनाडा	2353	भारत	600	ब्राजील	1058
मिस्र	2155	**मटर**		तन्ज़ानिया	967
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	1825	फ्रांस	3974	नेपाल	847
सूडान	1821	ब्रिटेन	3690	बंगलादेश	792
मैक्सिको	1817	जर्मनी	3417	भारत	399
इथोपिया	1784	स्वीडन	3344		
म्यान्मार	1463	कनाडा	2944		
इटली	1462	हन्ग्री	2284		
ऑस्ट्रेलिया	1418	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	2197		
टर्की	1195	कोलम्बिया	1786		
रूस	1000	चीन	1730		
भारत	920				

सारिणी 6. भारत में धान्यों, दालों तथा कुल खाद्यान्नों का उत्पादन (लाख टन)

वर्ष	धान्य	दालें	कुल खाद्यान्न	धान्य–दलहन अनुपात	दलहनों का कुल खाद्यान्नों में प्रतिशत
1950-51	42.41	8.41	50.82	5.04	16.55
1955-56	55.81	11.04	66.55	5.05	16.51
1960-61	69.32	12.70	82.02	5.46	15.48
1656-66	62.41	9.94	72.35	6.28	13.74
1970-71	96.60	11.82	108.42	8.17	10.90
1975-76	107.99	13.04	121.03	8.28	10.77
1980-81	118.96	10.63	129.59	11.19	8.20
1985-86	137.08	13.36	150.44	10.26	8.88
1990-91	162.10	14.10	176.20	11.50	8.00
1995-96	168.11	12.31	180.42	13.65	6.82
2000-01	185.73	11.08	196.81	16.76	5.63
2005-06	195.22	13.38	208.60	14.59	6.41
2010-11	226.25	18.24	244.49	12.40	7.46
2013-14	245.50	19.27	264.77	12.74	7.28

सारिणी 7. भारत में दालों तथा अन्य खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति खपत (ग्राम/दिन)

वर्ष	चना	कुल दालें	चावल	गेहूँ	अन्य धान्य	कुल धान्य	कुल खाद्यान्न
1951	22.5	60.7	158.9	65.7	109.6	334.2	394.9
1961	30.2	69.0	201.1	79.1	119.5	399.7	468.7
1971	20.0	51.2	192.6	103.6	121.4	417.6	468.8
1975	14.2	39.7	158.9	112.1	94.8	365.8	405.5
1980	10.7	30.9	166.1	126.8	86.6	379.5	410.4
1985	12.9	38.4	189.1	138.6	87.9	415.6	454.0
1990	10.7	41.1	215.3	132.6	87.4	435.3	476.0
1995	14.9	37.8	220.0	172.7	64.9	457.6	495.5
2000	10.8	31.8	203.7	160.0	59.0	422.7	454.4
2005	10.6	31.5	177.3	154.3	59.4	390.9	422.4
2010	13.5	35.4	182.0	168.2	51.4	401.7	437.1
2013	15.3	41.9	232.4	183.3	53.2	468.9	510.8

की कमी तथा अन्य देशों में दलहनों के उत्पादन की कम मात्रा के चलते दालों के आयात पर भी निर्भर नहीं रहा जा सकता। सारिणी 8 में निहित वर्ष 1980–81 से वर्ष 2013–14 तक भारत में दालों की आयातित मात्रा एवं मूल्य के आंकड़ें दर्शातें हैं कि भारत में दालों की उपलब्धता बढ़ानें के लिए दालों का आयात निरन्तर बढ़ रहा है।

सारिणी 8. भारत में दालों का आयात

वर्ष	मात्रा (000 टन)	मूल्य (करोड़ रूपये)
1980–81	172.96	29.76
1985–86	431.44	189.06
1990–91	1273.43	481.17
1995–96	485.65	685.55
2001–02	2232.29	3163.72
2005–06	1695.65	2476.25
2009–10	3509.58	9813.37
2010–11	2698.66	7149.62
2011–12	3364.80	8931.24
2012–13	3839.30	12733.70
2013–14	3049.29	10550.97

भारत में उत्पादित होने वाली प्रमुख दलहनी फसलें : भारत विश्व का एकमात्र ऐसा राष्ट्र है जहाँ पर एक दर्जन से अधिक दलहनी फसलों की खेती की जाती है। चना, मसूर, मटर व खेसारी रबी ऋतु तथा अरहर, मूंग, उर्द, मोंठ व कुल्थी खरीफ ऋतु की प्रमुख दलहनी फसलें हैं। आजकल दक्षिण भारत में उर्द, मूंग व कुल्थी की खेती रबी मौसम में भी सफलतापूर्वक की जा रही है। इसी प्रकार रबी फसलों की कटाई के पश्चात उर्द, मूंग व लोबिया की शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की खेती बसन्त/ग्रीष्म ऋतु में की जा रही है। भारत में विभिन्न दलहनी फसलों के प्रमुख उत्पादक राज्य सारिणी 9 में दर्शाएं गए हैं। भारत में मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व तमिलनाडु दालों के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। सारिणी 10 में निहित वर्ष 2013–14 के दौरान भारत के मुख्य दलहन उत्पादक राज्यों में कुल दलहन के अन्तर्गत क्षेत्र, उत्पादन तथा उत्पादकता के आँकड़े स्पष्ट प्रर्दशित करते हैं कि मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश व कर्नाटक जैसे छः राज्य राष्ट्रीय दलहन उत्पादन में लगभग 80 प्रतिशत का योगदान करते हैं।

चना : चना रबी की प्रमुख दलहनी फसल है। देश के कुल दलहन उत्पादन में चने का योगदान 51.2 प्रतिशत है। मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक व उत्तर प्रदेश मुख्य चना उत्पादक राज्य हैं जो चने के अन्तर्गत कुल क्षेत्र में क्रमशः 34.06, 18.82, 17.80, 5.73, 8.95 व 5.64 प्रतिशत का योगदान देते हैं। उपरोक्त राज्यों द्वारा कुल राष्ट्रीय उत्पादन में क्रमशः 38.63, 16.59, 16.42, 8.59, 5.76 एवं 4.81 प्रतिशत योगदान दिया जाता है। इस प्रकार उपरोक्त छः राज्य चना के अर्न्तगत कुल राष्ट्रीय क्षेत्र तथा उत्पादन में लगभग 91 प्रतिशत का योगदान देते हैं।

मसूर : चना के पश्चात् मसूर रबी मौसम की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व बिहार भारत के प्रमुख मसूर उत्पादक राज्य हैं। उपरोक्त राज्य मसूर के अन्तर्गत कुल क्षेत्र में क्रमशः 34.78, 40.08 व 11.22 प्रतिशत तथा मसूर उत्पादन में क्रमशः 38.89, 29.40 व 16.16 प्रतिशत का योगदान करते हैं। इस प्रकार उपरोक्त तीन राज्य मसूर के कुल राष्ट्रीय क्षेत्र और उत्पादन में क्रमशः 86.08 तथा 84.45 प्रतिशत का योगदान देते हैं।

मटर : उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा झारखण्ड भारत के मुख्य मटर उत्पादक राज्य हैं। मटर के अन्तर्गत कुल क्षेत्र में इन राज्यों का अंशदान क्रमशः 40.4, 37.0 व 7.2 प्रतिशत तथा राष्ट्रीय

सारिणी 9. भारत में विभिन्न दलहनी फसलों के मुख्य उत्पादक राज्य

दलहनी फसलें	मुख्य उत्पादक राज्य
कुल दालें	मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, झारखण्ड व बिहार
चना	मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़ व झारखण्ड
अरहर	महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, झारखण्ड, उड़ीसा व तमिलनाडु
उर्द	तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, झारखण्ड, राजस्थान, पश्चिम बंगाल व गुजरात
मूंग	राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, गुजरात, बिहार, उड़ीसा व कर्नाटक
मसूर	उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, राजस्थान तथा आसाम
मटर	उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, आसाम, बिहार तथा महाराष्ट्र
मोंठ	राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा जम्मू व कश्मीर
खेसारी	छत्तीसगढ़, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र
कुल्थी	कर्नाटक, तमिलनाडु, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, झारखण्ड तथा बिहार

सारिणी 10. वर्ष 2013–14 के दौरान भारत के मुख्य दलहन उत्पादक राज्यों में कुल दलहन के अन्तर्गत क्षेत्र, उत्पादन तथा उत्पादकता

राज्य	क्षेत्र (लाख हेक्टेयर)	कुल भारत का प्रतिशत	उत्पादन (लाख टन)	कुल भारत का प्रतिशत	उत्पादकता (कि.ग्रा./हे.)
मध्य प्रदेश	54.3	21.52	50.9	26.41	938
महाराष्ट्र	39.2	15.54	31.2	16.19	796
राजस्थान	42.0	16.64	24.7	12.82	589
उत्तर प्रदेश	23.1	9.14	17.1	8.87	742
आन्ध्र प्रदेश	16.7	6.62	15.5	8.04	928
कर्नाटक	24.6	9.76	14.7	7.63	597
गुजरात	8.1	3.22	7.4	3.84	910
झारखण्ड	5.7	2.25	5.7	2.96	1006
बिहार	5.3	2.10	5.2	2.70	984
छत्तीसगढ़	8.1	3.19	4.7	2.44	584
तमिलनाडु	8.8	3.49	4.4	2.28	500
उड़ीसा	7.9	3.15	4.2	2.18	529
पश्चिम बंगाल	2.6	1.04	2.5	1.30	953
हरियाणा	1.5	0.61	1.3	0.67	850
अन्य	4.4	1.74	3.2	1.66	954
कुल भारत	252.3	100.00	192.7	100.00	764

उत्पादन में क्रमशः 54.6, 23.2 व 6.5 प्रतिशत है।

अरहर : अरहर खरीफ ऋतु में बोई जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। भारत में अरहर उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश व गुजरात हैं। भारत के अरहर के अन्तर्गत कुल क्षेत्र में इन राज्यों का योगदान क्रमशः 28.24, 21.21, 12.50, 7.76, 11.49 व 5.41 प्रतिशत तथा उत्पादन में क्रमशः 29.34, 18.31, 14.06, 8.23, 7.35 तथा 7.26 प्रतिशत है। इस प्रकार यह पाँच राज्य मिलकर अरहर के कुल क्षेत्र में 86.61 प्रतिशत तथा उत्पादन में 84.55 प्रतिशत का अंशदान करते हैं।

उर्द : अरहर के बाद उर्द खरीफ मौसम की सबसे महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र जैसे राज्यों में उर्द की खेती बड़े क्षेत्र में की जाती है। उर्द के अन्तर्गत कुल क्षेत्र में उपरोक्त राज्य क्रमशः 11.9, 10.3, 17.7, 19.7 व 10.9 प्रतिशत तथा उत्पादन में 18.3, 15.1, 14.6, 13.2 व 12.1 प्रतिशत अंशदान करते हैं। आन्ध्र प्रदेश व उड़ीसा में उर्द की खेती बड़े पैमाने पर रबी के मौसम में की जाती है। आंध्र प्रदेश में चूर्णी कवक रोधी प्रजातियों के विकास से उर्द के अन्तर्गत क्षेत्र में क्रान्तिकारी वृद्धि हुई है।

मूंग : खरीफ दलहनी फसलों में तीसरा स्थान रखने वाली मूंग एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। मूंग के प्रमुख उत्पादक राज्य राजस्थान, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश व गुजरात में मूंग के अन्तर्गत कुल क्षेत्र का क्रमशः 30.2, 12.8, 8.2, 9.4 व 5.4 प्रतिशत तथा उत्पादन का क्रमशः 29.3, 12.9, 11.7, 9.0 व 6.6 प्रतिशत अंश इन राज्यों द्वारा किया जाता है।

मोंठ : मोंठ की खेती बहुत ही सीमित क्षेत्र में की जाती है। राजस्थान मोंठ का प्रमुख उत्पादक राज्य है जो देश के मोंठ के अन्तर्गत कुल क्षेत्र का 96 प्रतिशत तथा उत्पादन का 95 प्रतिशत अंशदान करता है। राजस्थान के अतिरिक्त, गुजरात, महाराष्ट्र व जम्मू एवं कश्मीर में भी मोंठ उगाई जाती हैं।

भारत में दलहन उत्पादन बढ़ाने में प्रमुख बाधाएं –

भौतिक बाधक : तापमान, नमी व अन्य जलवायु कारकों के अतिरिक्त, दलहनी फसलों की उत्पादकता जल भराव से अत्याधिक प्रभावित होती है। दलहनी फसलों की खेती प्रायः सीमान्त तथा अति सीमान्त क्षेत्रों में की जाती हैं जिसकी मृदा की उर्वरा शक्ति अत्यन्त कम होती है। इससे भी दलहनी फसलों की उत्पादकता प्रभावित होती है। लवणीय तथा क्षारीय भूमि में बोई गई दलहनी फसलों से भी कम उत्पादकता प्राप्त होती है।

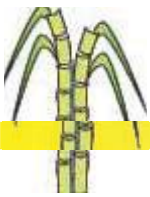

बीज से सम्बन्धित बाधक : यद्यपि दलहनी फसलों की बड़ी संख्या में उन्नत प्रजातियाँ विकसित की गयी हैं परन्तु अधिकांश कृषक इन उच्च उत्पादक व रोगरोधी प्रजातियों से अनभिज्ञ हैं तथा अभी भी पुरानी प्रजातियों को बो रहे हैं। अनुचित भण्डारण अवस्थाओं के कारण भी अंकुरण कम होता हैं। जिससे अन्त में खेत में पौध संख्या व उत्पादकता कम प्राप्त होती है।

जैविक बाधक : धान्य तथा अन्य फसलों की तुलना में दलहनी फसलें कीटों व रोगों से अधिक प्रभावित होती हैं जिससे उत्पादकता पर दुष्प्रभाव पड़ता है। दलहनी फसलों को कई कवकों, जीवाणुओं तथा विषाणुओं व कीटों से अत्यन्त क्षति पहुँचती है। भण्डारण में लगने वाले कीट किसानों को फसल कटाई के तुरन्त बाद उत्पाद बेचने को मजबूर कर देते हैं। इन कारणों के चलते कृषक बड़े क्षेत्र में दलहनी फसलों की खेती करने से बचते हैं।

सस्य बाधक : अधिकांश दलहनी कृषकों के सीमान्त तथा कम प्रगतिशील होने के कारण सस्य क्रियाएं जैसे बुवाई का उचित समय, बीज दर, बुवाई की सही विधि, राइजोबियम कल्चर का प्रयोग, उर्वरक प्रयोग, सामयिक सिंचाई तथा कीट व रोग नियंत्रण से अनभिज्ञ रहते हैं। किसानों का यह मानना कि दलहनी फसलों की खेती असिंचित क्षेत्रों में ही की जाती है जो दलहनी फसलों के उत्पादन बढ़ाने में बाधक का कार्य करता है। वर्ष 1950–51 में कुल खाद्यान्नों के अन्तर्गत 18.1 प्रतिशत क्षेत्र सिंचित था जो वर्ष 2011–12 में बढ़कर 49.8 प्रतिशत हो गया हैं। इसी प्रकार धान के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र भी उपरोक्त अवधि में 31.7 प्रतिशत से बढ़कर 58.7 प्रतिशत हो गया है तथा गेहूँ के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र भी उपरोक्त अवधि में 34.0 प्रतिशत से बढ़कर 92.9 प्रतिशत हो गया है। परंतु दलहनी फसलों के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र में विशेष प्रगति नहीं हुई है। वर्ष 1950–51 में कुल दलहनों के अन्तर्गत 9.4 प्रतिशत क्षेत्र सिंचित था जो वर्ष

सारिणी 11. मुख्य उत्पादक राज्यों में दलहनी तथा अन्य खाद्यान्नों के अन्तर्गत कुल क्षेत्र में सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत

राज्य	चना	अरहर	कुल दालें	धान	गेहूँ	कुल खाद्यान्न
आन्ध्र प्रदेश	2.7	0.8	3.7	97.1	–	62.5
आसाम	–	–	–	4.9	2.7	4.6
बिहार	5.2	2.1	3.2	61.1	94.2	67.4
छत्तीसगढ़	37.3	–	12.1	34.2	–	29.7
गुजरात	43.8	7.5	15.2	61.5	90.8	46.0
हरियाणा	11.0	–	27.6	99.9	99.5	88.9
हिमाचल प्रदेश	–	–	–	–	20.2	–
जम्मू व कश्मीर	–	–	–	–	28.3	–
झारखण्ड	–	0.1	2.9	3.2	89.1	7.0
कर्नाटक	15.1	4.5	7.6	75.2	55.9	28.2
केरल	–	–	–	100.00	–	–
मध्य प्रदेश	53.8	1.4	35.1	21.7	89.3	50.5
महाराष्ट्र	24.3	1.6	8.7	26.1	73.9	16.4
उड़ीसा	3.0	–	3.0	33.2	–	29.0
पंजाब	–	–	–	99.5	98.9	98.7
राजस्थान	34.1	–	13.1	–	99.2	27.7
तमिलनाडु	–	4.5	10.6	93.7	–	63.5
उत्तराखण्ड	–	–	–	–	57.6	44.0
उत्तर प्रदेश	14.0	12.7	21.0	80.4	98.1	76.1
पश्चिम बंगाल	30.6	–	23.3	48.2	95.9	49.3
कुल भारत	33.5	3.9	16.1	58.7	92.9	49.8

2011–12 तक मात्र 16.1 प्रतिशत तक ही बढ़ा है। यद्यपि चना व अरहर के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र में वृद्धि हुई है परन्तु अन्य दालों के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र में कमी आई है। सारिणी 11 में निहित आँकड़े स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं कि भारत के विभिन्न राज्यों में धान व गेहूँ की तुलना में दलहनी फसलों के अन्तर्गत सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत अत्यन्त कम है।

प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी : दलहन प्रायः दालों के रूप में उपभोग में लाए जाते हैं। दलहन प्रसंस्करण की पारम्परिक तकनीक बहुत समय व श्रम लेने वाली तथा पूर्णतया मौसम पर आधारित है तथा इससे खाने वाले भाग के बड़े भाग की क्षति भी हो जाती है। एक अनुमान के अनुसार भारत में लगभग 15 लाख टन दालें अप्रभावी प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी के कारण प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रति वर्ष नष्ट हो जाती हैं। उच्च प्रसंस्करण लागतों के कारण दालों के ऊँचे मूल्य होने के बावजूद भी उपभोक्ता द्वारा भुगतान किए गए रूपयों में कृषक का अंश बहुत कम ही रहता है।

विपणन : प्रायः सरकार द्वारा दलहनी फसलों के मूल्यों पर बहुत कम नियन्त्रण तथा खुले बाजार में इसके मूल्यों में होने वाले उतार–चढ़ाव से कृषक दलहनों की खेती में अधिक रुचि नहीं दिखाते। दलहनी फसलों के कम न्यूनतम समर्थन मूल्य भी इसकी खेती को प्रभावित करते हैं।

कम उपज : कृषकों द्वारा परम्परागत प्रजातियों की खेती करते रहने से दलहनी फसलों की उपज भी कम ही प्राप्त होती हैं तथा प्रति हेक्टेयर लाभ कम मिलता है। यद्यपि अभी तक दलहनी फसलों की अनेकों उच्च उत्पादकता वाली व रोग प्रतिरोधक प्रजातियाँ विकसित की जा चुकी हैं, परन्तु कृषकों को इन उन्नतशील प्रजातियों के बारे में जानकारी न होने अथवा बीज की अनुपलब्धता के कारण कृषक आज भी परम्परागत प्रजातियों की ही खेती कर रहे हैं। यद्यपि दलहनों का बाजार मूल्य ऊँचा हैं परन्तु फिर भी प्रमुख दलहनों की प्रति हेक्टेअर सकल मूल्य उत्पादकता अन्य प्रमुख फसलों की तुलना में कम ही रहती है। सारिणी 2 में प्रदर्शित भारत में दलहनी व अन्य प्रमुख फसलों की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता तथा उत्पादकता का सकल मूल्य के आँकड़ें स्पष्ट प्रदर्शित करते है कि उच्च न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित किए जाने के बावजूद दलहनी फसलों की खेती से मिलने वाली आय गेहूँ व अन्य प्रमुख फसलों की तुलना में अत्यन्त कम हैं।

जोखिम : दलहन उत्पादन में भारी जोखिम इसके उत्पादन में सबसे बड़ा बाधक है। दलहनी फसलों की उत्पादकता सदैव स्थिर नहीं रहती अपितु दलहनी फसलों की उत्पादकता, रोग, कीट, सूत्रकृमि, खरपतवार तथा बारानी दशा के कारण घटती–बढ़ती रहती हैं। उत्पादकता के इस उतार–चढ़ाव को विचलन गुणांक द्वारा नापने पर यह उत्पादकता में मामूली वृद्धि के कारण कम ही रहता है। उत्पादकता की प्रवृत्ति से निचले स्तर से विचलन गुणांक की गणना करना जोखिम को नापने का उत्तम माध्यम है तथा प्रमुख फसलें जैसे गेहूँ, धान, सरसों व मूँगफली की तुलना में दलहनी फसलों में विचलन गुणांक अधिक था। दलहनी फसलों की औसत निम्न उत्पादकता तथा इसके उत्पादन में निहित उच्च जोखिम उन्नत उत्पादन तकनीक अपनाने तथा उत्पादकता वृद्धि में सहायक उत्पादन संसाधनों के प्रयोग को हतोत्साहित करता है।

अन्य सामाजिक व आर्थिक बाधक : दलहनी फसलों की खेती में अनिश्चितता होने, सभी कृषकों के लिए दलहनों की खेती आर्थिक रूप से लाभकारी न होने पर भी कोई प्रोत्साहन न दिया जाना, उच्च उर्वरक भूमि में दलहनी फसलों की बहुत कम खेती, प्रभावी बाजार तन्त्र की कमी, दालों का कम विपणन योग्य आधिक्य तथा बेचे जाने वाली दाल की कम मात्रा, उचित भण्डारण सुविधाओं का अभाव, धान्यों का मुख्य खाद्यान्न होना तथा भण्डारण में कीटों द्वारा अत्यन्त क्षति जैसी समस्याओं के कारण फसल प्रणाली में दलहनी फसलों की खेती गौण रूप से की जाती है।

सारिणी 12. भारत में दलहनी फसलें व अन्य प्रमुख फसलों की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता तथा उत्पादकता का सकल मूल्य (रू./हे.)

फसल	उत्पादकता (कि.ग्रा./हे.)	मूल्य (रू./ कि.ग्रा.)	उत्पादकता का सकल मूल्य (रू./हे.)
चना	967	31	29,977
अरहर	849	43	36,507
उर्द	555	43	23,865
मूंग	474	45	21,330
गेहूँ	3075	14	43,050
मक्का	2583	13.1	33,837
मूंगफली	1750	40	70,000
रेपसीड एवं सरसों	1188	30.5	36,234

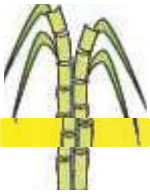

दलहन उत्पादन बढ़ाने हेतु रणनीति

उपज में वृद्धि : भारत में दलहनी फसलों की वर्तमान उत्पादकता अत्यन्त कम होने के कारण इसे बढ़ाने की प्रबल सम्भावनाएं हैं जिसके लिए कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र के विभिन्न फसल चक्रों के लिए अनुकूलतम प्रजाति का चयन परम आवश्यक है। भारत में विभिन्न कृषि पारिस्थितकी क्षेत्रों हेतु उच्च उत्पादन क्षमता व विभिन्न रोगों के प्रति अवरोधी/ सहनशील बहुत सी प्रजातियाँ विकसित की गयी है (सारिणी 13)। इनमें से अपने क्षेत्र के लिए संस्तुत प्रजाति की खेती करके उपज में वृद्धि की जा सकती है। दलहनी फसलों की खेती में जैविक एवं अजैविक कारक एक बड़े बाधक हैं जिनसे निपटने के लिए जैव प्रौद्योगिकी तकनीकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार नवीनतम एवं उन्नत प्रजातियों के बीज के उत्पादन, संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग, बुवाई के पूर्व बीजों का उपयुक्त राइजोबियम जीवाणु द्वारा उपचार, आवश्यकतानुसार सिंचाई तथा कीटों व रोगों पर विभिन्न विधियों द्वारा नियंत्रण करके दलहनों की उत्पादकता को दुगना किया जा सकता है।

दलहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में वृद्धि : आज विभिन्न दलहनी फसलों की अल्पावधि में पकने वाली विभिन्न प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। इनके उचित प्रचार–प्रसार से दलहनी फसलों के अंतर्गत क्षेत्र में वृद्धि की जा सकती है। विभिन्न धान्य आधारित फसल प्रणालियों में दलहनी फसलों को समावेशित करने से इन प्रणालियों में टिकाऊपन भी आएगा। वर्तमान फसल प्रणालियों में मामूली फेर–बदल करके फसल विविधीकरण करने से दलहनी फसलों के अन्तर्गत 25 लाख हेक्टेअर का अतिरिक्त क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा, सुधरी हुई बंजर भूमि, बेकार पड़ी भूमि, धान से खाली क्षेत्रों तथा कम लाभकारी फसलों के अंतर्गत क्षेत्र को दलहनी फसलों के अन्तर्गत लाकर दलहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र को बढ़ाया जा सकता है। दलहनी फसलों की उपज को बढ़ानें हेतु यह नितांत आवश्यक है कि बीज बदलाव दर में वृद्धि की जाए। आज भी किसान भाई दलहनी फसलों के बीज में मात्र 2 से 5 प्रतिशत बीज ही बदल रहे हैं। उन्नतशील बीजों के प्रसार के लिए बीज बदलाव दर को 10–15 प्रतिशत तक वृद्धि करना बेहद जरूरी है।

क्रान्तिक उत्पादन संसाधनों की सामयिक आपूर्ति : दलहनी फसलों की उत्पादकता में वृद्धि करने हेतु यह आवश्यक है कि दलहन उत्पादक कृषकों को उन्नतशील बीज, कीटनाशी रसायन, जैव उर्वरक, फॉस्फेटिक उर्वरक, जस्ता, गन्धक जैसे सूक्ष्म तत्व तथा समन्वित कीट प्रबन्धन हेतु जैव नियंत्रण कारकों की सामयिक आपूर्ति सुनिश्चित करना अति आवश्यक है।

- बारानी क्षेत्रों में दलहनी फसलों की सिंचाई हेतु स्प्रिंकलर सेटों पर सरकारी अनुदान प्रदान करके इनके प्रयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- आज भी शोध संस्थानों तथा किसानों के खेतों पर पाई जाने वाली उत्पादकता में बड़ा अन्तर है। शोध संस्थानों तथा किसानों के खेतों पर उत्पादकता के अन्तर को कम करने हेतु आक्रामक हस्तान्तरण तकनीक अपनाना चाहिए।

इसके साथ ही साथ, आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, उड़ीसा, तमिलनाडु तथा राजस्थान, जहाँ पर दलहनी फसलों के अन्तर्गत बहुत बड़ा क्षेत्र है, में इन फसलों की उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से भी अत्यन्त कम है। जबकि बिहार, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल जैसे राज्यों में दलहनी फसलों की उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से अधिक है। विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त इन विषमताओं को मिटाने हेतु अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों का एक आक्रामक कार्यक्रम बनाना चाहिए जिससे दलहन उत्पादक किसान दलहनी फसलों से अधिक उत्पादन लेने के गुर जानकर उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी अपना सकें।

पश्च–कटाई प्रौद्योगिकी : दलहनों का प्रसंस्करण मुख्यतः निजी क्षेत्र में ही सम्पन्न होता है। ग्रामों में सस्ती दर पर छोटी दाल चक्कियाँ लगाकर बड़ी कम प्रसंस्करण लागत पर दाल बनाई जा सकती है। भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा विकसित मिनी दाल चक्की जिसकी क्षमता एक घंटे में 80–100 कि.ग्रा. दाल प्रसंस्करण करने की है, अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है। इसी प्रकार दलहनों के बीज भण्डारण हेतु कृषकों को सस्ती दर पर बुखारियों का वितरण सुनिश्चित करना चाहिए जिससे भण्डारण के दौरान होने वाली क्षति से दलहनों को बचाया जा सके।

मूल्य नीति : दलहन उत्पादन विभिन्न जैविक तथा अजैविक कारकों से अत्यन्त प्रभावित होता है। दलहन उत्पादन में वृद्धि हेतु कृषकों को दलहनी फसलों का उचित मूल्य का भुगतान सुनिश्चित करना परम आवश्यक है। यद्यपि भारत सरकार दलहन उत्पादकों को न्यूनतम समर्थन मूल्य की गारन्टी तो देती है परन्तु न्यूनतम समर्थन मूल्यों तथा बाजार के थोक भावों में बहुत अंतर रहता है जो बाजार भाव से 30–60 प्रतिशत तक कम होते हैं। दलहनों के क्रय, भण्डारण एवं वितरण की सरकार द्वारा कोई उचित व्यवस्था न होने से दलहनों की न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति प्रभावी नहीं सिद्ध हो पा रही है। आज मटर, मोंठ, कुल्थी, लोबिया व राजमा जैसी कम उत्पादन होने वाली दालों को भी न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति के अन्तर्गत लाने की आवश्यकता है। हाल ही में भारत सरकार द्वारा शुरू की गई प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का लाभ उठाने के लिए दलहन उत्पादकों को और जागरूक करने की आवश्यकता है।

शोध कार्यक्रम का सुदृढ़ीकरण : दलहनी फसलों पर मौलिक शोध कार्य अत्यन्त सीमित होने के कारण दलहनी फसलों की उपज में आशातीत वृद्धि नहीं हो पा रही है। इन फसलों की उत्पादकता में वृद्धि करने हेतु जैव विविधता की खोज एवं इनका संरक्षण तथा उपयोग, जैव प्रौद्योगिकी द्वारा मुख्य कीटों व रोगों के लिए पराजीनी का विकास तथा गुणवत्ता में सुधार, संसाधनों की कार्यकुशलता में वृद्धि तथा धान्य आधारित फसल प्रणाली में

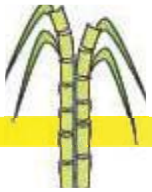

सारिणी 13: विभिन्न जैविक कारकों के प्रति अवरोधिता/सहनशीलता रखने वाली विभिन्न दलहनी फसलों की उन्नतशील प्रजातियाँ

दलहनी फसल	जैविक कारक	उन्नतशील प्रजातियाँ
चना	उकठा	जे.जी 315, अवरोधी, जे.जी. 74, आई.सी.सी.सी. 32, बी.जी. 209, बी.जी. 244, जी.एन.जी. 543, जी.एन.जी.663, के.डब्लू.आर.108, विशाल, पूसा 212, फूले जी 5, पूसा 212, हरियाणा चना 1, जे.जी. 315, विजय, जी.पी.एफ 2, डी.सी.पी. 92–3, सी.एस.जी. 8962 (करनाल चना 1), पूसा 391, आधार (आर.एस.जी 963) जे.जी.के. 1, जे.जी. 130, साकी 9516, आलोक (के.जी.डी. 1168), चमत्कार (बी.जी. 1053), गुजरात चना 1, गुजरात चना 2, गुजरात चना 4, जे.जी. 218, जे.जी. 322, जे.जी.जी. 1,एल 557, पूसा काबुली 1003, सम्राट (जी.एन.जी 469), विशाल
	एस्कोकाइटा अंगमारी	पी.बी.जी. 5, गौरव, जी.एन.जी, 146, सी. 235, बी.जी. 261, जी.पी.एफ 2, जी.एन.जी 469
	अल्प परिपक्वता अवधि	विकास, ज्योति, आई.सी.सी.वी. 2
	उच्च आदानों के प्रति उत्तरदायी	डी.सी.पी. 92–3
	ब्रोटाइटिस ग्रे मोन्ड	साकी 9516
	कौलर रॉट	साकी 9516
	स्टन्ट	साकी 9516
	शुष्क मूल विगलन	आधार (आर.एस.जी. 963), आर.एस.जी. 888, आलोक, पूसा 391, सम्राट (जी.एन.जी 469)
	हरे दानों वाली	सदाबहार 13, हरा चफा
अरहर	उकठा	के.डब्लू.आर. 1, एन.पी. 5, सी.11, बी.डी.एन. 1, बी.डी.एन.2, मारूति, मुक्ता, शारदा, आई.सी.पी. 8863, टी.टी. 6, एन.पी. (डब्लू. आर.) 75, गुजरात तुर हाईब्रिड 1, नरेन्द्र अरहर 1, जवाहर अरहर 13, बी.एस.एम.आर. 736, आशा, मालवीय अरहर 6, आजाद, नरेन्द्र अरहर 2, मालवीय अरहर 13, ए.के.टी. 88–4
	बांझ	बहार, एच वाई 3 सी, नरेन्द्र अरहर 1, बसन्त जे.जी. 315, मालवीय विकल्प, अमर, जवाहर अरहर 3, बी.एस.एम.आर. 736, मालवीय अरहर 6, आशा, आजाद, मालवीय अरहर 13, गुजरात तुर हाईब्रिड 1
	उकठा + बांझ	बी.एस.एम.आर. 736, आशा (आई.सी.पी.एल. 87119)
	आल्टरनेरिया पत्र बुंदकी	डब्लू. बी. 20
	फाइटोप्थोरा अंगमारी	नरेन्द्र अरहर 1, मालवीय अरहर 13
	अल्पावधि	प्रभात, पूसा, अगेती, पूसा 74, पूसा 3, पूसा 84, उपास 120, मानक, आई.सी.पी.एल. 87, टी.टी. 5, टी.टी. 6, टाईप 21, आई.सी.पी.एल. 151 व पूसा 855
	संकर	आई.सी.पी.एच. 8, पी.पी.एच. 4, ए.के.पी.एच. 4101, सी.ओ.एच. 1, जी.टी.एच. 1
उर्द	पीत चितेरी रोग	पन्त उर्द 19, पन्त उर्द 30, यू.जी. 218, माश 338, डब्लू. बी.यू. 108, नरेन्द्र उर्द 1, पी. डी.यू. 1, के.यू. 300, आजाद उर्द 1, बसन्त बहार, के.यू. 96–3 एन.डी.यू. 99–2, बिरसा उर्द 1, उत्तरा
	चूर्णी कवक रोग	एल.बी.जी. 17, को. 4
	उकठा+जड़ विगलन	एल.बी.जी. 402, माश 414
	सर्कोस्पोरा पत्र बुंदकी	बर्खा
	अल्पावधि	टाईप 9, पन्त उर्द 30, पी.डी. यू. 1, यू.जी. 218

दलहनी फसल	जैविक कारक	उन्नतशील प्रजातियाँ
मूंग	पीत चितेरी रोग	मेघ (आई.पी.एम. 99.125)एम.एल. 267, एम.एल. 5, एम.एल.1, एम.एल. 337, एम.एल. 613 नरेन्द्र मूंग 1, सम्राट (पी.डी.एम. 84–139), पी.डी.एम. 11, पी.डी.एम. 54 (मोती), पन्त मूंग 1, पन्त मूंग 2, पन्त मूंग 3, पन्त मूंग 4, एम.यू.एम. 2, गंगोत्री (गंगा 8), पूसा 9531, एच.यू.एम. 12, एस.एम.एल. 668, एच.यू.एम. 6, एच.यू.एम. 2
	चूर्णी कवक रोग	साबरमती को. 4, सम्राट, जवाहर मूंग 721, टी.एम. 99–37, टी.ए.आर.एम.1
	एन्थ्रेकनोज	सम्राट
	सर्कोस्पोरापत्र बुंदकी	एच.यू.एम. 12, गंगोत्री (गंगा 8)
	अल्पावधि	टाईप 44, पी.एस. 16, के. 815, पूसा बैसाखी, पी.एस.7, पी.एस. 10, पी.डी.एम. 11, जी. 65
मसूर	रतुआ	पन्त मसूर 406, पन्त मसूर 639, पन्त मसूर 4, डी.पी.एल. 15 (प्रिया), डी.पी.एल. 62 (शेरी), आई.पी.एल. 81 (नूरी), लैंस 4076, आई.पी.एल. 406 (अंगूरी), डब्लू.बी.एल 58, के.एल.एस. 218, एच.यू.एल. 57
	उकठा	आई.पी.एल. 81 (नूरी), आई.पी.एल. 406 (अंगूरी), पी.एल. 77–2, पंत मसूर 4, डी.पी. एल. 15 (प्रिया), डी.पी.एल 62 (शेरी), डब्लू.बी.एल 58, जवाहर मसूर 3
	मूल विगलन	डी.पी.एल. 15 (प्रिया), पंत मसूर 4
	मोटे दानों के लिए	डी.पी.एल. 15 (प्रिया), डी.पी.एल 62 (शेरी), सपना, लैंस 4076
मटर	चूर्णी कवक	रचना (के.पी.एम.आर.10), जे.पी. 885, एच.एफ.पी. 8909, एच.यू.पी. 2, पन्त मटर 5, डी. एम.आर. 11, आदर्श (आई.पी.एफ. 99–25), विकास (आई.पी.एफ.डी. 99–13), प्रकाश (आई.पी.एफ.डी. 1–10), उत्तरा, डी,एम.आर. 27, पूसा प्रभात (डी.डी. आर. 23), अम्बिका, शिखा, वी.एल. 42, पन्त मटर 42, एच.एल.पी. 9907 बी. (हरियाल) , अमन (आई.पी.एफ. 5–19), के.पी.एम.आर. 522, मालवीय मटर 15, के.एफ.पी.डी. 24, आई. पी.एफ. 4–9, स्वपना, स्वाति, के.पी.एम.आर. 400, के.पी.एम.आर. 522, अपर्णा (एच. एफ.पी. 4), पूसा पन्ना (डी.डी.आर. 27)
	रतुआ	के.एफ.पी.डी. 24, अमन (आई.पी.एफ. 5–19), आई.पी.एफ. 4–9, मालवीय मटर 15, प्रकाश (आई.पी.एफ.डी. 1–10)
	अल्पकालिक	पूसा प्रभात (डी.डी. आर. 23), पूसा पन्ना (डी.डी.आर. 27)
राजमा	बी.सी.एम.वी.	अम्बर (आई.आई.पी.आर. 96–4)

अल्पकालिक दलहनी फसलों को समावेशित कर टिकाऊ खेती पर बल देना नितान्त जरूरी है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि वर्षा पर अत्याधिक निर्भरता, किसानों द्वारा दलहनी फसलों की उन्नत उत्पादक प्रौद्योगिकी से अनभिज्ञता, कम लाभ तथा प्रसार एजेन्सियों के कमजोर तन्त्र के कारण देश में दलहन उत्पादन वांछित गति से वृद्धि नही कर पा रहा है। रोगरोधी प्रजातियों के विकास, उन्नत व गुणवत्तापूर्ण उर्वरक तथा सिंचाई के प्रति उत्तरदायी प्रजातियों के विकास, दलहनों के संगठित प्रसंस्करण तथा विपणन तथा वैज्ञानिक भण्डारण की सुविधाएं विकसित करने हेतु योजनाविदों को ध्यान देकर देश में दालों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

अरहर उत्पादन में उन्नत तकनीक

एस.एस. सिंह
भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर

उत्तर प्रदेश में खरीफ मौसम में दलहनी फसलों में मुख्यतः अरहर की खेती की जाती है। वर्ष 2014–15 के आँकड़ों के अनुसार प्रदेश में अरहर 2.87 लाख हेक्टेयर में उगाई जाती है जिसकी उत्पादकता 6.06 कु./हे. है। वर्ष 2015–16 में प्रदेश में अरहर 2.65 लाख हेक्टेयर में उगाई गई जिसकी उत्पादकता 9.00 कु./हे. थी। अरहर से प्रोटीन युक्त भोजन के अलावा पशुधन को पौष्टिक चारा तथा मिट्टी को पोषक तत्वों एवं स्वास्थ्यवर्धक सूक्ष्मजीवों का संवर्धन होता है। भूमि की भौतिक, रसायनिक एवं जैविक दशा सुधरती है जिससे खेती में टिकाऊपन आता है। खरीफ दलहनों जैसे अरहर को सुखा, जल जमाव अत्यधिक आर्द्रता एवं कीड़ों और बीमारियों का प्रकोप झेलना पड़ता है अतः इनकी वास्तविक उत्पादकता अपनी अनुवांशिक क्षमता से काफी कम हैं। कुछ प्रबंधनो द्वारा अरहर की उत्पादकता बढ़ायी जा सकती है।

प्रभेद

अरहर की अल्प कालीन प्रभेद जिन्हें जून तक बोकर दिसम्बर गेहूँ बो सकते हैं उनमें पारस, यू.पी.ए.एस. 120, मानक पूसा 992, पूसा 855, पी.ए.यू. 881, पी. ए.201 एवं वी.एल.ए. 1 प्रमुख है। इनके साथ खरीफ में मूँग, उड़द तथा मक्का की अन्तरवर्ती खेती कर सकते है। ऐसी प्रजातियों को सिंचित अवस्था में जून में ही लगा देना चाहिए जिससे रबी मे गेहूँ समय से बोया जा सके।

दीर्घकालीन अरहर में लगायी जाने वाली प्रमुख प्रजातियाँ है बहार, अमर, नरेन्द्र अरहर–1, पूसा 9, नरेन्द्र अरहर–2, मालवीय अरहर–13, एम.ए. 6, आजाद, डी.ए. 11, आई.पी.ए. 203 तथा मालवीय अरहर।

बुआई का समय

इन प्रजातियों को जुलाई में वर्षा होते ही खेत नम होने पर बो देना चाहिए। अच्छी तरीके से तैयार खेत में कवकनाश रसायन (2–3 ग्राम केप्टान या थीरम) के अलावा राइजोवियम तथा पी.एस.वी अथवा वी.ए.एम. से उपचारित बीज बोना चाहिए। उपचारित बीज बोने से फसलों के जड़ क्षेत्रों के पास जड़ ग्रंथिका वाले सूक्ष्म–जीवों की आबादी बढ़ती है तथा अंकुरण के समय बीमारी एवं कीटों से बचाव होता है। पी.एस. वी एवं वी.ए.एम. के प्रयोग से नत्रजन का स्थिरीकरण होता है और पौधों के लिए भूमि से फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है।

बुआई की दर

अरहर बुवाई में अगेती प्रजातियों हेतु 20 किलो/हे. तथा दीर्घ कालीन प्रजातियों में 10–12 किलो/हे. बीज दर रखना चाहिए। अरहर की अच्छी उपज लेने हेतु बीज उपचार, राइजोवियम, पी.एस.वी. का प्रयोग तथा उर्वरकों के रूप में प्रति हे. 15–20 किलो नत्रजन, 40 से 60 किलो फास्फोरस, 20 किलो पोटाश तथा 20 किलो सल्फर प्रति हे. प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा मिटटी जॉच कराकर प्रति हे. 15 किलो जिंक सल्फेट, 10 किग्रा बोराक्स, 1 किलो सोडियम मालीविडेट तथा 1 किलो आयरन देना चाहिए। अगेती अरहर को 50x15 सेमी दूरी पर बोने से 3.0–3.5 लाख पौधे/हे. तथा पछेती अरहर को 75x25 सेमी दूरी पर बोना चाहिए। इससे 0.7 से 0.8 लाख पौधे/हे. मिलते हैं। बुवाई के 24 घण्टे के अन्दर पेंडीमेथिलीन खरपतवारनाशी के 1 किलोग्राम क्रिया शील तत्व छिड़काव करने से शुरू के 20–25 दिनों तक खरपतवारों का प्रकोप कम हो जाता हैं खरपतवारनाशी के प्रयोग न करने पर 30–35 दिनो पर एकबार निकाई करना चाहिए।

अरहर में उचित जल निकासी का प्रबन्ध रखना चाहिए तथा अम्लीय या क्षारीय मिटटी में इसकी खेती नही करनी चाहिए। जिन मिट्टियो का पी.एच.मान 6.5 से 7.5 के बीच हो वे अच्छी होती हैं। बलुई दोमट एवं चिकनी दोमट भूमि खरीफ दलहन के लिए उपर्युक्त होती है।

कम अंकुरण वाला, कीट एवं बीमारियो से ग्रसित या अविश्वसनीय श्रोत का बीज नहीं बोना चाहिए। कुछ ऐसी सस्य क्रियाऐं हैं जिनका उपयोग करके किसान अपनी लागत कम कर सकते हैं।

सीमित जुताई अर्थात न्यूनतम जुताई का प्रयोग करके जुताई पर लागत कम कर सकते हैं इसमें पंक्तिवद्ध जुताई, कूड़ों में बुवाई के लिए जुताई जैसी तकनीक प्रयोग में लाते हैं जीरो टिलेज अर्थात बिना जुताई सीधी बुवाई जीरो टिलेज मशीन से की जा सकती है। इनके लिए इनक्लांइट प्लेट प्रणाली की जीरो टिलेज मशीने उपलब्ध हैं जो कि बिना जुताई किये सीधे अरहर, उड़द या मूँग की बुवाई कर देती है और जुताई का पूरा खर्च बच जाता है बड़े प्लांटर अर्थात मेड़ी बनाते हुए बुवाई करते जाने वाली ट्रैक्टर चालित मशीन से दलहनों की बुवाई करने से भी बचत होती है। इसमें बढ़िया तैयार खेत में बड़े प्लान्टर को ट्रैक्टर के पीछे जोड़कर एक साथ 2 से 3 ऊँचे मेड़ो का निर्माण होता है जिसमें 40–60 सेमी. चौड़ी सतह तथा 30 सेमी. नाली या कूड़ का निर्माण होता है इसमें साथ ही साथ फसल की बुवाई एवं खाद भी पड़ जाती है।

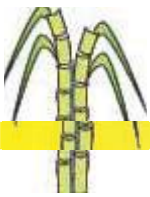

बेड प्रणाली से बुवाई करने पर मेड़ पर दलहन तथा कूड़ों में मक्का, ज्वार बाजरा जैसी फसलें लगायी जा सकती हैं। इसमें उकठ़ा बीमारी का प्रकोप कम हो जाता है तथा 20–25 प्रतिशत जल की बचत एवं 70–80 प्रतिशत उर्जा की बचत होती है। कुल लाभ में 8–10 हजार प्रति हेक्टेयर बढ़ोत्तरी भी होती है।

मेड़ों पर बुवाई खरीफ की दलहनी फसलो के लिए काफी लाभप्रद होती है। इसमें मेड़ बनाने वाले यंत्र से 60–75 सेमी. दूरी पर दो मेड़ों के बीच का बिन्दु होता है। इस विधि से बोने पर अरहर में फाइटोप्थोरा बीमारी का प्रकोप कम होता है क्योंकि इसमें जल निकास उत्तम होता है।

लेजर पारा से भूमि का समतली करण करने से दलहनों के उत्पादन में आशातीत वृद्धि होती है। लेजर लेवलर बुवाई के पहले प्रयोग करने से यह खेतों का उच्च श्रेणी का समतली करण करता है जिससे पानी का जमाव कहीं ऊँचा नीचा नहीं होता एवं पोषक तत्वों का ज्यादा सार्थक उपयोग होने से उपज 10–15 बढ़ जाती है।

फसलों के विविधीकरण पर सरकार काफी जोर दे रही है। इसके लिए अल्पकालीन, 150 दिनों में तैयार होने वाली अरहर की बुवाई जून मे करके दिसम्बर मे गेहूँ लगाना चाहिए। अन्तरवर्ती फसल के रूप में सूर्यमुखी के साथ मूगँ, अरहर के साथ मूगँफली, या मूगँ या उड़द, सूर्यमुखी के साथ उड़द, बाजरा के साथ उड़द या मूँग, अरहर के साथ ज्वार या मक्का की अर्न्तवर्ती खेती अधिक उपज के साथ कीड़ों और बीमारियों का प्रकोप कम कर देती है। अरहर सामान्यतः अगली रबी फसल गेहूँ को 30–40 किग्रा नत्रजन/हे. उपलब्ध कराती है जिससे खेत बलवान हो जाता है। अतः किसान भाइयो जितना ज्यादा संभव हो अरहर की उन्नत तरीके से खेती करें।

वाह रे अरहर की दाल

कितना स्वादिष्ट है, चावल के साथ खाओ
बासमती हो तो क्या कहना, भर कटोरी थाली में उड़ेलो
थोड़ा गर्म घी छोड़ो, भुनी हुई प्याज, लहसन का तड़का
इस दाल के सामने क्या है पाँचतारा व्यंजन
उँगली चाटो, चाकू–चम्मच वाले क्या समझें इसका स्वाद
वाह रे भोजन के आनन्द
अरहर की दाल और बासमती चावल
और उस पर थोड़ा सा घी।

हिंदी भारत वर्ष के हृदय, देश स्थित करोड़ो नर–नारियों के हृदय और मस्तिष्क को खुराक देने वाली भाषा है।

–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

लाभकारी मूल्य प्राप्त करने के लिए दलहनों की प्रभावी विपणन व्यवस्था की भूमिका

अश्विनी कुमार शर्मा एवं ब्रह्म प्रकाश
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

दलहनों के उत्पादन की भाँति इसका विपणन भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। अब इस बात की जागरूकता बढ़ रही है कि किसी भी फसल का केवल उत्पादन ही पर्याप्त नहीं है अपितु इसका उचित विपणन भी परम आवश्यक है। एक प्रभावी विपणन व्यवस्था किसानों को उनके उत्पाद के उचित मूल्य दिलाने की गारंटी प्रदान करती है तथा उनको अपने लाभ को और बढ़ाने तथा निवेश करने को भी प्रोत्साहित करती है जिससे उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा इससे विपणन योग्य आधिक्य तथा कृषकों की आय में वृद्धि होती हैं।

भारत से दलहनों का निर्यात बंगलादेश, श्रीलंका, संयुक्त अरब अमीरात, नेपाल, सऊदी अरब, कुवैत, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मिस्र, मलेशिया, कनाडा, स्पेन, इटली, पाकिस्तान, यमन गणराज्य, अलजीरिया व बहरीन को किया जाता है। दालों का कम उत्पादन होने पर भारत ने अब दूसरे देशों से दालों का आयात करना भी प्रारम्भ कर दिया है। विश्व के मुख्य दलहन बाजार निम्न तालिका में वर्णित हैं। दलहन उत्पादों एवं व्यापारियों को इन बाजारों में विपणन होने वाली दालों की गुणवत्ता व अन्य कारकों (लागत, शुल्क इत्यादि) की जानकारी होने से उनके अपने घरेलू उत्पाद व विपणन व्यवस्था को और सुव्यवस्थित करने में मदद मिल सकती हैं।

दाल	मुख्य आयातक देश
देसी चना	म्यान्मार तंजानिया, ऑस्ट्रेलिया, चीन, संयुक्त अरब अमीरात
अरहर	म्यान्मार, चीन तथा तन्जानिया
उर्द	म्यान्मार, सिंगापुर तथा थाइलैण्ड
मूँग	म्यान्मार, सिंगापुर, चीन तथा ऑस्ट्रेलिया
हरी तथा पीली मटर	कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, हंगरी, तन्जानिया व संयुक्त राष्ट्र अमेरिका
मसूर	नीदरलैण्ड, सीरिया, कनाडा, टर्की व चीन
काबुली चना	ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, टर्की, ईरान तथा म्यान्मार

भारत में कुल 7246 नियमित दाल मण्डियाँ हैं जिसमें 2433 प्रमुख बाजार तथा शेष 4813 उप बाजार क्षेत्र हैं। ये मण्डियाँ 35 राज्य/केन्द्र शासित प्रदेशों में स्थित हैं। इन मण्डियों में साबुत दलहनों सहित अन्य कृषि उत्पादों का विपणन होता हैं।

यद्यपि भारत सरकार द्वारा देश भर के बाजारों में दलहनों के विपणन के लिए विभिन्न प्रोत्साहन दिए जाते हैं लेकिन कम दलहन उत्पादन करने वाले क्षेत्रों में विपणन की सुविधाएं अपर्याप्त हैं। दलहन उत्पादक कृषकों में विश्वास पैदा करने के लिए आन्ध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, झारखण्ड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश व पश्चिम बंगाल में न्यूनतम मूल्य समर्थन योजना के अन्तर्गत न्यूनतम समर्थन मूल्य से प्रचलित मूल्यों के कम होने पर सरकारी एजेंसी नेफेड द्वारा स्थापित क्रय केन्द्रों से दालों को खरीदा जाता हैं। इस योजना का लाभ कम दलहन उत्पादन करने वाले राज्यों को भी मिलना चाहिए। वर्तमान में सरकार की यह योजना अरहर, मूंग, उर्द, मसूर तथा चना जैसी पाँच प्रमुख दलहनों पर ही लागू है।

भारत में गत कुछ वर्षों में दलहन उत्पादन में सार्थक वृद्धि दर्ज की गई है। ऐसा दलहनों की शीघ्र पकने वाली, उच्च उत्पादक क्षमता वाली रोग रोधी प्रजातियों/संकर, उर्वरक, सिंचाई, राइजोबियम कल्चर, कवकनाशी तथा पादप सुरक्षा रसायनों के बढ़े हुए प्रयोग से संभव हो पाया है। इससे दलहन उत्पादकों की आय निश्चित रूप से बढ़ी है। दलहनों के विपणन को और सुदृढ़ करने के लिए कृषक बन्धु निम्नलिखित बातों पर ध्यान देकर अधिक आय अर्जित कर सकते हैं। इनमें से कुछ बिन्दुओं पर कार्यवाही कृषक अपने खेत/घर में ही स्वयं निर्धारित कर सकते हैं। कुछ बिन्दुओं पर नई विकसित तकनीक एवं निवेश की आवश्यकता होगी। कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातों पर अमल के लिए किसानों को आपस में मिलकर तथा छोटे–छोटे समूह बनाकर कार्य करने की आवश्यकता होगी।

अलग–अलग गुणवत्ता वाली दालों को अलग–अलग बेचें

विभिन्न प्रजातियों के उत्पादों की बिक्री अलग–अलग की जानी चाहिए। मिश्रित प्रजातियों के ढेर का किसानों को कम मूल्य मिलता है। ऐसा देखा गया है कि जब किसान दालों की विभिन्न प्रजातियों को अलग–अलग बेचते हैं तो विशिष्ट प्रजाति के लिए क्रेताओं की विशेष पसंद के कारण किसानों को अपने उत्पाद का ऊँचा मूल्य प्राप्त होता है।

दालों को श्रेणीकरण करके ही बेचें

विभिन्न दलहनों/दालों की गुणवत्ता श्रेणी निर्धारित की गई है; जैसे भारत सरकार द्वारा मूल्य समर्थन योजना के अन्तर्गत खरीफ दलहनी फसलों में अरहर, उर्द व मूँग तथा रबी में चना व मसूर की उचित औसत गुणवत्ता के मानक निर्धारित किए गए हैं। चना में वाह्य तत्व 1 प्रतिशत, अन्य खाद्यान्न 3 प्रतिशत, नष्ट दाने 3 प्रतिशत, आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त दाने 4 प्रतिशत, अविकसित, सिकुड़े व टूटे दाने 6 प्रतिशत, अन्य प्रजातियों का मिश्रण 5 प्रतिशत तथा घुन व अन्य कीटों से क्षतिग्रस्त दाने 4 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए। मसूर में वाह्य तत्व 2 प्रतिशत, अन्य मिश्रण 3 प्रतिशत, क्षतिग्रस्त दाने 3 प्रतिशत, आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त दाने 4 प्रतिशत, अविकसित व सिकुड़े दाने 3 प्रतिशत तथा घुन व अन्य कीटों से क्षतिग्रस्त दाने 4 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए। अरहर, मूंग व उर्द में वाह्य तत्व 2 प्रतिशत, अन्य मिश्रण 3 प्रतिशत, क्षतिग्रस्त दाने 3 प्रतिशत, आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त दाने 4 प्रतिशत, अविकसित एवं सिकुड़े दाने 3 प्रतिशत, कीटों व घुन से क्षतिग्रस्त दाने 4 प्रतिशत तथा नमी 12 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

दालों को श्रेणीकरण करके बेचना किसानों के लिए सदैव लाभकारी रहता है। छँटी हुई दाल ऊँचे मूल्यों पर तुरन्त बिक जाती है। श्रेणीकरण में आने वाली लागत श्रेणीकृत किए गए उत्पाद की बिक्री से अर्जित अतिरिक्त आमदनी की तुलना में नगण्य होती है।

सदैव फसल साफ करके ही बिक्री हेतु मण्डी लाएं

किसानों द्वारा बिक्री के लिए बाजार में लाई गई फसल साफ तथा कंकड़–पत्थर रहित होनी चाहिए। फसल में अशुद्धियाँ मिली होने के कारण बाजार में क्रेताओं द्वारा किसानों को कम मूल्य दिया जाता है। साफ फसल अधिक क्रेताओं को अपनी ओर आकर्षित करती है तथा वे साफ फसल के लिए अधिक मूल्य अदा करते हैं।

बाजारों में उत्पादों के वर्तमान मूल्यों से परिचित रहें

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत मूल्य आधारित योजना के तहत खरीफ ऋतु में अरहर, मूंग, उर्द तथा रबी में चना व मसूर दालों के क्रय हेतु भारत सरकार की भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारिता विपणन महासंघ (नेफेड), नई दिल्ली नोडल एजेन्सी है। जब खुले बाजार में इन दालों के मूल्य सरकार द्वारा उस वर्ष घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे हो जाते हैं तो सरकार दलहनों के प्रमुख उत्पादक जिलों में क्रय केन्द्र स्थापित करके दालें खरीदती है।

किसानों को सरकार द्वारा प्रतिवर्ष घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्यों की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। किसी भी परिस्थिति में किसानों को दलहनों को न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम पर नहीं बेचना चाहिए। कृषकों को बाजार में न्यूनतम समर्थन मूल्य न मिलने पर दालों को नेफेड जैसी सरकारी एजेंसियों को न्यूनतम समर्थन मूल्यों पर बेचना चाहिए। बाजारों में कृषि उत्पादों के वर्तमान मूल्यों से भी किसानों को परिचित रहना चाहिए। इससे उनको यह निर्णय लेने में सहायता मिलती है कि अपने उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त करने हेतु उसे कब तथा कहाँ बेचना है। दालों में मूल्य संवर्धन के कई तरीके हैं तथा उनमें से किसी एक तरीके को अपनाकर भी उच्च मूल्य अर्जित किया जा सकता है।

अपनी फसल नियमित मण्डियों में ही बेचें

किसानों को अपने उत्पाद को केवल नियमित मण्डियों में ही बेचना चाहिए। अनधिकृत विपणन मूल्य ग़ैरज़रूरी कटौतियाँ, गलत तौल, गलत बिक्री पद्धति, साफ फसल में भी कर्दा काटना, नीलामी में बोली लगाने वालों द्वारा उनके उत्पाद के बड़ी मात्रा में नमूने लिए जाने, धार्मिक व दान के उद्देश्यों से की जाने वाली अनैतिक गड़बड़ियाँ अनियमित मण्डियों में काफी सामान्य हैं। इसी कारण नियमित मण्डियों में अपनी उपज बेचने वाले किसानों की तुलना में अनियमित मण्डी में बेचने वाले किसानों को सदा कम मूल्य पर अपनी उपज बेचने को बाध्य होना पड़ता हैं।

विभिन्न दाल बाजारों एवं विपणन माध्यम की जानकारी अर्जित करें

किसानों को प्रचलित दलहन विपणन व्यवस्था का ज्ञान होना चाहिए। दलहन उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचने की श्रृखंला को विपणन श्रृखंला कहते हैं। निजी तथा नियमित मण्डियों में अपनाई जाने वाली श्रृखंला इस प्रकार है:

निजी मण्डियों में विपणन श्रृखंला :

- उत्पादक–दाल मिलर–उपभोक्ता
- उत्पादक–ग्रामीण व्यवसायी–दाल मिलर–थोक व्यवसायी–फुटकर व्यवसायी–उपभोक्ता
- उत्पादक–दाल मिलर–फुटकर व्यवसायी– उपभोक्ता
- उत्पादक–थोक व्यवसायी–दाल मिलर– फुटकर व्यवसायी–उपभोक्ता
- उत्पादक–थोक व्यवसायी–दाल मिलर–थोक व्यवसायी–फुटकर व्यवसायी–उपभोक्ता
- उत्पादक–थोक व्यवसायी–फुटकर व्यवसायी– उपभोक्ता (साबुत मूंग के लिए)
- उत्पादक–कमीशन एजेन्ट–दाल मिलर–थोक व्यवसायी–फुटकर व्यवसायी–उपभोक्ता

संस्थागत विपणन श्रृखंला :

- उत्पादक–क्रय संस्था–दाल मिलर–उपभोक्ता
- उत्पादक–क्रय संस्था–दाल मिलर–थोक व्यवसायी–फुटकर व्यवसायी–उपभोक्ता
- उत्पादक–क्रय संस्था–दाल मिलर–फुटकर व्यवसायी–उपभोक्ता
- निर्यात करने वाला देश–आयात करने वाला देश–निजी/सरकारी संस्था–थोक व्यवसायी/सहकारी संस्थाएं–फुटकर व्यवसायी/ग्रामीण समिति– उपभोक्ता (आयातित दालों के लिए)

कटाई के तुरन्त बाद अपनी फसल को बेचने से बचना चाहिए

किसानों को कटाई के तुरन्त बाद अपनी फसलों को बाजार में नहीं बेचना चाहिए। यह एक सामान्य प्रवृत्ति है कि

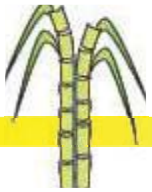

कटाई के समय किसी भी फसल का मूल्य न्यूनतम होता है। उत्तर प्रदेश की नियमित मण्डियों में किए गए एक अध्ययन के अनुसार चने के कुल आवक का 59 प्रतिशत, अरहर का 51 प्रतिशत तथा मटर व मसूर का 60 प्रतिशत आवक मार्च से जून के महीनों की अवधि में मण्डियों में आता हैं जब मूल्य न्यूनतम होते हैं। इसी प्रकार मूंग की आवक का 60 प्रतिशत तथा उर्द की आवक का 55 प्रतिशत जून से अगस्त तथा अक्टूबर से जनवरी के मध्य बाजारों में आता है, जब मूल्य न्यूनतम होते हैं। किसान भाई कटाई के तुरन्त बाद अपने उत्पादों को बेचने के स्थान पर बाद के महीनों में अपने उत्पाद को बेचकर अपनी उपज का अच्छा मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

दालों के उचित भण्डारण की भूमिका

कृषक के स्तर पर अतिरिक्त उत्पादन तथा थोक व्यवसायी/मिलरों के पास उपलब्ध स्टॉक को अल्पावधि या दीर्घावधि के लिए उपभोग अथवा अगले बुवाई सत्र में बुवाई हेतु भण्डारित करना पड़ता है। इनको घुन जैसे कीट, चिड़ियाँ, कवक, जीवाणु तथा चूहे क्षतिग्रस्त करते हैं। भण्डारण में 10 प्रतिशत से अधिक नमी भण्डारण के लिए अच्छी नहीं होती है। अधिक नमी होने की दशा में दानों के साथ बहुत सारी समस्याएं आ जाती हैं। अतः दालों का भण्डारण उचित एवं वैज्ञानिक विधि से करना चाहिए।

अपनी उपज को मूल्य संवर्धन करके ही बेचें

किसानों द्वारा प्रायः अप्रसंस्करण अवस्था में ही दलहन बेचे जाते हैं जबकि इनको प्रायः प्रसंस्करण करने के बाद ही प्रयोग में लाया जाता है। दलहनों को प्रायः दो बीजपत्रों के रूप में तोड़कर व छिलके उतारकर जिसे 'दाल' कहा जाता है, के रूप में प्रयोग में लाया जाता है जिससे वह अधिक स्वादिष्ट तथा पाचन योग्य हो जाती है। इसके अतिरिक्त छिलकों से कई अपोषक तत्व भी निकल जाते हैं। प्रसंस्करण की हुई दाल का बाजार में अधिक मूल्य मिलता है। साबुत चना बाजार में प्रायः रू. 50/किग्रा. के मूल्य पर बेचा जाता है परन्तु इसको पीसकर बेसन के रूप में बेचने से इसका मूल्य रू. 80–100/किग्रा. तक पहुँच जाता है। ऐसे किसान जिनके पास विभिन्न दलहनों की थोड़ी ही मात्रा विपणन योग्य उपलब्ध होती है, को प्रसंस्करण करके दाल बनाकर ही बेचना चाहिए। दलहनों का प्रसंस्करण भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा विकसित मिनी दाल मिल द्वारा किया जा सकता है। दालों को प्रसंस्करित करके विपणन से किसानों को अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

दालों के विपणन/भण्डारण में ऋण तथा बीमा की आवश्यकता

किसानों को अल्पावधि एवं मध्यम अवधि के ऋण उपलब्ध करने के लिए फसल ऋण योजना को लागू किया जा रहा है। इस योजना से सभी वर्गों के कृषकों को लाभ मिलेगा जिसके अर्न्तगत कृषक डेढ़ वर्ष में ऋण वापिस कर सकते हैं। किसान क्रेडिट कार्ड योजना के अन्तर्गत उन सभी कृषकों को लाभ मिलेगा जिनका पिछले 2 वर्षों से ऋण लेन–देन में अच्छा रिकार्ड रहा है। कृषि दीर्घकालीन ऋण योजना के अन्तर्गत 3 से 15 वर्षों तक के लिए भी ऋण देने की व्यवस्था की गई है जिससे ऐसे भण्डार गृह इत्यादि धरोहर स्थापित किए जा सकते हैं। भारत सरकार द्वारा हाल ही में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का शुभारम्भ किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत आग लगने के अलावा बिजली गिरने, तूफान, ओला पड़ने, चक्रवात अंधड़, बवंडर, बाढ़, जलभराव, जमीन धसने, सूखा, खराब मौसम, कीट व फसल को होने वाली बीमारियों आदि जोखिम से फसल को होने वाले नुकसान को शामिल करके एक ऐसा बीमा कवर दिया गया है जिसमें इनसे होने वाले सारे नुकसान से किसानों को सुरक्षा प्रदान हो। यदि बीमित किसान बुवाई/रोपाई के लिए खर्च करने के बावजूद खराब मौसम के कारण बुआई/रोपाई नहीं कर पाते तो वे भी बीमित राशि के 25 प्रतिशत तक हुए नुकसान का दावा कर सकेंगे। इस योजना के अन्तर्गत किसानों को अपनी फसल का बीमा कराने हेतु बहुत कम प्रीमियम देना होगा जो खरीफ फसलों में 2 प्रतिशत व रबी फसलों में 1.5 प्रतिशत होगा। लघु व सीमान्त कृषक भी आसानी से इस प्रीमियम का भुगतान कर सकते हैं। कृषक भारतीय खाद्य निगम तथा केन्द्रीय भण्डारण निगम में उपलब्ध सुविधाओं में अपने उत्पादों का भण्डारण कर लाभ उठा सकते हैं।

दलहन किसान उत्पादन संस्थाओं का गठन

किसानों का संगठन (विशेष रूप से लघु एवं सीमान्त कृषक) कृषि विपणन की कई प्रमुख बाधाओं का समाधान करने में एक अतिमहत्वपूर्ण साधन के रूप में विकसित हो रहा है। भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के कृषि एवं सहकारिता विभाग ने कृषक उत्पादक संगठन को कम्पनी अधिनियम 1956 के विशेष प्रावधान के अन्तर्गत पंजीकरण करने को किसानों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य दिलानें के लिए मुख्य संस्थागत सुधार के रूप में चिन्हित किया है। अतः कृषक बन्धु अपने दलहन उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए कम से कम 10 कृषक बन्धुओं का एक एफ.पी.ओ. बनाकर दलहन विपणन से ज्यादा मुनाफा कमा सकते हैं।

कम मात्रा वाली दालों को सहकारी समितियों द्वारा ही बेचें

राजमा जैसी दाल, जो कुछ किसानों द्वारा ही तथा अत्यन्त कम मात्रा में उत्पादित की जाती है, अपनी कम मोल–तोल की क्षमता के कारण किसान ऐसी फसलों का उचित मूल्य प्राप्त नहीं कर पाते। यदि ये किसान भाई अपनी उपज के लिए किसी सहकारी विपणन समिति गठित कर लें तो वे सामूहिक मोल–भाव की क्षमता के कारण अपने उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त करने में सफल हो सकेंगे।

यदि दलहन उत्पादक कृषक उपरोक्त बातों का ध्यान रखेंगे तो निश्चित ही उनको दलहन/दाल का उचित मूल्य प्राप्त होगा।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

खरीफ मूँग की उन्नत उत्पादन तकनीक

पंकज कुमार सिंह, राजीव कुमार सिंह एवं राम जीत
कृषि विज्ञान केन्द्र, बलिया

बढ़ती आबादी और घटती भूमि के कारण खाद्यान्नो में आत्मनिर्भर बनाने के लिए कृषि पर अधिक जिम्मेदारी आ गयी है। उपज बढ़ाने एवं भूमि का अधिकाधिक उपयोग करने के लिए निरंतर अनुसंधान हो रहे हैं। सिंचाई सुविधाओं के विस्तार ने कृषि क्षेत्र में क्राँति ला दी है। अब एक या दो फसल तक सीमित न रहकर अधिक आय एवं उपज के लिए फसल चक्र निर्धारित कर वर्ष में तीन से चार फसलें प्राप्त करने की ओर अग्रसर हैं।

दलहनी फसलों में मूँग की महत्वपूर्ण भूमिका है। मूँग में उच्च श्रेणी का सुपाच्य प्रोटीन 25 प्रतिशत होने के कारण इसकी माँग बारह महीने बनी रहती है। जबकि इसकी खेती मुख्यतया मिलवाँ फसल के रूप में वर्षाकालीन समय में की जाती है। किंतु अब कई प्रान्तो में इसकी खेती जायद एवं खरीफ में प्रमुखता से की जा रही है। उत्तर प्रदेश के एटा, अलीगढ, हाथरस, देवरिया, इटावा, फर्रूखाबाद, मथुरा, ललितपुर, कानपुर देहात, हरदोई एंव गाजीपुर जनपद प्रमुख मूँग उत्पादक के रूप में उभरे हैं। अन्य जनपदों में भी इसकी सम्भावनाएं हैं। इसके दो कारण हैं, एक तो मूँग की अतिरिक्त पैदावार मिलती है, वहीं दूसरी ओर इसके द्वारा भूमि में नत्रजन का स्थिरीकरण भी किया जाता है। जिसमें भूमि की उर्वरा भाक्ति बढती है।

उन्नत किस्में

जायद के लिए कम समय में पकने वाली उन्नत किस्मों का चयन किया जाना चाहिए। इसके लिए हरे मूँग की पुरानी किस्म पूसा वैशाखी, सम्राट, पी.डी.एम.–11, टाईप–44, के.–851, तथा मूँग जनप्रिया उपयुक्त हैं। ये 60–65 दिन में तैयार हो जाती है। इसके अतिरिक्त पंत मूँग–1, 2, 3, मानवीय, जनचेतना, मालवीय, जागृति तथा नरेन्द्र –1, 65 – 70 दिन में पकते हैं। इसकी फलियां लम्बी, पकने पर काली हो जाती हैं। यह वाइरस रोग प्रतिरोधी है। इनकी औसत पैदावार 12–14 कुन्तल प्रति हेक्टेयर, अन्य किस्मों से अधिक होती है।

ऐसे करें खेत तैयार

दोमट तथा हल्की दोमट भूमि जिसमें पानी का समुचित निकास हो, इस फसल के लिए उत्तम है। वर्षा के बाद पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा एक दो जुताई देशी हल से करके खेत को बुवाई हेतु जुलाई के प्रथम पक्ष में तैयार कर लेना चाहिए।

बुवाई का उपयुक्त समय

मूँग की कम समय में पकने वाली प्रजातियों की बुवाई जुलाई के अन्तिम सप्ताह से अगस्त के तीसरे सप्ताह तक करनी चाहिए।

बीज एंव बीजोपचार

उच्च गुण्वत्ता वाला प्रमाणित 12–15 किग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। बुवाई से पूर्व बीज को कार्बेन्डाजिम अथवा कार्बोक्सीन की 2 ग्राम मात्रा या 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा द्वारा प्रति किग्रा. बीज को उपचारित किया जाना आवश्यक है ताकि बीज व मृदा जनित बीमारियों से फसल की सुरक्षा की जा सके।

बुवाई की विधि

मूँग की बुवाई सीडड्रिल के द्वारा 4–5 सेमी. की गहराई पर करें और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30–35 सेमी. रखनी चाहिए।

खाद एंव उर्वरक

आधार खाद के रूप में 15 किग्रा. नाइट्रोजन व 40 किग्रा0 फासफोरस एंव 20 किग्रा. सल्फर प्रति हेक्टेयर प्रयोग करना चाहिए। अतः 100 किग्रा. डी.ए.पी. के उपयोग से पोषक तत्वो की पूर्ति की जा सकती है। राइजोवियम व पी.एस.बी. कल्चर के उपयोग से शेष नत्रजन की आपूर्ति हो जाती हैं तथा अघुलनशील फॉस्फेट भी उपलब्ध हो जाते हैं।

सिंचाई कब करें?

खरीफ की मूँग में पर्याप्त नमी न होने पर फसल की क्रान्तिक अवस्था पहली फूल आना (35 दिन) व दूसरी फलियां बनने (50 दिन) पर सिंचाई अवश्य करें।

खरपतवार प्रबन्धन

खरीफ मूँग में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है। फसल व खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा की अवधि 20–25 दिन की होती है। अतः 1–2 बार निकाई कर खरपतवार निकालना आवश्यक है। रसायनिक खरपतवार निंयत्रण के अन्तर्गत फ्लूक्लोरेलिन 1 लीटर प्रति हेक्टेयर के मान से छिड़कांव कर बुवाई पूर्व भूमि में अच्छी तरह मिला देना चाहिए, जिससे 15–20 दिन तक खेत खरपतवार मुक्त रहता है। खरपतवार नियंत्रण हेतु पंक्तियों में बोई गई फसल में वीडर का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होगा।

कीट नियंत्रण

मूँग की फसल में पत्ती एंव फली छेदक कीट, रोमिल, सूड़ी आदि का प्रमुखता से प्रकोप होता है। इसके नियंत्रण हेतु

क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.25 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 600 –800 लीटर पानी में घोलकर छिड़कांव करना चाहिए।

रोग नियंत्रण

मूँग की फसल में विषाणुजनित मोजैक, पर्णकुंचन रोगों का प्रकोप होता है इन बीमारियों का संचरण रस चूसक कीटों के द्वारा होता है। इन कीटों के नियंत्रण हेतु डाइमेथोएट की 250 मिली. मात्रा 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की मान से छिड़कांव करें व रोग प्रतिरोधक प्रजातियों को लगायें।

फफूंदी जनित पौध सड़न व श्यामवर्ण रोग का प्रकोप भी होता है, जिसके नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम 0.1 प्रतिशत का छिड़कांव करें।

कटाई व उपज

पकी हुई फलियों को समय–समय पर तोडकर चटकने से बचाना चाहिए। जब पत्तियाँ पीली पड़ने लगे तो कटाई कर मड़ाई करना चाहिए। उन्नत सस्य प्रबंधन व पौध संरक्षण अपनाने पर 8–10 कुन्तल उपज प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

भण्डारण

भण्डारण में रखने से पूर्व इनको अच्छी तरह साफ करके सुखा लेना चाहिए। इसमें 10 प्रतिशत से अधिक नमी नही होनी चाहिए। मूँग के भण्डारण हेतु बिन्स का प्रयोग उपयुक्त होगा। भण्डारण गृह एवं कोठियों आदि का भण्डारण से कम से कम दो सप्ताह पूर्व खाली करके उनकी सफाई मरम्मत व चूने से पुताई कर देनी चाहिए। 1:99 मेलाथियान 50 ई.सी. तथा पानी अथवा 1:150 डाईक्लोरोवास 76 ई.सी. एंव पानी के अनुपात में बने 3 लीटर घोल को प्रति 100 वर्ग मीटर की दर से गोदाम के फर्श तथा दीवारों पर छिड़कना चाहिए। सूखी नीम की पत्ती के साथ भण्डारण करने पर कीड़ों से सुरक्षा की जा सकती है।

ध्यान रखने योग्य प्रभावी बिन्दु

1. बुवाई के समय उपयुक्त नमी पर जुलाई से अगस्त तक मूँग की बुवाई करें।
2. सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग बेसल ड्रेसिंग में अधिक लाभदायक रहता है।
3. मोजैक से बचाव के लिए समय से बुवाई को प्राथमिकता दें।
4. विरलीकरण किया जाय।
5. गर्मी में गहरी जुताई करें।
6. प्रथम तुड़ाई समय पर करें।
7. बीजोपचार राइजोवियम कल्चर तथा पी0एस0बी0 से अवश्य किया जाये।

35–40 दिन की फसल होने पर थ्रिप्स की निगरानी रखें, तथा प्रकोप प्रारम्भ होते ही उपयुक्त कीटनाशी रसायन का छिड़कांव करें।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मक्का की वैज्ञानिक खेती

कार्तिकेय सिंह, भूपेन्द्र सिंह, मोनिका जायसवाल, मेघा विभूते एवं अजीत सिंह
कृषि विज्ञान केंद्र, बुरहानपुर, मध्य प्रदेश

मक्का विश्व मे खाद्यान्न फसलों का राजा कहा जाता है क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता खाद्यान फसलों मे सबसे अधिक है। पहले मक्का विशेष रूप से गरीबों का मुख्य भोजन कहा जाता था। अब इसका उपयोग मानव आहार मे 24 प्रतिशत, कुक्कुट आहार मे 44 प्रतिशत, पशु आहार मे 16 प्रतिशत, स्ट्राच मे 14 प्रतिशत, शराब मे 1 प्रतिशत तथा बीज मे 1 प्रतिशत किया जाने लगा है। इसके अलावा मक्का तेल, साबुन इत्यादि बनाने मे भी प्रयोग की जाती है। आज कल मक्का की विभिन्न प्रजातियों को अलग अलग तरह से उपयोग मे लाया जाता है। मक्का को पाप कार्न, स्वीट कार्न एवं बेबीकार्न के रूप मे पहचान मिल चुकी है।

मक्का एक ऐसी फसल है जो विविध पारिस्थितिक जलवायु, मृदा तथा वर्ष के हर मौसम मे उगाई जा सकती है।

भूमि का चयन

मक्का की खेती विभिन्न प्रकार की मृदा में सफलतापूर्वक की जा सकती है। उचित जलनिकास युक्त बलुई मटियार से दोमट मृदा जिसमे वायु संचार एवं पानी के निकास की उत्तम व्यवस्था हो तथा पी.एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच हो, में मक्का सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। जिस जमीन में खारे पानी की समस्या है वहा मक्का की बोवाई मेड़ के ऊपर के बजाए साइड मे करें जिससे जड़ें नमक से प्रभावित न हों।

खेती की तैयारी

खेत की तैयारी जून के दूसरे सप्ताह में शुरू कर देनी चाहिये। खरीफ फसल के लिये एक गहरी जुताई (15–20 सेमी) मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिये यदि खेत गर्मियों मे खाली है तो खेत की जुताई गर्मियों मे अधिक लाभदायक रहता है। इस जुताई से खरपतवार, कीट पतंगे व बीमारियों की रोकथाम मे काफी सहायता मिलती है। खेत की नमी को बनाये रखने के लिये कम से कम समय में जुताई करके तुरन्त पाटा लगाना चाहिये।

बुवाई का समय

मक्के की बुवाई वर्ष भर कभी भी – खरीफ, रबी एवं जायद ऋतु में कर सकते हैं। लेकिन खरीफ में बुवाई मानसून पर निर्भर करती है। अधिकतर राज्यों में जहाँ सिचाई सुविधा उपलब्ध है वहाँ पर खरीफ में बुवाई का उपयुक्त समय मध्य जून से मध्य जुलाई है।

ऋतु	बुवाई का उपयुक्त समय
खरीफ	जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई के पहले पखवाड़े तक
रबी	अन्तर फसल के लिये अक्टुबर के अन्तिम सप्ताह और एक मात्र फसल के लिये 15 नवम्बर तक

बीज की मात्रा

प्रति एकड़ बीज की मात्रा निम्न प्रकार सारणी मे दी जा रही है।

बीज की मात्रा किग्रा./एकड़	सामान्य मक्का	क्यूजी. एम.	बेबीकार्न	स्वीटकार्न	पापकार्न	चारे हेतु
	8–10	8	10–12	2.5–3	4–5	25–30

बुवाई की विधि

पौधों को जड़ों को पर्याप्त नमी मिलती रहे और जल भराव से होने वाले नुकसान से बचाने के लिये यह उचित है कि फसल को मेड़ों पर बोया जाये। बुवाई पूर्वी पश्चिम दिशा की मेड़ों के दक्षिणी भाग मे करना चाहिये। बीज को उचित दूरी पर लगाना चाहिये। आजकल विभिन्न बीज माप प्रणालियों के प्लान्टर उपलब्ध हैं मेड़ों पर बोवाई करते समय पीछे की ओर चलना चाहिये

पौधे से पौधे एवं लाईन से लाईन की दूरी

निम्न सारणी मे दी गई है।

बीज उपचार

बीज को बीज एवं मृदा जनित रोगो एवं कीट व्याधियों से बचाने के लिये बुवाई से पहले कवकनाशियों तथा कीट नाशियों से नीचे दिये विवरण के अनुसार उपचारित करना चाहिये।

विवरण	सामान्य मक्का	क्यूजी0 एम	बेबीकार्न	स्वीटकार्न	पापकार्न	चारे हेतु
लाईन से लाईन की दूरी (सेमी)	60–75	60–75	60	75	60	30
पौध से पौध की दूरी (सेमी)	20–25	20–22	15–20	25–30	20	10

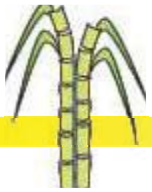

- 20 प्रतिशत चार पत्तियां आने पर
- 30 प्रतिशत आठ पत्तिया आने पर
- 30 प्रतिशत पुष्पन अवस्था या फूल आने मे समय
- 10 प्रतिशत दाना भराव के समय देना चाहिये।
- पापकार्न मे नाइट्रोजन को तीन बराबर भागों में बांटकर एक भाग बुवाई के समय दूसरा 25 दिन बाद एवं तीसरा 45 दिन बाद प्रयोग करना चाहिये।

रोग एवं कीट	कवकनाशी / कीट नाशी	प्रयोग की दर
पिथियम, फँफूंद जनित रोग, तना सड़न	1:1 के अनुपात मे बाविस्टीन तथा कैप्टान	2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज
दीमक तथा प्ररोह मक्खी (शूट फलाई)	इमिडाक्लोरपिड या फिप्रोनील	4 ग्राम प्रति किग्रा. बीज या 4 मीली. प्रति किग्रा. बीज

पोषक (उवर्रक) प्रबन्ध

फसल	गोबर की खाद (टन में)	नाईट्रोजन (किग्रा./हे.)	फास्फोरस (किग्रा./हे.)	पोटाश (किग्रा./हे.)	जिंक (किग्रा./हे.)
सामान्य मक्का	10–12	150–180	60–70	60–70	25
क्यूजीएम	10–12	150–180	60–70	60–70	25
बेबीकार्न	10–12	150–180	60–70	60–70	25
स्वीटकार्न	10	150	60	60	25
पापकार्न	8	80	60	40	20
चारा हेतु	10–12	170–150	50–60	50–60	25

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

जायद/ग्रीष्म कालीन मूंग एवं उर्द की उन्नत खेती

के.के. सिंह[1], वी.पी. सिंह[1] एवं प्रसून वर्मा[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[2]भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर

भारत वर्ष में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में उर्द एवं मूंग का एक प्रमुख स्थान है। वर्ष 2013– 14 में इनकी खेती 64.46 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में हुई थी। इस वर्ष देश में कुल 33.06 लाख टन उर्द एवं मूंग का उत्पादन हुआ। यह देश के अलग–अलग क्षेत्रों में सभी मौसम में उगायी जाती है। उत्तरी एवं पूर्वी भारत के प्रमुख भागों में इनकी खेती जायद/ग्रीष्म काल में आलू, कपास, गेहूँ आदि फसलों की कटाई के बाद करते हैं। इस ऋतु में इनकी खेती से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए निम्न बातो का ध्यान रखना चाहिए।

मृदा का चुनाव : मूंग की खेती भारत वर्ष में प्रायः सभी प्रकार की मृदाओं में की जाती है। इसकी खेती मध्य भारत की गहरी काली मृदा से लेकर, दक्षिण भारत की लाल लेटेराइटिक मृदा एवं राजस्थान की बलुई मृदा में सफलतापूर्वक की जाती है। लेकिन अच्छी फसल के लिए उचित जल निकास वाली समतल जलोढ़ मृदा सबसे उपयुक्त होती है। उर्द की अच्छी पैदावार के लिए दोमट एवं बलुई दोमट दोनों तरह की मृदा जिसका पी.एच. मान 7 हो उपयुक्त होती है। बलुई मृदा जहाँ पर दीमक के प्रकोप होने की सम्भावना होती है वहा मृदा तैयारी की अंतिम जुताई के पश्चात् 5% कार्बोरिल धूल को मिट्टी में मिला देना चाहिए। ग्रीष्म कालीन फसल में फोरेट या एल्टीकार्श 10 किग्रा./हे. की दर से मृदा में मिलाने से कीटों का प्रकोप कम होता है।

मृदा की तैयारी : मृदा की तैयारी पिछली फसल, बुवाई की विधि एवं मृदा के प्रकार पर निर्भर करती है। सामान्यतया 2–3 कल्टीवेटर के बाद पाटा लगा देना चाहिए। गेहूँ की कटाई के बाद शून्य जूताई विधि से बुवाई करते वक्त खेत में गेहूँ की कटाई के बाद सिचाई करके उसके बाद जीरो टिल मशीन से सीधे बुवाई कर देनी चाहिए। इस विधि से बुवाई करने से गेहूँ की कटाई के बाद खेत की तैयारी में लगने वाले समय में बचत होती है तथा उपज भी अच्छी प्राप्त होती है।

प्रजातियों का चुनाव : बुवाई के समय के अनुसार प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों एवं फसल पद्धति के उपयुक्त प्रजातियों का विकास किया गया है। ग्रीष्म काल के लिए उपयुक्त प्रजातियों को सारणी –1 में दर्शाया गया है। ग्रीष्म कालीन उर्द एवं मूंग की खेती गन्ना, सूरजमुखी आदि फसलों के साथ अन्तः फसली पद्धति में भी की जाती है। खरीफ ऋतु की प्रजातियों के विपरीत ग्रीष्म कालीन प्रजातियों के चयन मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे कम अवधि वाली हो। मूंग की 55–65 दिन

सारणी : 1 जायद/ग्रीष्म कालीन उर्द/मूंग की उन्नतशील प्रजातियाँ

राज्य	प्रजातियाँ
आसाम	पूसा बोल्ड 1 (पूसा विशाल) मूंग, पन्तमूंग 5
बिहार, झारखण्ड	पन्तमूंग 5, सम्राट, पूसा बोल्ड 1
दिल्ली	गंगा 8, पन्तमूंग 5
गुजरात	मेहा, सम्राट
हरियाणा	पूसा बोल्ड 1, पन्तमूंग 5
मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़	यच.यू.यम.1 (मालवीया ज्योती), मेहा, पूसा 9531, सम्राट
महाराष्ट्र	यच.यू.यम.1, पूसा 9531
पंजाब	पूसा बोल्ड 1, पन्त मूंग 2,5
राजस्थान	दुर्गा, मेहा, सम्राट
उत्तर प्रदेश एवं उत्तराचंल	सम्राट, पूसा बोल्ड, पन्तमूंग 5, मेहा, टी.एम.वी. 37, एच.यू.एम. 16
प. बंगाल	पन्तमूंग 5, सम्राट, पूसा बोल्ड 1, मेहा, टी.एम.वी. 37, एच.यू.एम. 37 उर्द
हरियाणा	शेखर 2
मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़	पन्त उर्द 31
उड़ीसा	टी.यू. 94–2, एल.बी.जी. 17, प्रसाद, मैश 338
पंजाब एवं राजस्थान	शेखर 2
उत्तर प्रदेश एवं उत्तरांचल	नरेन्द्र उर्द 1, पन्त उर्द 19, आजाद उर्द 1, शेखर 2, पन्त उर्द 31, सुजाता
प. बंगाल	पन्त उर्द 31, सुजाता

एवं उर्द की 80–90 दिन वाली प्रजातियों का प्रदर्शन अच्छा होता है। शीघ्र पकने वाली प्रजातियाँ पहले पक जाती है तथा बाद की अवस्था मे गर्म हवा के चलने एवं मौसम पूर्व वर्षा से होने वाले नुकसान से बच जाती हैं। अन्तः फसली खेती के रूप में मूंग + गन्ना को 2:1 अनुपात में लगाने से यह ज्ञात हुआ है कि मूंग की विभिन्न प्रजातियों का गन्ने की उपज पर अलग–अलग प्रभाव होता है। पी.डी.एम. 11 एवं पी.डी.एम 34–139 मूंग प्रजातियों का गन्ने की उपज पर विपरीत प्रभाव सबसे कम पाया गया जबकि पूसा बोल्ड, पन्त मूंग–2 एवं पी.डी.एम. 54 का प्रभाव सबसे ज्यादा था। अतः अच्छी उपज के लिए प्रजातियों का चयन अपने क्षेत्र विशेष एवं फसल प्रणाली के अनुसार करना चाहिए।

बीजोपचार – देश के अधिकांश दलहनी क्षेत्रों के मृदा में राइजोबियम का स्तर कम पाया जाता है अतः बुवाई से पूर्व बीजों को राइजोबियम एवं पी.एस.बी. से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए। कल्चर किसी विश्वसनीय स्थान से ही खरीदना चाहिए। 200 ग्राम का एक पैकेट 10 कि.ग्रा. बीज उपचारित करने के लिए उपयुक्त होता है बीजो को बुवाई से एक दिन पूर्व ही उपचारित करके किसी छायादार स्थान पर सुखा लेना चाहिए। उपचारित बीजों की बुवाई से 10–15% की उपज वृद्धि मिलती है।

बुवाई का समय – बुवाई का समय एक बहुत ही महत्वपूर्ण सस्य क्रिया है। अगर समय से बुवाई नही की गयी तो फसल की बाद की अवस्था में किसी भी उपाय से हम देर से होने वाली बुवाई के नुकसान से नही बच सकते। जायद/ग्रीष्म कालीन उर्द–मूंग की फसल की बुवाई पिछली फसल जैसे आलू, सरसों, गेहूँ, कपास आदि की कटाई के बाद की जाती है। देश के उत्तरी राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान में उर्द–मूंग की जल्दी तैयार होने वाली प्रजातियों के बुवाई का उपयुक्त समय मार्च का प्रथम पखवाडा है इन क्षेत्रों में मई–जून के महीने में गर्म हवा चलती है तथा देर से बुवाई करने पर फूलों का कम बनना एवं उनका झडना शुरू हो सकता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं उसके आस–पास के क्षेत्रों में गेहूँ की कटाई के बाद मूंग की खेती का प्रचलन है। ग्रीष्म कालीन फसलों की बुवाई का उपयुक्त समय 15–25 मार्च है। (सारणी – 2) देर से बुवाई करने से मानसून पूर्व वर्षा से पकी हुई फलियों को नुकसान हो सकता है। कानपुर की अवस्था में गेहूँ की कटाई के बाद बिना खेत की तैयारी किये जीरो टिल मशीन से बुवाई 10 अप्रैल तक करने से अच्छी उपज प्राप्त हुई। इस विधि से बुवाई के लिए गेहूँ की कटाई के तुरन्त बाद खेत में हल्की सिचाई करने के 1–2 दिन बाद मूंग की बुवाई जीरो टिल मशीन से कर देनी चाहिए। यह भी देखा गया है कि मूंग की बुवाई मार्च के अन्तिम सप्ताह से लेकर अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक करने से फलियों की तुडाई के बाद उनमें दुबारा फालिया आती है और करीब 1.5–2.5 कु./हे. अतिरिक्त उपज प्राप्त हो जाता है।

सारणी : 2 मूंग की फसल पर बुवाई के समय का प्रभाव

बुवाई का समय	उपज किग्रा./हे.			
	कानपुर	लुधियाना	वाराणसी	पन्तनगर
5 मार्च	597	–	536	1124
15 मार्च	607	1178	716	1150
25 मार्च	693	1294	632	1027
5 अप्रैल	470	995	461	487

बीज की मात्रा एवं बुवाई – बीज की मात्रा मुख्यतः बुवाई का समय, पद्धति एवं बीज के आकार पर निर्भर करती है। ग्रीष्म कालीन उर्द–मूंग की फसलों के बीज की मात्रा खरीफ ऋतु में बोई जाने वाली फसल की अपेक्षा ज्यादा लगती है क्योंकि ग्रीष्म काल में पौधों की बढ़वार कम होने से उनकी पंक्तियों की दूरी कम रखते है। ग्रीष्म कालीन फसल के लिए 30–35 कि.ग्रा. बीज/है. की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार अन्तः फसली खेती में बीज की मात्रा का निर्धारण मुख्य फसल की अपेक्षा अन्तः फसल में उनके द्वारा आनुपातिक रूप से बुवाई में लिए गये क्षेत्र के अनुसार होता है।

उर्वरक प्रबन्धन – दलहनी फसलों मे किसान भाई प्रायः खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग नहीं करते है लेकिन अच्छी एवं गुणवत्ता युक्त दलहन उत्पादन के लिए दलहनी फसलों को भी संतुलित खादों का प्रयोग करना चाहिए। दलहनी फसलें अपने 1 टन जैवभार उत्पादन के लिए मृदा से 30–50 किग्रा. नेत्रजन, 2–7 किग्रा. फॉस्फोरस, 12–30 किग्रा. पोटाश, 3–10 किग्रा. कैल्शियम 1.5 किग्रा. मैग्नीशियम, 1–3 किग्रा. गंधक, 200–500 ग्राम मैग्नीज, 5 ग्राम बोरान, 1 ग्राम ताबा एवं 0.5 ग्राम मालिडेनम का अवशोषण करती है। दलहनी फसलें अपने कुल नत्रजन आवश्यकता का 80–90 प्रतिशत वायुमण्डलीय नेत्रजन स्थिरीकरण से पूरा करती हैं। लेकिन फसल बढ़वार की प्रारम्भिक अवस्था में, जब तक कि जड़ ग्रन्थियों का विकास नही हुआ होता है, 10–15 किग्रा./हे. की दर से मूंग एवं उर्द की फसल को बुवाई के समय मृदा में मिला देना चाहिए। नत्रजन के बाद फॉस्फोरस एक महत्वपूर्ण पोषक तत्व है। यह दलहन फसलों की जड़ों के विकास में महत्वपूर्ण भाग लेता है जड़ों के समुचित विकास से जड़ग्रन्थियाँ भी अच्छी बनती है। उर्द एवं मूंग की फसल को 40–45 किग्रा./हे. की दर से फॉस्फोरस का उपयोग करना चाहिए। अधिकांश दलहन उगाये जाने वाले क्षेत्रों में गंधक की कमी देखी गयी है। अतः 20 कि.ग्रा. गंधक के प्रयोग से दलहनी फसलों का गुणवत्ता युक्त अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसके साथ 20 किग्रा./हे. पोटाश के प्रयोग से उपज वृद्धि के साथ–साथ मृदा के टिकाउ बने रहने में सहायता मिलती है। मृदा में सुक्ष्म तत्वों की कमी होने पर 4 ग्राम मालिब्डेनम को 1 किग्रा. बीज के साथ उपचारित करके बुवाई करने से ग्रीष्म कालीन मूंग की उपज में वृद्धि होती है। अतः ग्रीष्म कालीन मूंग/उर्द को 10–15 कि.ग्रा. नत्रजन + 40 किग्रा. फॉस्फोरस +20 किग्रा. गंधक + 20 किग्रा. पोटाश को बुवाई के

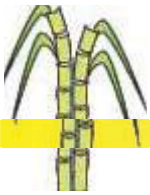

समय मृदा में मिला देना चाहिए। लेकिन आलू के बाद बुवाई करने पर प्रायः उर्वरकों के प्रयोग की आश्यकता नही पडती है।

सिचाई प्रबन्धन – जायद/ग्रीष्म कालीन उर्द–मूंग की सफलतापूर्वक खेती के लिए उचित जल प्रबंधन आवश्यक है। रबी दलहनी फसलों की कटाई के बाद खेत में पलेवा कर देना चाहिए। पलेवा करके बुवाई करने के बाद प्रायः पहली सिंचाई 20 दिन बाद एवं उसके बाद एक हफ्ते के अन्तरांल से सिंचाई करते रहने से अच्छी उपज मिलती है सारणी–3 इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सिचाई हल्की हो अन्यथा जड ग्रन्थियों द्वारा नत्रजन स्थिरीकरण पर विपरीत प्रभाव पडेगा। समतल खेत में सुक्ष्म सिंचाई विधि अपनाने से 1–2 सिंचाई की बचत हो जाती है।

सारणी 3 : ग्रीष्म कालीन मूंग की फसल पर सिंचाई का प्रभाव

सिचाई की अवस्था	उपज किग्रा./हे.
पहली सिंचाई	
बुवाई के 20 दिन बाद	1076
बुवाई के 25 दिन बाद	957
बुवाई के 30 दिन बाद	825
बाद की सिचाई में अन्तर	
7 दिन	1106
14 दिन	798

खरपतवार प्रबंधन – खरपतवारों से उर्द एवं मूंग की फसल को भारी नुकसान होता है। नुकसान की मात्रा खरपतवारों की प्रजाति एवं उनके घनत्व पर निर्भर करता है। प्रायः ग्रीष्म कालीन फसलों को खरपतवारों से 30–50 प्रतिशत तक की उपज में कमी होती है। फसल की प्रारम्भिक 15–30 दिन की अवस्था में खरपतवारों के नियंत्रण के लिए पेन्डीमिथेलिन 30 ईसी. की 3.75 मी.ली. मात्रा को 1 लीटर पानी के हिसाब से मिलाकर बुवाई के 2 घंटे के अन्दर छिड़काव करना चाहिए। इसके बाद एक निराई 20–25 दिन बाद करने से खरपतवारों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

प्रमुख कीटों एवं बीमारियों से रोकथाम – उर्द एवं मूंग की प्रमुख बीमारियों में पीली चितेरी रोग प्रमुख है। अपने क्षेत्र विशेष के लिए पीली चितेरी रोग रोधी प्रजातियों के चयन से इससे बचा जा सकता है। उर्द–मूंग की फसल में लगने वाले प्रमुख कीटों के निम्नवत हेतु निम्न उपाय करने चाहिए।

- एसिड – i) इसके नियंत्रण के लिए क्रूड नीम अर्क का 5% घोल का छिड़काव या 2% नीम तेल के 3000 पी.पी.एम. का छिड़काव करना चाहिए।

  ii) डाइमिथियोएट 30 ई.सी. (1.7 मिली. लीटर प्रति लीटर पानी) एवं इमिडाक्लोप्रिड 0.2 मिली.लीटर/लीटर का छिड़काव करना चाहिए।
- थ्रिप्स :– इसके लगने से फूल खिलने से पहले ही गिर जाते है। इसके रोकथाम के लिए उपरोक्त के भाँति नीम तेल का छिड़काव करें। इसके अलावा ट्रायाजोफास 40 ई.सी. 2 मिली. लीटर दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
- बिहार हेयरी कैटर पिलर – इसके रोकथाम हेतु क्यूनालफास 25 ई.सी. की 2 मिली. लीटर/लीटर या फेनवालेरेट 20 ई. सी. का 1 मिली. लीटर दवा/लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिए।
- सफेद मक्खी – इसके नियन्त्रण हेतु डाईमिथियोएट 30 ई. सी. दवा की 1.7 मिली. लीटर/लीटर पानी या इमिडाक्लोप्रिड की 0.2 मिली. लीटर दवा/लीटर पानी का 2 छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर करना चाहिए।

माँ बाप की एक दुआ जिन्दगी बना देगी
खुद रोएगी मगर आपको हंसा देगी
कभी भूल कर भी माँ को ना रूलाना
आँसू की एक बूँद पूरी धरती डुबा देगी।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

चना उत्पादन की उन्नत तकनीक

एस.एस. सिंह
भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर

चना हमारे प्रदेश की प्रमुख दलहनी फसल है। उत्तर प्रदेश के 6 लाख 76 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में चना का उत्पादन किया जाता है। प्रदेश में चना का औसत उत्पादन 6 लाख 46 हजार टन व उपज 1119 किग्रा./हे. हैं।

भूमि का चयन एवं तैयारी

चना की खेती दोमट मिट्टी से लेकर काली चिकनी मिट्टी तक सभी प्रकार की भूमि में सफलतापूर्वक की जाती है। भूमि का चुनाव करते समय यह आवश्यक है कि उस भूमि में पानी का जमाव न हो तथा अधिक वर्षा की स्थिति में जल निकास की उचित व्यवस्था हो। खेत की तैयारी के लिए एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करने के तत्पश्चात् क्रास हेरो चलाकर पाटा लगा दें। इसकी बुवाई जीरो–टिल सीड ड्रिल द्वारा भी धान के पश्चात् खाली पड़े खेतों में कर सकते हैं।

संस्तुत प्रजातियाँ

उत्तर प्रदेश के लिए संस्तुत उन्नतशील प्रजातियाँ निम्नवत् हैं –

अधिक उपज वाली किस्में

के.डब्ल्यू.आर.–108, अवरोधी, बी.जी.–256, के.–850, पन्त जी.–186, पूसा–372, राधे, जे.जी.–315, उदय, पूसा–1003, पूसा–1053

समय से बुवाई वाली देशी किस्में (असिंचित अक्टूबर/सिंचित नवम्बर)

डी.सी.पी. 92–3, गुजरात चना, अवरोधी, पूसा–256, के. डब्ल्यू.आर.–108, राधे, जे.जी.–16, के.–850, आधार (आर.एस.जी.–936) डब्ल्यू.सी.जी.–1, के.जी.डी.–1168

देर से बुवाई वाली किस्में (दिसम्बर)

पूसा–362, उदय, पन्त जी.–186

काबुली

आई.पी.सी. (97–67), आई.पी.सी.के. 2002–29 (शुभ्रा), आई.पी.सी.के. 2004–29 (उज्जवला), एच.के. 94–134, चमत्कार (वी.जी.–1053), जे.जी.के.–1

बुवाई का समय

उत्तर प्रदेश के असिंचित क्षेत्रों में चना की बुवाई अक्टूबर के दूसरे पखवाड़े तथा सिंचित क्षेत्रों में नवम्बर के प्रथम पखवाड़े में करनी चाहिए। धान की फसल के बाद बुवाई करने की स्थिति में बुवाई दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक पूरी कर लेनी चाहिए। बुन्देलखण्ड में चनें की बुवाई अक्टूबर माह के दूसरे पखवाड़ें में की जाती है।

बीज दर

चना के बीज की मात्रा दानों के आकार, भार, बुवाई का समय एवं बुवाई विधि पर निर्भर करती है। बड़े दानों वाली प्रजातियों (काबुली चना) का 80–85 कि.ग्रा. तथा छोटे दानों वाली प्रजातियों का 60–65 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। पछेती बुवाई की स्थिति में 20–25 प्रतिशत अधिक बीज की आवश्यकता होती है।

बुवाई की विधि

चना की बुवाई 6–8 से.मी. गहराई में करें। चना की कतारों की दूरी 30 से.मी. तथा पौधे की दूरी 8–10 से.मी. रखें। धान के बाद खाली पड़े खेतों में ट्रैक्टर व पावर ट्रिलर चालित जीरो–टिल सीड ड्रिल द्वारा बुवाई कर सकते हैं।

बीज शोधन एवं उपचार

चना की फसल का उकठा एवं जड़ गलन से बचाव करने के लिए थीरम 2 ग्राम अथवा कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम या 4 ग्राम ट्राईकोडर्मा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज शोधित करें। इसके पश्चात् राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार के लिए एक पैकेट (200 ग्राम) राइजोबियम कल्चर 10 कि.ग्रा. बीज के लिए उपयोग करें। राइजोबियम उपचार के लिए 50 ग्राम गुड़ या चीनी को आधा लीटर पानी में घोलकर उबालें। घोल को ठंडा हो जाने पर उसमें राइजोबियम कल्चर को मिला दें एवं इसमें 10 कि.ग्रा. बीज को इस प्रकार मिलायें कि बीज के प्रत्येक दाने के ऊपर राइजोबियम कल्चर की परत बन जाये। उपचारित बीज को छाया में सुखायें तथा 5–6 घंटे के बाद बुवाई करें। राइजोबियम के साथ पी.एस.बी. कल्चर (200 ग्राम/10 किग्रा. बीज के लिए) से उपचारित करने पर फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ जाती है।

उर्वरकों का प्रयोग

सामान्य स्थिति में चना की फसल के लिए 20 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा. फॉस्फोरस, 20 किग्रा. पोटाश एवं 20 किग्रा. गंधक प्रति हेक्टेयर संस्तुत की गई है। जिन क्षेत्रों की मृदा में बोरान या मोलिब्डेनम की कमी हो वहाँ 10 किग्रा. बोरेक्स पाउडर या 1.0 किग्रा. अमोनियम मोलिब्डेट प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। असिंचित क्षेत्रों में मृदा में नमी की अवस्था में 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव फली बनने की अवस्था में

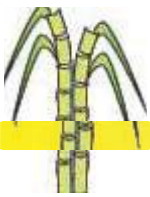

करने पर उपज में वृद्धि होती है।

सिंचाई

चना की खेती मुख्यतः असिंचित अवस्था में की जाती है। जहाँ पर सिंचाई के लिए सीमित जल उपलब्ध हो वहाँ फूल आने के पहले (बुवाई के 50–60 दिन बाद) एक हल्की सिंचाई करें। सिंचित क्षेत्रों में दूसरी सिंचाई फली बनते समय अवश्य करें। सिंचाई करते समय यह ध्यान दें कि खेत के किसी भाग में जल भराव की स्थिति न हो अन्यथा फसल को नुकसान हो सकता है। फूल आने की स्थिति में सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार चना की फसल को 50–60 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचाते हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथालिन 30 ई.सी. का 4–5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 400–500 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के 48 घंटे के अन्दर छिड़काव करना चाहिए। इसके बाद भी यदि खरपतवार पुनः दिखाई दें तो 30–35 दिन बाद एक निकाई करें। जिन क्षेत्रों में घास प्रजाति के खरपतवार अधिक हों वहाँ क्यूजालोफोप–इथाईल 5.0 ई.सी. का 4 मि.ली./लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के 20–25 दिन बाद छिड़काव करें।

कीट नियंत्रण

चना की फसल में मुख्य रूप से फली भेदक कीट का प्रकोप अधिक होता है। देर से बुवाई की जाने वाली फसलों में इसका प्रकोप अधिक होता है। फली भेदक के नियंत्रण के लिए *इण्डेक्सोकार्ब* (2 मि.ली./लीटर पानी), स्पाइनोसैड (0.4 मि.ली./लीटर पानी) या इमामेक्टीन बेन्जोएट (0.4 मि.ली./लीटर पानी) का छिड़काव करें। एन.पी.वी. उपलब्ध होने पर इसका 250 लार्वा समतुल्य 400–500 लीटर पानी में घोलकर 2–3 बार छिड़काव कर सकते हैं। इसी प्रकार 5 प्रतिशत नीम की निबौली के सत का प्रयोग भी इसके नियंत्रण के लिए कर सकते हैं।

रोग नियंत्रण

चना की फसल में मुख्य रूप से उकठा एवं शुष्क मूल विगलन रोग होता है। फसल को इनसे बचाने के लिए बुवाई पूर्व बीज को फफूँदीनाशक जैसे 1.0 ग्राम वीटावेक्स + 4 ग्राम ट्राईकोर्डमा/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। जिन क्षेत्रों में इन रोगों का अधिक प्रकोप हो वहाँ पर उकठा एवं शुष्क मूल विगलन रोग रोधी प्रजातियों का प्रयोग करें।

कटाई एवं भण्डारण

फलियाँ जब पक जायें और सूखने लगें तब कटाई कर मड़ाई करें। दलहनी फसलों में ढोरा (घुन) अधिक लगता है। अतः दानों को अच्छी तरह सुखाकर उपयुक्त जगह पर भण्डारण करें।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

बाकलाः एक बहु–उपयोगी दलहनी फसल

डी. के. उपाध्याय, विनोद कुमार सिंह एवं सुरेश सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बरपुर, सीतापुर

बाकला (*विसिया फाबा*, 2 एन = 12,14) फेवेसी कुल की एक महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। भारत के अतिरिक्त चीन, इथोपिया, ईजिप्ट, जर्मनी, इटली मोरक्को एवं फ्रांस में भी बाकला की खेती की जाती है। भारत में इसकी खेती उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, कश्मीर, राजस्थान, कर्नाटक, मध्य प्रदेश एवं बिहार आदि राज्यों में की जाती है। यह सीधी बढ़वार वाला मजबूत 0.5 –1.8 मीटर लम्बा तना, अनुप्रस्थ काट में चतुष्कोणीय, एक वर्षीय पौधा है। जिस पर पत्तियाँ 5–7 सेमी. लम्बा, 2–7 पलक के साथ एकान्तर क्रम में लगी होती हैं। पर्णक अण्डाकार से लम्बे अण्डवत् एवं शीर्ष पर एक उभार लिए हुए होते हैं। पुष्पक्रम पत्तियों के कक्ष से आते है। पुष्प असीमाक्ष, 1–6 की संख्या में छोटे डंठल युक्त होते हैं। वाह्य दलपुन्ज दंतुर दलपुन्ज (पंखुडियाँ) युक्त एवं सफेद रंग के होते है। फलियाँ पूरी भरी हुई छोटे – छोटे रोयेयुक्त तथा 10–12 सेमी. लम्बी होती हैं।

जलवायु

यह एक ठण्डी जलवायु की फसल है। अच्छी बढ़वार एवं पैदावार के लिए ठण्डे मौसम की आवश्यकता होती है। शरद ऋतु में यह न्यूनतम 4 डिग्री सेन्टीग्रेड के तापमान को सह लेती है। बीज के अंकुरण के लिए 22 डिग्री. सेन्टीग्रेड तापमान अनुकूल पाया गया है।

मृदा

जीवांशयुक्त भारी दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। खेत में पानी का ठहराव नहीं होना चाहिए। अम्लीय एवं क्षारीय मृदा इसकी खेती के लिए अनुपयुक्त होती है। खेत की मिट्टी पलट हल से जुताई करने के बाद दो तीन जुताई कल्टीवेटर तथा हैरों से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगाना चाहिए जिससे कि मिट्टी भुरभुरी हो जाय। बुवाई के समय खेत में अच्छी नमी होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यकता है कि खेत की अंतिम जुताई करने हेतु खेत में पलेवा कर देना चाहिए और ओट आने पर खेत की अच्छी तरह जुताई कर व पाटा लगाकर तैयार कर लेना चाहिए।

बीज मात्रा व बुवाई

उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में बाकला की बुवाई सितम्बर–अक्टूबर तथा पहाड़ी क्षेत्रों में फरवरी–मार्च में की जाती है। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए 80–100 किग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। इसकी बुवाई कतारों में करनी चाहिए। कतारों को मध्य 45–50 सेमी. तथा पौधों के मध्य 10–15 सेमी. की दूरी रखनी चाहिए तथा बीज को 5–6 सेमी. की गहराई पर बोया जाता है।

खाद एवं उर्वरक

खेत की तैयारी के समय 10–15 टन सड़ी गोबर की खाद खेत मे भली प्रकार मिला देनी चाहिए। इसके अलावा 20 किग्रा नाइट्रोजन, 40–50 किग्रा. फास्फोरस तथा 30–40 किग्रा. पोटाश की प्रति हेक्टेयर आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में देते हैं तथा नत्रजन की आधी मात्रा फूल आने के समय देते हैं।

खरपतवार नियंत्रण

पौध बढ़वार की प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवारों के नियंत्रण के लिए नियमित रूप से निराई–गुड़ाई करना चाहिए। मौसमी खरपतवारों के नियंत्रण के लिए पूर्व निर्गमित खरपवारनाशी जैसे पेन्डीमेथलिन की 3 मिली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के 72 घण्टों के अन्दर छिड़काव करने से नियंत्रण होता है।

सिंचाई एवं जल प्रबन्धन

बाकला को अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है, खेत में नमी की कमी को भी यह फसल काफी हद तक सह लेती है। अच्छी फसल लेने के लिए मृदा में नमी बनी रहनी चाहिए। अतः नमी की स्थिति को देखते हुए 10–15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। खेत में जल ठहराव नहीं होना चाहिए। जल ठहराव की स्थिति में फसलोत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

प्रजातियाँ एवं संकर किस्में

भारत में इसकी बहुत ही कम उन्नत किस्में उपलब्ध हैं। अतः विदेशों से मगाँई गयी किस्मों को उगाया जाता हैं। भारत में भी कुछ किस्में जैसे कि पूसा सुमित, सेलेक्शन बी.आर.–1 सेलेक्शन बी.आर. 2 एवं जवाहर विसिया 73–81 विकसित की गई हैं।

पोषक तत्व

इसकी फलियाँ कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा रेशा की अच्छी स्रोत हैं।

कीट व बीमारियाँ

बाकला की फसल को बीज जनित रोगों से बचाने के लिए

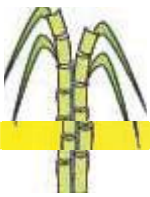

सारिणी –1 प्रति 100 ग्राम खाने योग्य भाग (हरी फलियाँ) में पाये जाने वाले प्रमुख पोषक तत्वः

पोषक तत्व	मात्रा
नमी	85.4 ग्राम
प्रोटीन	4.5 ग्राम
वसा	0.1 ग्राम
रेशा	2.0 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट्स	7.2 ग्राम
खनिज	0.8 ग्राम
ऊर्जा	48 किलो कैलोरी
मैग्नीशियम	33.0 मिग्रा.
फास्फोरस	64.0 मिग्रा.
सोडियम	43.0 मिग्रा.
कैल्शियम	50.0 मिग्रा.
कैरोटीन	9.0 मिग्रा.
कापर	0.17 मिग्रा.
पोटैशियम	39.0 मिग्रा.
सल्फर	53.0 मिग्रा.
आयरन	1.4 मिग्रा.
थायमिन	0.08 मिग्रा.
नियासिन	0.08 मिग्रा.
विटामिन सी	12.0 मिग्रा.

बीज को थीरम या कार्बेन्डाजिम 2–3 ग्राम या 4 ग्राम *ट्राइकोडरमा* द्वारा प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।

मांहू कीट

यह कीट समूह में पत्तियों तथा पौधों के अन्तः कोमल भागों से रस चूसकर क्षति पहुँचाता है। इसकी रोकथाम के लिए *क्यूनालफास* 25 ई.सी. 1 लीटर या मैलाथियान 50 ई.सी., 2 लीटर को 600–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करना चाहिए।

फसल सुरक्षा की अन्य सावधानियाँः

- सूत्र कृमियों के कम करने के लिए गर्मी की जुताई करें।
- लगातार दलहनी फसलों का प्रयोग न करें कम से कम तीन साल का गैप करें।
- सूखे की अवस्था न आने दें।

सामन्यतः बाकला की फसल में रोगो एवं कीड़ों का कोई विशेष प्रकोप नहीं होता है।

बाकला का उपयोग

बाकला की नरम, मुलायम फलियों को सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा सूखे दानों को दाल के रूप में प्रयोग किया जाता है, इसकी हरी फसल को चारे के रूप मे भी प्रयोग किया जाता है। कुछ मनुष्यों में बाकला के परागकणों से एलर्जी भी होती हैं जिसके कारण कभी–कभी *फेविज्म* नामक घातक बीमारी हो जाती है।

तुड़ाई

पूर्ण विकसित हरी फलियों की तुड़ाई मुलायम अवस्था मे करनी चाहिए। सितम्बर – अक्टूबर मे बोई गयी फसल से 3–4 महीनों में तथा फरवरी–मार्च में बोई गयी फसल से 6–7 महीनों में हरी फलियाँ मिलने लगती हैं। तुड़ाई हमेशा समय से करना चाहिए। देर से तुड़ाई करने पर फलियाँ कड़ी व रेशेदार हो जाती हैं।

उपज

हरी फलियों की औसत उपज 70–100 कु./हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है। पके दानों की औसत उपज 12–15 कु../हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

भण्डारण

हरी फलियों को तुड़ाई उपरान्त इन्हे छायादार स्थानों पर रखना चाहिए। फलियों को ताजा रखने के लिए उन पर बीच–बीच मे पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। हरी फलियों को यथाशीघ्र वितरण के लिए बाजार/मण्डियों मे भेजना चाहिए। सूखे दानो,बीजों को अच्छी तरह सुखाकर (लगभग 6–9 % नमी) पर भण्डारण गृह में भण्डारित करना चाहिए।

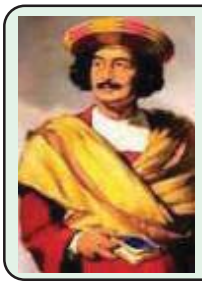

इस समग्र देश की एकता के लिए हिंदी अनिवार्य हैं।

–राजा राम मोहन राय

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

दलहनी फसलें उगाओ–मृदा की उर्वरा शक्ति एवं उत्पादकता बढ़ाओ

ओम प्रकाश[1], मीना निगम[1], अशोक कुमार श्रीवास्तव[1], सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल[1], वरूचा मिश्रा[1], पल्लवी यादव[2] एवं अजय कुमार साह[1]

[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

[2]बी.एस.सी. (कृषि)–तृतीय वर्ष, चन्द्र भानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

किसान भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए तरह–तरह के रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। इससे भूमि की उर्वरा शक्ति तो बढ़ जाती है, परन्तु मृदा स्वास्थ्य और मृदा प्रदूषण का खतरा बना रहता है। मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने में दलहनी फसलों को उनके वृद्धि काल में उपयुक्त समय पर फसल की जुताई करके मृदा में अपघटन के लिए पलट देने से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में विशेष स्थान रखती है।

दलहनी फसलों के प्रकार

भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का महत्व सदैव रहा है। इन्हें निम्न उद्देश्यों हेतु उगाया जाता है जैसे–

- **भोजन में दाल**
- **हरी खाद**
- **पशुओं हेतु चारा**

उगाई जाने वाली फसलों के रूप में अलग–अलग समय पर बोयी जाती हैं।

दलहनी फसलों के रूप मे कई प्रकार की फसलें बोयी जाती हैं, जैसे–शुष्क फली मटर, हरी मटर, चना, लोबिया, मोठ, मसूर, मूंग, अरहर, उड़द, लोबिया, राजमा, ग्वार, सोयाबीन तथा मूंगफली हैं।

दलहली फसलों हेतु उपयुक्त भूमि

दलहनी फसलों की खेती के लिए उपयुक्त भूमि का चुनाव बहुत जरूरी है। रबी दलहनों की खेती बहुत ही विविधता पूर्ण भूमि में की जाती है। इनमें राजस्थान की रेगिस्तानी भूमि से लेकर महाराष्ट्र की काली मृदा शामिल हैं। दलहनी फसलों के लिए विभिन्न प्रकार की मृदा एवं वातावर्णीय परिस्थतियॉं अधिकतम फसल उत्पादन प्राप्त करने में मुख्य रूप से सहायक होती है। दलहनी फसलों की खेती हेतु भूमि की किस्म, फसल बोने का समय, प्रजाति किस उद्देश्य के लिए बोयी जा रही है, उपरोक्त बिन्दुओं पर काफी निर्भर करती है। कुछ दलहनी फसलों हेतु उपयुक्त भूमि का वर्णन इस प्रकार से है–

अरहर

अरहर उगाए जाने वाले खेत में जल निकास की समुचित सुविधा होनी चाहिए। इसकी खेती के लिए हल्की दोमट भूमि सर्वोत्तम है। खेत अधिक क्षारीय या ऊसरीला नही होना चाहिए अन्यथा अरहर की जड़ों में पाये जाने वाले *राइजाबियम* जीवाणुओं का विकास धीमी गति से होगा।

उड़द

सामान्यतः उड़द की खेती दोमट, बलुई दोमट व मटियार भूमि में करने पर अधिक उपज प्राप्त होती है। वैसे यह हर प्रकार की भूमि में उगाई जा सकती है जहॉं पर उचित जल निकास की व्यवस्था हो तथा भूमि का पी.एच. सामान्य हो।

मटर

मटर की खेती के लिए दोमट एवं हल्की दोमट भूमि अधिक उपयुक्त होती हैं।

ग्वार

बलुई मृदा में यह सफलतापूर्वक उगायी जाती है। यह मध्यम लवण संवेदनशील होती है।

चना

चने की खेती हल्की व भारी दोनों प्रकार की भूमि में की जा सकती है। ऐसी भूमि का चयन करें, जिसमें समुचित जल निकास की व्यवस्था हो। घाघ–भडड़री ने चना की खेती हेतु भूमि कैसी होना चाहिये इस पर अपने विचार व्यक्त किये है, जो इस प्रकार से है–

जब सैल खटाखट बाजै। तब चना खूब ही छाजै।।

जब खेत की मिट्टी खूब सूखी रहती है और ढेलों के कारण हल में जुते हुए बैलों के जुए की सैलें खटाखट बोलती है तब उस खेत में चने की पैदावार अच्छी होती है (बशर्ते कि चना उगने के बाद एक पानी बरस जाये)।

मैदे गेहूँ ढेले चना।।

मैदे की तरह बारीक मिट्टी में गेहूँ और ढेलेदार खेत में चने की पैदावार अच्छी होती है।

राजमा

राजमा की फसल लवणीयता एवं क्षारीयता के प्रति सबसे ज्यादा संवेदनशील होती है।

ढैंचा

यह सभी प्रकार की मृदाओं में सफलतापूर्वक उग जाती है। क्षारीय, लवणीय तथा जलमग्न मृदाओं में भी उगायी जा सकता है।

चारा वाली दलहनी फसलें समस्याग्रस्त मृदाओं के लिए

उष्ण शुष्क रेगिस्तान क्षेत्र की मृदाएं, अर्द्धशुष्क चट्टानी व कँकरीली मृदाएं, लवणीय व क्षारीय मृदाएं, खादर/बीहड़, जलमग्न व दलदल मृदाएं, बंजर मृदाएं, खान क्षेत्र की मृदाओं के लिए उपयुक्त दलहनी चारा वाली फसलें इस प्रकार हैं–स्टायलो, जंगली कुल्थी, मोटी क्लोवर, सिराट्रो, साल्ट बुश, उपयुक्त होती है।

दलहनी फलीदार फसलें हरी खाद के लिए

हरी खाद के लिए फलीदार फसलें जैसे ढैंचा, ग्वार, सनई, मूंग आदि को खेत में दबाकर गलाया–सड़ाया जाता है। इन फसलों की जड़ें भूमि की निचली सतहों में निहित पोषक तत्वों को शोषित करती हैं। इन पौधों को भूमि में ऊपरी सतह पर दबाने से ये पोषक तत्व अगली फसल को सहज रूप से उपलब्ध हो जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि मृदा की ऊपरी सतह से पोषक तत्वों का सघन खेती में दोहन अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसके अलावा हरी खाद से मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ती है।

दलहनी फसलों की खेती हेतु भूमि चयन के समय ध्यान देने योग्य बातें

दलहनी फसलों की खेती हेतु भूमि के चयन के समय ध्यान देने वाली बातें निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए

- मृदा जनित बीमारी हो तो मृदा/फसल उपचार के बाद ही उसमें दलहनी फसलों की बोवाई करें।
- उचित जल निकास की व्यवस्था हो।
- दलहनी फसलों के लिए चयनित भूमि समतल हो।
- मृदा भुर–भुरी हो।
- मृदा में उपयुक्त नमी हो।
- खरपतवार आदि से मुक्त हो।
- भूमि की किस्म, दलहनी फसल के बोने के समय, प्रजाति तथा दलहली फसल किस उद्देश्य के लिए बोयी जा रही है, को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

दलहनी फसलों से मृदा को प्राप्त होने वाले विभिन्न तत्व

दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियां होती हैं। जिसमें जीवाणु (राइजोबियम) पाये जाते हैं जो कि वायुमंण्डल से नाइट्रोजन लेकर भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। विभिन्न दलहनी फसलें हरी खाद हेतु उगायी जाती हैं। हरी खाद हेतु उगाई जाने वाली दलहनी फसलों को उचित समय पर मिट्टी में पलटने/दबा देने के बाद इनके अपघटन से मिट्टी को प्राप्त होने वाले मुख्य पोषक तत्वों की मात्रा निम्नवत् है:

दलहनी फसलों का हरी खाद के रूप मे मिट्टी स्वास्थ्य से सह–संबंध

दलहनी फसल (हरी खाद हेतु)	हरे पदार्थ की प्राप्त मात्रा (टन/हे.)	मृदा को नाईट्रोजन की प्राप्त मात्रा (प्रतिशत)	मृदा को नाइट्रोजन की प्राप्त मात्रा (कि.ग्रा./हे.)
सनई	20–30	0.43	86–129
ढैंचा	20–25	0.42	84–105
उड़द	10–12	0.41	41–49
मूँग	8–10	0.48	38–48
ग्वार	20–25	0.34	68–85
लोबिया	15–18	0.49	74–88
कुल्थी	8–10	0.33	26–33

भारतीय कृषि में दलहनी फसलों का महत्व सदैव रहा है।

- दलहनी फसलों की जड़ें कम उपजाऊ मृदा में भी अच्छी तरह से वृद्धि करती हैं तथा मृदा की नीचे की परतों में गहराई तक जाती हैं।
- दलहनी फसलें मिट्टी को पत्तियों एवं तनों से ढ़क लेती है, जिससे मृदा से नमी ह्रास कम हो जाता है।
- दलहनी फसलों की खेती से फसल के अंदर खरपतवार कम उगते हैं।

  द्विउद्देशीय दाल तथा पशुओं हेतु चारा दलहनी फसलों जैसे लोबिया (पूसा कोमल) तथा मूंग (पी.डी.एम.–11) की बसंतकालीन गन्ने में तथा मसूर (डी.पी.एम.–15) की शरदकालीन गन्ने की अन्तःफसली खेती (1:2) से नाइट्रोजन उपयोग क्षमता में वृद्धि होने से लगभग 35–40 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हे. की बचत होती है। इसके साथ–साथ दलहनी फसलों से अतिरिक्त उपज भी प्राप्त हो जाती है।

दलहनी फसलों को उगाने से मृदा स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव

दलहनी फसलों के पौधों को उखाड़कर तथा उनकी जड़ों को देखने पर पौधे की जड़ में छोटी–छोटी गांठे दिखाई पड़ती हैं। जिनका रंग हल्का पीला होता है। इन गांठों में विद्यमान असंख्य जीवाणु वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन का मृदा में स्थिरीकरण करके मिट्टी में नाइट्रोजन की 20 से 30 प्रतिशत तक मात्रा बढ़ा देते हैं। दलहनी फसलें मृदा स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डालती हैं, जो निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट होता है:

- दलहनी फसलें अपनी जड़ों द्वारा वायुमंडल से नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाती हैं।

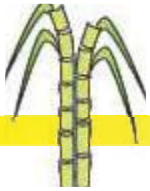

- दलहनी फसलों का अवशेष जो मिट्टी की ऊपरी सतह पर काफी मात्रा में झड़ कर गिरता है। मिट्टी में जीवांश पदार्थ बढ़ाता है तथा मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है।
- सूक्ष्मजीवों की संख्या व जैविक विविधता में वृद्धि होती है।
- पोषक तत्वों का पुनः चक्रण द्वारा उनकी कमी को पूरा करती हैं।
- दलहनी फसलों का हरी खाद के रूप में प्रयोग करने से पोषक तत्वों की मिट्टी में घुलनशीलता एवं उपलब्धता बढ़ती है।
- जल में घुलनशील पोषक तत्वों को भूमि की नीचे की परतों में जाने से कम करती है।
- पोषक तत्वों का वाष्पीकरण कम करती हैं।
- मृदा में अप्राप्य पोषक तत्वों को प्राप्य अवस्था में बदलने में सहायक होती हैं।
- मृदा में उपस्थित, उपलब्ध न होने वाले पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं।
- मृदा की संरचना अच्छी हो जाती हैं।
- जल धारण क्षमता बढ़ाने में सहायक होती हैं।
- फसल चक्र में दलहनी फसलों को सम्मिलित करने से जैविक विविधता के कारण कीट एवं बीमारियों का स्थायी पनाह बनाने से रोका जा सकता है।
- कृषि उत्पादन को स्थायित्व प्रदान करती है।

दलहनी फसलों द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन का मृदा में यौगिकीकरण

दलहनी फसलों द्वारा वायुमंडल की नाइट्रोजन का मृदा में यौगिकीकरण तथा अगली फसल के लिए नाईट्रोजन की अनुमानित पूर्ति का विवरण निम्नवत् है:

दलहनी फसल	मृदा में नाइट्रोजन यौगिकीकरण की मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	अगली फसल	अवशिष्ट नाइट्रोजन पूर्ति की मात्रा (कि.ग्रा./हे.)
चना	120–140	मक्का	60–70
अरहर	150	–	–
उड़द	55–72	–	–
मूंग	110–112	–	–
मसूर	39–87	मक्का	18–30
लोबिया	47–188	–	–
मटर	23–73	मक्का	20–32
बाकला	64–92	–	–

जैव विविधता एवं मृदा संरक्षण में महत्वपूर्ण हिस्सा

दलहन उत्पादन से कृषि एवं जैव विविधता में वृद्धि होती है। पशुओं एवं लाभदायक कीटों को विविधता से पूर्ण भूमि उपलब्ध होती है।

दलहनी फसलें राइजोबियम जीवाणु खाद के रूप में उपयोगी

मिट्टी में राइजोबियम जीवाणु खाद के उपयोग से दलहनी फसलों की उपज में औसतन 20–25 प्रतिशत तक वृद्धि के साथ साथ ये जीवाणु 50–135 किग्रा. नाइट्रोजन/हे. तक मिट्टी में उपलब्ध कराते हैं। दलहनी फसलों में प्रयोग की जाने वाली मुख्य राइजोबियम जीवाणुओं की प्रजातियाँ निम्नवत् हैं:

जीवाणुओं की प्रजातियाँ	प्रयुक्त फसलों का नाम
राइजोबियम लेग्युमिनासोरम	मटर, मसूर, लोबिया
राइजोबियम लोटाई	चना, मूंगफली, अरहर
राइजोबियम फैजियोलि	मूंग, उड़द
राइजोबियम जैपोनिकम	सोयाबीन
राइजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिन
राइजोबियम ट्राईफोलाई	बरसीम

दलहनी फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग करने से फसल की गुणवत्ता, उत्पादकता एवं मृदा उर्वरता में वृद्धि होती हैं जिसका विवरण निम्नवत् है:

दलहनी फसलों का गन्ने में अन्तः फसल के रूप मे योगदान

दलहनी फसलें गन्ने की खेती में अन्तः फसल के रूप में उगायी जाती है। मृदा उत्पादकता बढ़ाने के लिए शरद कालीन गन्ना के साथ मटर, मसूर, मेथी और बसन्त कालीन गन्ने के साथ मूँग, लोबिया, उड़द आदि अन्तः फसल के रूप में अच्छा विकल्प हैं। गन्ने के पूर्व हरी खाद हेतु ली गयी दलहनी फसल 19 से 43 प्रतिशत गन्ने की पैदावार बढ़ा देती है और 41 से 85 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर का मृदा में स्थिरीकरण करती हैं। बावक गन्ना के साथ दलहनी फसल को अन्तः फसल के रूप में लेने पर बावक और पेड़ी गन्ना की उपज में क्रमशः 5 से 15 प्रतिशत तक वृद्धि प्राप्त होती है। दलहनी फसलों का मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसीलिए दलहनी फसल आधारित फसल–चक्र को **'मृदा–उर्वरता पोषक फसल–चक्र'** कहा जाता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने के अद्भुत गुण से मृदा उर्वरता में बढ़ोत्तरी होती है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि संभव हो पाती है। दलहनी फसलों को अन्तः फसल के रूप (गन्ना आधारित) उगाने से भूमि के टिकाऊपन और मृदा के भौतिक गुणों (मृदा घनत्व में कमी) में सुधार होता हैं। लोबिया के

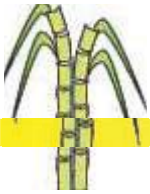

दलहनी फसल	जैव उर्वरक के स्रोत (नाइट्रोजन)	जैव उर्वरक की मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	प्रयोग की विधि एवं समय
चना, मटर, मूँगफली, सोयाबीन एवं लोबिया।	*राइजोबियम*	1–2 कि.ग्रा.	बीज उपचार करके बुवाई के समय
अलसी, लूसर्न, बरसीम, मूँग, उड़द, अरहर, लोबिया एवं ग्वार	*राइजोबियम*	0.4–0.6 कि.ग्रा.	बीज उपचार करके बुवाई के समय

अन्तः फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से सूक्ष्म जैव पदार्थ (नाइट्रोजन) में वृद्धि होती है जो कि गन्ने की फसल के लिए नाइट्रोजन पोषक तत्व के स्रोत के रूप में योगदान करती है। गन्ने के साथ दलहनी अन्तः फसल लेने से गन्ना–पेड़ी की पैदावार तथा मृदा की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है।

दलहनी फसलों के उत्पादन से लाभ

- किसी भी भूमि पर एवं विभिन्न परिस्थितयों वाली भूमि पर दलहनी फसलें आसानी से उगायी जा सकती हैं।
- सिंचाई जल की कमी होने की अवस्था में दलहनी फसलें आसानी से उगायी जा सकती हैं।
- उत्पादन में लागत कम, तथा आमदनी अपेक्षाकृत ज्यादा होती है।
- जैविक खादों, जैव उर्वरकों और रासायनिक उर्वरकों की मात्रा भी बहुत कम प्रयोग होती है। जिससे उत्पादन लागत कम आती है। कभी–कभी पहली फसल में डाला गया फॉस्फोरस ही इनके उत्पादन के लिए पर्याप्त होता है।
- बहु–फसल प्रणाली तथा मिश्रित फसलों के तौर पर वर्ष में दो या तीन बार बोया जा सकता है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए जैविक खादों, जैव उर्वरकों और रासायनिक उर्वरकों का एकीकृत प्रबन्धन एवं विभिन्न फसल चक्रों के समय–समय पर परिवर्तन के साथ दलहनी फसलों के समावेश द्वारा मृदा की उर्वराशक्ति को टिकाऊ रखने तथा अधिक गन्ना उत्पादन किया जा सकता है। मिट्टी में जीवाशं पदार्थ और नाईट्रोजन (जैविक कार्बन) की मात्रा को बढ़ाने के लिए अथवा मृदा में पर्याप्त मात्रा में बनाये रखने के लिए समय–समय पर दलहनी फसलों को उगाते रहना लाभदायक होता है। दलहनी फसलों की गन्ने के साथ बहुफसली खेती बोने से फसल उत्पादन में आशातीत लाभ प्राप्त होता है। दलहनी फसलें मृदा को नाइट्रोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराकर मृदा स्वास्थ्य मे सुधार करती है। फसल की कटाई के बाद भी मृदा को भरपूर मात्रा में नाइट्रोजन मिलती है। इस प्रकार देखा जाए तो दलहनी फसलों के दोहरे फायदे, मानव स्वास्थ्य के साथ मृदा स्वास्थ्य के रूप में भी विशेष स्थान रखती हैं।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

दलहन आधारित फसल विविधीकरण का अधिक उत्पादन एवं मृदा उर्वराशक्ति बनाये रखने में योगदान

अनिल कुमार सिंह[1] एवं मेंही लाल[2]

[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

[2]पूर्व विभागाध्यक्ष, फसल उत्पादन, भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

आज विश्व की जनसंख्या 740 करोड़ से अधिक है जो कि सन् 2100 तक 1120 करोड़ होने की उम्मीद है (संयुक्त राष्ट्र द्वारा मार्च, 2016 तक अनुमानित)। इनमें से अधिकांश लोग विकासशील देशों में रह रहे हैं जिनकी आधी संख्या भूख और कुपोषण से ग्रस्त है। खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा लगाये गये अनुमान के अनुसार विश्व को आज से तीन दशक पश्चात् 950 करोड़ जनसंख्या को पोषित करने के लिये 75 प्रतिशत अधिक अनाज पैदा करना पड़ेगा। इतनी बड़ी मात्रा में खाद्यान्न का उत्पादन न किए जाने की स्थिति में अगले दो ही दशकों में एक विश्वव्यापी अकाल का सामना करना पड़ सकता है। जहाँ तक भारत का संबंध है, हम गत् दो दशकों के दौरान जनसंख्या वृद्धि की तुलना में अधिक खाद्यान्न पैदा करने में सफल रहे हैं। परन्तु अब फसलों के उत्पादन में स्थिरता आ गई है और प्रति उत्पादन लागत पर उत्पादन घटता जा रहा है। जिसे प्रायः **'हरित क्रान्ति की श्रान्ति'** कहा जा रहा है। सन् 2050 तक हमारे देश को 333 मिलियन टन खाद्यान्न की आवश्यकता पड़ेगी जो कि आज (2015–16) 252.6 मिलियन टन हैं। इस की पूर्ति के लिये कृषि के क्षेत्र में 4.0 प्रतिशत की वार्षिक बढ़त दर का लक्ष्य निर्धारित करने की आवश्यकता है। ऑकड़ों के आधार पर भारत की जनसंख्या 2050 तक लगभग 165.0 करोड़ अनुमानित है जबकि प्रति व्यक्ति खेती योग्य भूमि की उपलब्धता 0.1 हेक्टेयर (1000 वर्ग मीटर) से भी कम होगी।

भारत में आज 143 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में खेती की जाती है जो कुल क्षेत्रफल का 46 प्रतिशत है और अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक है। जनसंख्या में लगातार बढ़ोत्तरी, औद्योगिकीकरण और विकास कार्यो के कारण कृषि क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी की सम्भावना बहुत ही क्षीण है। सीमित क्षेत्रफल से अधिक उत्पादन लेने के लिये उर्वरकों एवं रसायनों का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग पर्यावरण एवं मृदा स्वास्थ्य के लिये पहले से ही जटिल समस्या हैं। ऐसी स्थिति में खेती के ऐसे उपायों की आवश्यकता है जो बढ़ती जनसंख्या के भरण– पोषण हेतु उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य में सहायक हों। ऐसी परिस्थितियों में आज के किसान अपने सीमित क्षेत्र से अधिक लाभ कमाने के लिये नकदी फसलों की तरफ ज्यादा आकर्षित हैं।

अन्न फसलों–गेंहूँ, धान, ज्वार, मक्का आदि की सतत खेती से मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे फसल की पैदावार धीरे–धीरे कम हो जाती है एवं साथ–साथ इस प्रकार की खेती से किसान को वर्ष में केवल एक ही बार आमदनी मिलती है। इस प्रकार से होने वाले फसलोत्पादन में कमी, भूमि की उर्वराशक्ति का ह्रास एवं गिरते लागत प्रतिफल को रोकने के लिये एक उपादान सक्षम एवं लागत उपयोगी तकनीक विकसित करने की आवश्यकता है जिसका प्राकृतिक संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, किसानों के बहुउद्देश्यीय आवश्यकताओं की पूर्ति करे तथा मृदा स्वास्थ की रक्षा करे। उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हम फसल विविधीकरण से ही कर सकते हैं। फसल विविधीकरण एकल एवं सतत् कृषि के दुष्प्रभावों को कम करने के साथ–साथ संसाधनों के समुचित उपयोग में, आय अर्जन में एवं पोषण तथा आर्थिक सुरक्षा के लिये उत्पाद विविधीकरण में मूलतः सीमांत एवं लघु किसानों के साथ समन्वय स्थापित करती हैं। फसल विविधीकरण के अंतर्गत अन्तः फसली या क्रमवद्ध रूप में अधिक आय, जोखिम मुक्त एवं कम अवधि वाली फसलों को लगाकर मृदा की उत्पादन क्षमता बढ़ाने, उत्पादन लागत कम करने एवं उत्पादन पद्धति को टिकाऊ बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान संभव है। इस प्रकार उपलब्ध स्रोतों का समुचित उपयोग कर सीमांत एवं लघु कृषकों का आर्थिक स्तर बढ़ाया जा सकता है।

पोषक तत्व खनन एवं फसल विविधीकरण

भारतवर्ष के सम्पूर्ण 328.7 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में से केवल 264 मिलियन हेक्टेयर ऐसा है जो जैविक उत्पादन क्षमता रखता है। इसमें से 175 मिलियन हेक्टेयर (43 प्रतिशत) किसी न किसी मृदा समस्या से ग्रसित है। अपरदन एवं भूमि क्षरण से 153 मिलियन हेक्टेयर भूमि प्रभावित है जबकि शेष 22 मिलियन हेक्टेयर जलभराव, लवणीकरण व अन्य समस्याओं के चंगुल में है। यह अनुमानित है कि 57 प्रतिशत जमीन अच्छी उत्पादन क्षमता योग्य, 21 प्रतिशत सीमांत व 22 प्रतिशत समस्यायुक्त है। साथ ही साथ यह भी अनुमान है कि भूमि क्षरण से प्रतिवर्ष 5334 मिलियन टन मृदा बह जाती है जो कि 16.4 टन/हेक्टेयर/वर्ष होता है। जबकि अनुमन्य सीमा 4.5 टन/हेक्टेयर/वर्ष है! फसलों द्वारा शोषित व भूमि क्षरण द्वारा ह्रास मिलाकर वर्तमान में प्रतिवर्ष कुल 28 मिलियन टन पोषक तत्वों का ह्रास होता है जबकि रासायनिक उर्वरकों के द्वारा केवल 17 मिलियन टन पोषक तत्वों की भरपायी हो पाती है। इससे स्पष्ट है कि में प्रतिवर्ष 11 मिलियन टन पोषक तत्वों की कमी बनी रहती है जो

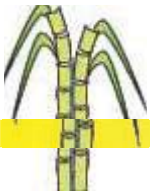

कि मृदा स्वास्थ के लिए ही नहीं बल्कि खेती के टिकाऊपन में बहुत बड़ी बाधा है।

विगत वर्षो में विभिन्न कारणों से फसल प्रणाली में कुछ पारिस्थितिक असंतुलन आया है। धान व गेहूँ जैसी फसलें अधिक क्षेत्रफल पर उगाई जाने लगी हैं तथा चना व जौ का क्षेत्रफल घट गया है। धान के क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी खरीफ– मक्का व दालों की जगह हुई है जबकि धान–गेहूँ व धान–धान पद्धतियों के क्षेत्रफल में वृद्धि, सिंचाई व उर्वरक की प्रचुर उपलब्धता से अंकित हुई है इन सबके कारण फसल उत्पादकता एवं मृदा की उर्वरा शक्ति से सम्बन्धित निम्नलिखित नई समस्याएं उत्पन्न हुई हैं :

- भूमिगत पानी के अधिकाधिक दोहन से जल उपयोग क्षमता का घटना
- मृदा स्वास्थ्य का ह्रास
- कीड़े–मकोड़ों, बीमारियों एवं खर–पतवारों का प्रकोप व विस्तारीकरण
- अनियोजित उर्जा रसायन, बिजली व डीजल की खपत
- आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान विशेष रूप से दलहनी फसलों के क्षेत्रफल में कमी
- वातावरण व जल संसाधनों का दूषित होना

अतः विविधीकरण अधिक उत्पादन दक्ष फसलों व फसल पद्धतियों को बढ़ावा देने की दिशा में एक आवश्यक वांछित बदलाव है, जिससे अन्न फसलों के अतिरिक्त दालों, तिलहनों, चारों, रेशे व ईंधन, मसाले, औषधीय एवं व्यवसायिक फसलों की बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

विविधीकरण के निर्धारक

विविधीकरण के निर्धारकों में सबसे मुख्य, स्थान विशेष की कृषि पद्धति है। इस सम्बंध में कहावत **'सोंचे देश–विदेश की करें स्थान विशेष की'** बिल्कुल ही यथार्थ प्रतीत होती है। फसल विविधीकरण में या फसल प्रणाली के परिवर्तन में जल की उपलब्धता महत्वपूर्ण कारक है। सिंचाई की समुचित व्यवस्था होने से उस स्थान विशेष की फसल पद्धति में परिवर्तन कर अच्छी पैदावार लिया जा सकता है। इस प्रकार फसल विविधीकरण के संदर्भ में तीन महत्वपूर्ण मुद्दे उभरकर आते हैं। 1. नयी फसल, 2. नये उपभोक्ता व 3. नये बाजार। भारत एवं अन्य विकसित देशों में हुये शोधों के आधार पर यह सुनिश्चित किया गया है कि बाजार मूल्य को आधार बनाकर फसल के चुनाव में लचीलापन आवश्यक है। उदाहरणार्थ, देश के विभिन्न भागों में दलहनी फसलों के प्रक्षेत्र में बढ़त उस स्थान की कम लाभ वाली फसल के बदले हो सकती है परन्तु प्रत्येक वर्ष फसल पद्धति में बदलाव से फसल विविधीकरण का लाभ न तो उत्पादक को मिलेगा और न ही आर्थिक व्यवस्था के लिये लाभप्रद है।

फसल पद्धति के लिये बाजार में फसलों का मूल्य प्रतिफल एक आवश्यक घटक है। परन्तु इसके साथ ही बाजार व्यवस्था एवं अंतः संरचना का उतना ही महत्व है। यदि किसान आर्थिक रूप से कमजोर है तो बाजार मूल्यों के सही संकेत नहीं मिलते हैं जिससे उसकी हानि होती है। इस परिप्रेक्ष्य में संसाधनों की आपूर्ति प्रणाली एवं ऋण उपलब्धता स्थान विशेष के फसल विविधीकरण के प्रमुख निर्धारक हैं।

तीसरे प्रकार का निर्धारक जो कि सबसे महत्वपूर्ण है वह नये उपभोक्ता का उदय, अन्य विकासशील देशों की तरह भारत में भी नये उपभोक्ताओं एवं उनकी मॉग के अनुसार नीतियों का निर्धारण करने की आवश्यकता है प्रमुख नीतियों जैसे मूल्य नीति, साख नीति, शोध एवं विकास नीति आदि का निर्धारण अधिक पैदावर एवं टिकाऊ फसल पद्धति के लिये करना होगा।

विविधीकरण की सम्भावनायें

यदि वृहद् स्तर पर देखा जाय तो विविधीकरण को अच्छी तरह से यों समझा जा सकता है कि कृषि से उद्योगों की तरफ रूझान। अतः कृषि के क्षेत्र में विविधीकरण से या तो फसल उगाने की प्रवृत्ति में बदलाव आये या तो किसान अपने उद्यम में परिवर्तन करें, जैसे फसलोत्पादन से पशुपालन की तरफ झुकाव विविधीकरण के अन्तर्गत परिवर्तित उद्यम, मुख्य उद्यम के लिये सम्पूरक होता है इस प्रकार विविधीकरण की निम्न सम्भावनायें परिलक्षित होती हैं :

- कृषि प्रक्षेत्र से अकृषि क्रियाओं की तरफ झुकाव
- कम लाभ वाली फसल या उद्यम से अधिक लाभ वाली फसल या उद्यम की तरफ झुकाव
- विभिन्न सम्पूरक प्रक्रियाओं में विविधीकृत संसाधनों का प्रयोग

निश्चित रूप से पहला विविधीकरण, कृषि में विविधीकरण के बजाय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का विविधीकरण है। दूसरा, किसानो द्वारा मूल्य संकेत के आधार पर बदलती बाजार परिस्थितियो के अनुसार निर्णय लेना है। तीसरा, कृषि पद्वति में निहित शिथिलता और अनुपयोगी संसाधनों के उपयोग में वृद्धि है।

विविधीकरण का फसल उत्पादकता पर प्रभाव

कृषि वैज्ञानिकों के सतत् प्रयास से देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए फसल विविधीकरण पद्धतियों की संस्तुति की गई है (सारणी–1)

फसल विविधीकरण में अन्तः फसली खेती का विशेष योगदान है। दलहनी फसलों का फसल पद्धतियों में समावेश करने से कुल उत्पादकता बढ़ती है उदाहरणार्थ लगातार धान–गेहूँ पद्धति में गेंहूँ की उपज 30 कु. प्रति हेक्टेयर थी जोकि धान के बाद बरसीम का समावेश करने से 50 कु./हेक्टेयर हो गयी इसी प्रकार धान कपास एवं गन्ने के साथ दलहनी अंतः फसल लेने से संबंधित फसल पद्धति की कुल उत्पादकता में स्पष्ट वृद्धि पायी गयी (सारणी–2) साथ ही मिटटी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में अभूतपूर्व सुधार पाया गया।

सारणी –1 : भारत के विभिन्न प्रदेशों के लिये संस्तुत फसल पद्धतियाँ

प्रदेश	फसल पद्धतियाँ		
	प्रथम वरीयता	द्वितीय वरीयता	तृतीय वरीयता
जम्मू एवं कश्मीर	धान–खाली धान– गेहूँ	मक्का+दलहन–खाली मक्का+तिलहन–खाली	फल–सब्जीदलहन– गेहूँ/मिलेट
हिमाचल प्रदेश	मक्का– गेहूँ	धान– गेहूँ	उर्द/राजमा – खाली
उत्तर प्रदेश	धान– गेहूँ गन्ना–पेड़ी– गेहूँ	धान–चना/ मटर/मसूर	अरहर–ज्वार
बिहार	धान– गेहूँ	धान–खाली	रागी–खाली
राजस्थान	खाली–चना कपास– गेहूँ बाजरा–खाली	बाजरा– गेहूँ खाली–सरसों	ज्वार–खाली बाजरा –सरसों
मध्य प्रदेश	धान–खाली सोयबीन–गेहूँ	धान–चना/अलसी उर्द– गेहूँ	धान– गेहूँ धान–चना
आंध्र प्रदेश	धान– धान	धान– मूँगफली	–
कर्नाटक	गन्ना–पेड़ी	मूँगफली – खाली	मक्का–अरहर
पंजाब	धान– गेहूँ कपास–गेहूँ मक्का– गेहूँ	गन्ना – पेड़ी – गेहूँ	मक्का–आलू – गेहूँ
हरियाणा	धान– गेहूँ, गन्ना – पेड़ी – गेहूँ	बाजरा– गेहूँ /सरसों	मक्का– गेहूँ

स्रोत : पी डी सी एस आर बुलेटिन, 2001–2002

दलहनी फसलों की अंतः फसली खेती मुख्यतः सिचिंत क्षेत्रों में गन्ने के साथ एवं बारानी क्षेत्रों में मोटे खाद्यानों के साथ की जाती है। धान– गेंहूँ फसल पद्धति वाले क्षेत्रों में कपास, बरसीम, गन्ना, ज्वार एवं सूरजमुखी आदि फसलों को फसल क्रम में समावेश करने से गेहूँ की फसल के प्रमुख खर–पतवार 'गुल्ली डंडा' का प्रभावी नियंत्रण होता है एवं गेहूँ की उपज में वृद्धि होती है।

सिंचित क्षेत्रों में गन्ना आधारित फसल विविधीकरण

उत्तर भारत में गन्ना मुख्यतः अक्टूबर (शरदकालीन) एवं फरवरी (बसंतकालीन) माह में लगाया जाता है। शरदकालीन गन्ने की पैदावार बसंत कालीन गन्ने की तुलना में 15–20 प्रतिशत तथा चीनी का परता 0.5 इकाई अधिक होने के बावजूद भी इसका क्षेत्रफल सीमित है।

शरदकालीन गन्ने के दो पंक्तियों के बीच काफी रिक्त स्थान (90 से.मी. या अधिक) होता है एवं प्रारम्भिक अवस्था में फसल की बढ़वार बहुत ही धीमी गति से होती है। ऐसी दशा में रिक्त स्थानों का सदुपयोग सहफसल उगाकर व संसाधनों का समुचित उपयोग करके शरदकालीन गन्ने की खेती को अधिक लाभदायक बनाकर इसका क्षेत्रफल भी बढ़ाया जा सकता है। मिश्रित खेती प्रणाली में गन्ना आधारित विविधीकरण द्वारा सहफसल उत्पाद से किसान के बहुआयामी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तथा मध्यावधि आमदनी से गन्ने की खेती की अच्छी व्यवस्था की जा सकती है। विभिन्न मौसमों के लिये भिन्न–भिन्न अंतः फसलें संस्तुत की गई हैं (सारणी–3)।

नेशनल एग्रीकल्चरल टेक्नोलाजी प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ व अन्य सहयोगी केन्द्रों पर फसल विविधीकरण पर किये गये शोध से विभिन्न क्षेत्रों के लिए उत्पादकता एवं आर्थिक दृष्टिकोण से उत्तम पायी गयी गन्ना आधारित दलहनी अन्तः फसलों का चयन किया गया है (सारणी–4) इससे जुड़े अन्य परिणाम इस प्रकार हैं:–

1. बसंतकालीन गन्ने में द्विपयोगी दलहनी फसलें जैसे लोबिया एवं मूँग जिसकी फलियॉ तोड़ने के पश्चात् हरा पौधा उसी खेत में पलट दिया जाता है। जिससे एक तरफ आर्थिक उत्पाद बेंचकर नकदी प्राप्त होती है तो दूसरी ओर पौधे का शेष भाग मृदा में मिलकर हरी खाद के रूप में उर्वराशक्ति बढ़ाता है। लोबिया एवं मूँग की द्विपयोगी अंतः फसल पद्धति से प्रति हेक्टेयर क्रमशः रूपया 46629/– एवं 43707/– का लाभ एवं 70.6 एवं 48.1 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का योगदान होता है।
2. अन्तः फसल के रूप में उगाये गये ढैंचे को पलटने से सूक्ष्म जैव पदार्थ–नत्रजन की मात्रा में सर्वाधिक बृद्धि (58.56 से 79.

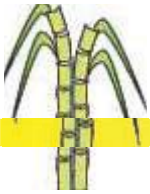

सारणी–2: फसल विविधीकरण का उत्पादकता पर प्रभाव

फसल आधारित पद्धति	उपज (कु. प्रति है)		
	मुख्य फसल	अंत: / क्रमिक फसल	फसल तुल्यांकी उपज
गेहूँ आधारित पद्धति की उत्पादकता			
धान–गेहूँ (लगातार 10 वर्ष)	30	–	–
धान–बरसीम, धान–बरसीम, धान– गेहूँ	50	–	–
धान–मक्का, ज्वार–सरसों, मक्का– गेहूँ	55	–	–
धान आधारित पद्धति की उत्पादकता			
धान (एकल)	19.1	–	19.1
धान + मूँग	18.5	4.70	30.5
धान + उर्द	27.9	4.10	39.4
धान + तिल	17.8	3.10	36.8
गन्ना आधारित पद्धति की उत्पादकता			
गन्ना (एकल)	735.2	–	735.2
गन्ना + मूँग	670.1	5.30	803.0
गन्ना + लोबिया	684.9	19.46	794.2
गन्ना + राजमा	796.7	13.76	1086.3
गन्ना + मसूर	709.4	15.81	1057.9
कपास आधारित पद्धति की उत्पादकता			
कपास (एकल)	6.9	–	6.9
कपास + मूँग (अन्त: फसल)	6.6	4.50	11.07
कपास + मूँग (मिश्रित खेती)	6.0	5.50	11.31

स्रोत : इंडियन जोर्नल आफ एग्रोनामी 42 (4) : पेज 571, 574 एवं वार्षिक प्रतिवेदन एन ए टी पी (पी एस आर– 21)

सारणी–3 : गन्ना आधारित विविधीकरण पद्धतियाँ

फसल पद्धति	समायोजन क्षेत्र
गन्ना + राजमा	उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड
गन्ना + मूँग	उत्तर प्रदेश
गन्ना + लोबिया	उत्तर प्रदेश
गन्ना + मूँगफली	महाराष्ट्र, गुजरात
गन्ना + बाकला	पूर्वी उत्तर प्रदेश
पेंड़ी गन्ना (शीतकालीन) + बरसीम / शफतल	उत्तर प्रदेश, पंजाब

9 मि.ग्रा./कि.ग्रा./10 दिन) हुई जबकि लोबिया के अन्तःफसल के अवशेषों को पलटने से होने वाली सूक्ष्म जैव पदार्थ–नत्रजन में बृद्धि 78.8 से 97.93 मि.ग्रा./कि.ग्रा./10 दिन पायी गई। इससे स्पष्ट है कि अन्तः फसली अवशेषों को मिट्टी में पलटने से मृदा में सूक्ष्म जीवी नत्रजन में बृद्धि होती है जो कि गन्ने की फसल के लिए नत्रजन पोषण के स्रोत में योगदान करता है। इन अवशेष प्रबंध पद्धतियों के अन्तर्गत मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा मूलावरण के अनुकूल भौतिक दशाओं (मृदा घनत्व में कमी) के साथ अधिक पायी गयी।

3. 'एलीलोपैथिक' अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि अन्तः पंक्ति में बोयी गयी ढैंचे की घनी फसल को भूमि में पलटने से मोथा की भूमिगत गांठों (नट्स) के जमाव व पौधों में शुष्क पदार्थ एकत्रीकरण में आशातीत कमी पायी गयी।
4. शीतकालीन पेंड़ी गन्ने के साथ बरसीम एवं शफतल अन्तः फसल से क्रमशः रूपया 68703/– एवं रूपया 71618/– प्रति हेक्टेयर की आमदनी होती है तथा अधिकाधिक कार्बनिक पदार्थ से मृदा के भौतिक गुण (मृदा घनत्व 1.38 से घटकर 1. 28 ग्राम प्रति घन सेमी) में बढ़ोत्तरी होती है।

विविधीकरण से दलहनी फसलों के क्षेत्रफल में विस्तार

सघन कृषि पद्धति को अधिक टिकाऊ बनाने के लिये दलहनी फसलों के द्वारा विविधीकरण बहुत महत्वपूर्ण है। दलहन उगाने से इसकी बढ़ती मॉग की पूर्ति की जा सकती है जो कि शाकाहारी भोजन में प्रोटीन का प्रमुख स्रोत है। दलहनें अच्छादित फसल के रूप में मृदा क्षरण कम करने में सक्षम हैं तथा वायुमंडलीय नत्रजन को भूमि में संचित करती हैं जिसके फलस्वरूप उर्वरकों की बचत हो जाती है एवं किसान को वाहय उपादानों पर निर्भरता घट जाती है। दलहनों की कम समय में पकने वाली प्रजातियों की उपलब्धता से आर्थिक रूप से लाभकारी फसल पद्धतियाँ विकसित करने में सफलता मिली है। एक आंकलन के अनुसार विविधीकरण द्वारा दलहनी फसलों के कुल क्षेत्रफल में 2.5 मिलियन हेक्टेयर की बढ़ोत्तरी की जा सकती है (सारणी–4)। इससे यह स्पष्ट होता है कि दालें जो प्रायः बारानी क्षेत्रों के सीमान्त भूमि में कम लागत पर उगाई जाती रही हैं और जिससे उनकी उत्पादकता बहुत कम रही है, जब सिंचित क्षेत्रों में उपजाऊ भूमि में अच्छी लागत लगाकर उगाई जाती हैं तो उनके उत्पादन में भी वृद्धि होती है! गन्ना आधारित दलहनी फसलों की अन्तःखेती इसका ज्वलंत उदाहरण है।

उत्तरी भारत में धान– गेहूँ फसल चक्र में गेहूँ की कटाई के बाद ढैंचा की हरी खाद या मूँग व लोबिया जैसी दलहनी फसलों की खेती मृदा के लिये बहुत लाभकारी पायी गयी है। दलहनी फसलों के अवशेष खेत में 24–134.4 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हेक्टेयर का योगदान करते हैं जो कि क्रम में आगे उगाई जाने वाली फसल के उत्पादन वृद्धि में कारक का काम करती है। दलहनी फसलों के हरी खाद के रूप में प्रयोग से मृदा में समुचित मात्रा में नाइट्रोजन प्राप्त होती है (सारणी–5)।

असिंचित (बारानी) क्षेत्रों में फसल विविधीकरण

सूखाग्रस्त क्षेत्रों में फसल विविधीकरण उत्पादकता की कुँजी मानी जाती है क्योंकि ऐसी स्थिति में कोई न कोई फसल कुछ उत्पादन अवश्य दे जाती है। इन क्षेत्रों में भी फसल विविधिकरण के लिये दलहनी फसलो का प्रमुख योगदान है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के वैज्ञानिकों द्वारा बारानी क्षेत्रों के लिये उन्नत फसल प्रणालियाँ विकसित की गयी हैं (सारणी –6)

बारानी क्षेत्र प्रायः ढलान युक्त पाये जाते हैं! इन क्षेत्रों में फसलों का अनुमोदन ढलान स्तर पर निर्धारित होता है जैसे :

1. पहाड़ियों के ऊपरी भागों पर – पेंड़ तथा घासें
2. ऐसे क्षेत्र जहाँ 6 प्रतिशत ढलान के खेत जिनकी मृदा उथली गहराई तक हो– घास
3. ऐसे क्षेत्र जहाँ 6 प्रतिशत ढलान के खेत जिनकी मृदा काफी गहरी हो– सीढ़ीनुमा खेती
4. गहरी मृदा एवं 1–3 प्रतिशत ढलान– अंतः फसलीकरण या द्विफसलीकरण
5. गहरी मृदा वाली भूमि 1 प्रतिशत ढलान के साथ– वर्षा ऋतु में परती छोड़कर संचित नमी पर रबी में फसल उगाना या द्विफसलीकरण अपनाना।

वैकल्पिक भूमि उपयोग द्वारा विविधीकरण

उपयोग क्षमता के आधार पर विभिन्न भूमि वर्गों के लिये भिन्न पद्धतियॉ विकसित की गयी हैं जिसमें फसलें, फलदार पेड़, इमारती लकड़ी वाले पेंड़ झाड़ियॉ तथा घासें शामिल हैं। वैकल्पिक भूमि उपयोग पद्धति में कृषि वानिकी बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें बहुवर्षी पेड़ों के साथ–साथ विभिन्न ऋतुओं की फसलें भी उगाई जाती हैं। असिंचित क्षेत्रों में घास एवं बृक्ष आधारित पद्धतियां जैसे ले पद्धति एवं वीथिका खेती पद्धति से फसल उत्पादकता को टिकाऊ बनाने, भूमि एवं जल संसाधनों को संरक्षित करने एवं पशुपालन उद्यम को सुदृढ़ करने में सहायक होती है।

'ले' कृषि पद्धति

इस पद्धति में अन्न वाली फसल–चक्रों में घासीय तथा दलहनी अथवा दोनों ही प्रकार की चारा फसलें ली जाती हैं जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। शोध परिणामों के अनुसार लगातार तीन वर्षों तक स्टायलों उगाने के बाद ज्वार के दाने (1.17 टन/हेक्टेयर) व कड़वी (7.93 टन/हेक्टेयर) की उपज में आशातीत वृद्धि पायी गयी है। इसी प्रकार लगातार तीन वर्षो तक अंजन घास + स्टायलों की खेती करने के बाद ज्वार की फसल लेने पर 1.09 टन/ हेक्टेयर दाना तथा 7.24 टन/हेक्टेयर कड़वी की उपज प्राप्त हुई, इसके अतिरिक्त भूमि में नाइट्रोजन एवं जीवांश की मात्रा भी अन्य पूर्ववर्ती फसल की

सारणी –4: दलहनी फसलों द्वारा विविधीकरण से दलहन क्षेत्रफल में वृद्धि की सम्भावनायें

दलहनी अंतः फसल	मुख्य फसल	प्रमुख क्षेत्र	क्षेत्रफल (हे.)
मूँग / उर्द	गन्ना	पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तरी विहार	0.5
	कपास एवं मिलेट वर्षा आधारित ऊपरी भूमि	महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडू	0.5
	बसंतकालीन / ग्रीष्मकालीन सिंचित सूर्यमुखी	पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब	0.5
अरहर	सोयाबीन, ज्वार, कपास, मिलेट एवं मूँगफली वर्षा आधारित ऊपरी भूमि	आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश का मालवा पठार, महाराष्ट्र का विदर्भ, उत्तरी कर्नाटक एवं तमिलनाडु, दक्षिणी–पूर्वी राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं बिहार	0.5
चना	जौ, सरसों एवं कुसुम वर्षा आधारित ऊपरीभूमि	दक्षिण पूर्वी राजस्थान, पंजाब हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र का विदर्भ	0.5
योग			2.50

सारणी– 5: दलहनी हरी खाद से मृदा में नत्रजन का योगदान

फसल	उगाने का मौसम	नत्रजन योगदान कि.ग्रा.
सनई	खरीफ	24.0
ढैंचा	खरीफ	77.1
मूँग	खरीफ	38.1
लोबिया	खरीफ	53.3
सेंजी	रबी	134.4
बरसीम	रबी	60.7

अपेक्षा सर्वाधिक थी। छिड़काव पद्धति से खाद्यान्न फसलों मक्का, ज्वार व बाजरा में स्टायलों बोने (ओवर सीडिंग) से दाना उत्पादन में 6 से 26 प्रतिशत की वृद्धि होती है साथ ही स्टायलों से प्राप्त चारे का कुल चारा उत्पादन में 6–16 प्रतिशत का योगदान रहता है।

वीथिका खेती

इस खेती के अंतर्गत फसलों के साथ दलहनी चारा फसलें उगाकर मृदा की भौतिक एवं रासायनिक गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है। **'एले'** फसल पद्धति भी एक प्रमुख भूमि उपयोगिता का विकल्प है जिसके द्वारा संकटयुक्त सूखाग्रस्त क्षेत्र के किसानों की बहुआयामी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। **'एले'** फसलीकरण में पेड़ों की कटाई (लॉपिंग) एक समयान्तराल पर कर फसलों के साथ स्पर्धा कम की जाती है तथा पेड़ों से प्राप्त टहनियों को चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है। चार मीटर की दूरी पर लगाई गई सेसबेनिया सेसबान से 58 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा प्राप्त कर सकते हैं।

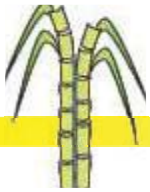

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मक्का की एकल क्रॉस संकर किस्मों का बीज उत्पादन

सोनी कुमारी, प्रांजल यादव, अवनि, ईश्वर सिंह

भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, पूसा कैंपस, नई दिल्ली

भारत में मक्का, चावल और गेहूं के बाद, उगाई जाने वाली तीसरी सबसे बड़ी अनाज की फसल है। इसकी खेती 24–26 लाख टन (2013–14) की वार्षिक उत्पादन के साथ 9.09 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है। वर्तमान में इसकी औसत राष्ट्रीय उत्पादकता 2.56 टन/हेक्टेयर है। हमारे देश में मक्का की खेती मुख्य रूप से खरीफ के मौसम में की जाती है, जो कुल उत्पादन का लगभग 70% योगदान देती है। मक्का में विस्तृत पारिस्थितिक अनुकूलनशीलता है, जिसके कारण यह देश के लगभग सभी भागों में उगाया जाता है, मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, बिहार, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश प्रमुख मक्का उत्पादक राज्य हैं। मक्का देश की प्रमुख पशु आहार फसल है। इसके कुल उत्पादन का लगभग 59% पशु आहार के रूप में और शेष औद्योगिक कच्चे माल (17%), भोजन (10%), निर्यात (10%) और अन्य प्रयोजनों (4%) के रूप में प्रयोग किया जाता है। पशु आहार और औद्योगिक क्षेत्रों में विविध उपयोगों के कारण, मक्का की उपयोगिता तीव्र दर से बढ़ती जा रही है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार साल 2025 तक मक्का की मांग 500 लाख टन तक पहुँच जाने का अनुमान है।

मक्का की, एकल क्रॉस संकर तकनीक द्वारा विकसित कल्टीवर्स आज की सबसे अधिक उत्पादक किस्म हैं। 10 टन/हेक्टेयर से अधिक उपज क्षमता वाले एकल क्रॉस संकर किस्म को खेती के लिए जारी किया गया है। हालांकि वर्तमान में एकल क्रॉस संकर कुल मक्का के औसतन 25–30% का गठन है। इसलिए, अधिक पैमाने पर एकल क्रास संकर को लोकप्रिय बनाने की जरूरत है।

देश में संकर मक्का के उन्नत एवं शुद्ध बीज के अभाव में किसान मक्का की अच्छी पैदावार नहीं ले पाता है। संकर मक्का का बीज उत्पादन किसान अपने स्तर पर करके उत्पादन लागत को कम कर सकते है, साथ ही साथ अधिक पैदावार ले सकता है। एकल संकर मक्का बीज उत्पादन किसानों की आजीविका का स्रोत हो सकता है। पर–परागित फसल जैसे मक्का से अधिक पैदावार लेने के लिए प्रत्येक फसली मौसम में बीज को बदलना जरुरी होता है। मक्का के एकल क्रॉस बीज उत्पादन में उचित सस्य क्रियाये निम्न प्रकार से है।

संकर मक्का क्यों?

- उचित समय एवं कीमत पर संकर बीज की उपलब्धता।
- संकर मक्का के अन्तर्गत फार्म विकास।
- मक्का की उत्पादन एवं उत्पादकता का बढ़ना।
- रोजगार के अवसर।
- विदेशी मुद्रा अर्जित करना।

खेत का चयनः सामान्य मक्का की फसल उत्पादन के लिए जैसी भूमि चाहिए वैसी ही भूमि से बीज की फसल भी उगाई जा सकती है, केवल इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि भूमि में से खरपतवार और मक्का के पौधों को अच्छी तरह निकाल दिया जाए और खेत में जल निकास का उचित प्रबंधन हो। ऐसे खेत का चयन करना चाहिए जहां उसके पहले फसली मौसम में मक्का की खेती नहीं की गयी हो।

बुवाई का समयः अच्छी उपज के लिए उयुक्त समय पर बुवाई जरुरी है। देश के अधिकांश भागों में खरीफ में जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तथा रबी में नवम्बर के प्रथम सप्ताह में बुवाई करने से पैदावार अच्छी होती है। इससे फसल के नरमंजरी एवं सिल्क को खरीफ में होने वाली भारी वर्षा एवं रबी में पाला से बचाव हो जाता है। बीज की अच्छी पैदावार के लिए फसल को फूल वाली अवस्था में वर्षा एवं पाला से मुक्त होनी चाहिए।

उपयुक्त संकर किस्में

अति अगेती किस्मेंः विवके संकर मक्का–15, विवके संकर मक्का–21, विवके संकर मक्का–25, विवके संकर मक्का–33, पूसा अतिरिक्त अगेती संकर मक्का–5 आदि।

अगेती किस्मेंः विवके संकर मक्का–33 एवं प्रकाश

मध्यम किस्मेंः एच. एम.–10

पछेती किस्मेंः एच.क्यू.पी. एम.–1

बीज का चयनः जिस मक्का का बीज उत्पादन करना हो उसका आधार बीज किसी विश्वसनीय स्रोत जैसे कृषि विश्वविद्यालय, राज्य बीज निगम, राष्ट्रीय बीज निगम, प्रतिष्ठित बीज कंपनी आदि से ही प्राप्त करें।

बुवाई की विधिः बीज पंक्तियों में एवं मेडों पर बोना चाहिए। पूर्व–पश्चिम वाले मेड़ के दक्षिण भाग में बुवाई करने से अच्छा अंकुरण होता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75 से. मी. तथा बीज की दूरी 20 से 25 सें.मी. होनी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति के बीच उचित दूरी रहने पर रोगिंग एवं परमंजरी को निकालने में आसानी होती है। एकल क्रॉस संकर बीज उत्पादन में नर एवं मादा जनकों की आवश्यकता पड़ती है। बुवाई के साथ सावधानी रखनी चाहिए कि दोनों बीज आपस में न मिलें। अलग–अलग पंक्तियों में नर एवं

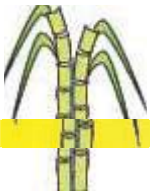

मादा अनुपात के अनुसार जनकों की बुवाई करनी चाहिए। बुवाई के बाद पहचान के लिए नर पंक्तियों के दोनों ओर उपयुक्त प्रकार से टैग लगा देना चाहिए। इससे बाद में किए जाने वाले सभी कार्यों में बहुत सुविधा रहती है।

बीज दरः मादा जनक की 12.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर और नर जनक का 7.5–8.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की उचित मात्रा है। बीज दर निम्न तथ्यों पर निर्भर करती हैः–

- नर–मादा अनुपात।
- नर और मादा जनकों के बीज का आकार/टेस्ट वेट।
- प्लान्ट टाइपः फैलने वाले पौधे की अपेक्षा सीधे रहने वाले पौधे में प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक पौधे आते है। अतः सीधा रहने वाले पौधों के लिए बीज दर अधिक होती है।
- ऋतुः सामान्यतया खरीफ की अपेक्षा रबी में पौधों की संख्या अधिक होती है।

पृथक्करण दूरी/समय पृथक्करण (समय आइसोलेशन): यह दो बातें मौसम एवं वायु वेग पर निर्भर करती है। संकर मक्का बीज उत्पादन हेतु ऐसे फार्म का चयन करना चाहिए, जहां आस–पास में मक्का की दूसरी किस्में नहीं उगाई जाती हों। मक्का के दो जननद्रव्य के बीच कम से कम 400 से 500 मीटर की पृथक्करण दूरी बनाये रखनी चाहिए। यह निम्न परिस्थितियों में संभव हैः–

- शीत ऋतु में जहाँ मक्का सीमित क्षेत्र में उत्पादित की जाती है।
- ऐसा फार्म जहां किसान भाईयों द्वारा मक्का की खेती न की जा रही हो।
- बीज ग्राम द्वारा जहां एक गांव में एक तरह के संकर बीज का उत्पादन किया जाता हों।

नर–मादा अनुपातः नर–मादा अनुपात जो प्रयोग में लाया जाता है वह है, 1:1, 1:2, 1:3, एवं 1:4। यह निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है जैसे–

- नर जनक की पराकरण उत्पादन क्षमता।
- नर–मादा की एक समय में परिपक्वता अच्छे बीज बनने हेतु मादा में नर की अपेक्षा जल्दी फूल आना चाहिए अथवा नर परागण और सिल्क एक ही समय में आना चाहिए।

खाद एवं उर्वरकः सामान्यतया अन्त प्रजात वंशक्रम (इन्ब्रेड) के पौधे कमजोर एवं धीरे–धीरे बढ़ने वाले होते हैं। इसे कार्बनिक एवं रसायनिक उर्वरक की अधिक मात्रा की जल्दी–जल्दी जरुरत होती है। अधिकतम लाभ के लिए मृदा परीक्षण करा लेना चाहिए और इसकी रिपोर्ट के आधार पर उर्वरक की मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। सामान्य दशाओं में 15 टन सड़ी गोबर की खाद, 150–200 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60–75 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 60–70 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर डालना उपयुक्त रहता है। उर्वरक देने का समय भी पौधों की बढ़वार तथा उपज पर काफी प्रभाव डालता है। खरीफ में नाइट्रोजन का एक चौथाई तथा सड़ी हुई गोबर की खाद, फॉस्फोरस, पोटाश एवं जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा बुवाई के समय देना चाहिए।

- 1/4 भाग नाइट्रोजन बुवाई के 15 से 20 दिनों के बाद।
- 1/4 भाग नाइट्रोजन फसल के घुटने भर की ऊंचाई की अवस्था में।
- 1/4 भाग नाइट्रोजन फूल आने के समय में।
- रबी में नाइट्रोजन का 1/5 भाग तथा सड़ी हुई गोबर की खाद, फॉस्फोरस, पोटाश एवं जिंक सल्फेट की पूरी मात्रा बुवाई के समय देनी चाहिए। नाइट्रोजन का शेष भाग बराबर मात्रा में चार अवस्थाओं में देना चाहिए।
- 1/5 भाग नाइट्रोजन यंग सीडलिंग अवस्था में।
- 1/5 भाग नाइट्रोजन फसल के घुटने भर की अवस्था में।
- 1/5 भाग नाइट्रोजन फूल आने से पहले की अवस्था में।
- 1/5 भाग नाइट्रोजन फूल आने की अवस्था में।

सिंचाईः मक्का फसल के लिए पानी की अधिकता एवं कमी दोनों ही हानिकारक है। पानी के निकास का पर्याप्त ध्यान रखना चाहिए। साथ ही पौधे पानी की कमी से मुरझाने नहीं देने चाहिए। आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए, विशेषतः उस समय जब फूल तथा भुट्टे निकलने लगे। अधिक उपज के लिए बार–बार हल्की सिंचाई करनी चाहिए। सामान्यतः खरीफ में 4–5 एवं रबी में 8–10 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है।

खरपतवार प्रबंधनः मक्का की खेती में खरपतवार एक गंभीर समस्या है, ये मक्का के साथ पौष्टिक तत्व एवं पानी के लिए प्रतिस्पर्द्धा करते है। चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवार एवं बहुत से घासों को नियंत्रित करने के लिए एट्राजिन का 1000–1500 ग्राम प्रति हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के बाद एवं खरपतवार के अंकुरण के पहले छिड़काव करना चाहिए। एट्राजिन के छिड़काव के 15–20 दिन बाद आवश्यकतानुसार एक–दो बार निराई–गुड़ाई करने से बचे हुए खरपतवारों का भी नियंत्रण हो जाता हैं।

कीट एवं रोग प्रबंधनः तना भेदक मक्का का एक प्रमुख हानिकारक कीट है। यह पहले पत्तियों को खाता है। फिर तने में घुसकर उसे खोखला कर देता है जिससे पौधे मर जाते हैं। इसे नियंत्रित करने के बाद कार्बोरिल या मोनोक्रोटोफास कीटनाशक दवा को मक्का के अंकुरण के 10 दिन एवं 20 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव पौधे की गोभ में करना चाहिए।

प्रथम छिड़कावः 750 मि.ली. क्लोरोपाईरिफॉस 20 ई.सी को 800 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़ाव करें।

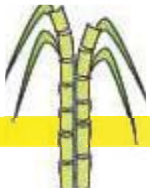

द्वितीय छिड़काव: यदि जरुरी हो तो 1.25 लीटर क्लोरोपाईरिफॉस 20 ई.सी. को 1000 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर क्षेत्र में छिड़काव करें।

बीज जनित एवं मृदा जनित रोगों से बचाव के लिए बीज को थाईरम या कैप्टान दवा की 4 ग्राम मात्रा से प्रति कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए।

अवांछनीय पौधों को निकालना(रोगिंग): अवांछनीय पौधे जैसे भिन्न पौधे, कीट एवं रोग ग्रस्त पौधों एवं अतिरिक्त पौधों को कम से कम तीन बार निकालना आवश्यक हैं।

- बुवाई के 12 से 15 दिनों के बाद अवांछनीय पौधों को उखाड़ कर हटा देने से पौधों से पौधों की दूरी 20 से 25 सें.मी. बरकरार रह पाती है और सभी पौधों को बढ़ने के लिए समान अवसर मिल पाता हैं।
- पौधे की घुटने भर की ऊंचाई की अवस्था।
- पुष्पन परन्तु प्रफुल्लन(एन्थेसिस) के पहले की अवस्थाः नर एवं मादा पौधों की पंक्तियों से भिन्न पौधे को उखाड कर हटा देना चाहिए। नर जनको में सभी भिन्न पौधों को उखाड़ कर हटा देना चाहिए। नर जनकों में सभी भिन्न पौधों को पराग झड़ने से पूर्व अवश्य निकाल देना चाहिए।

मिट्टी चढ़ाना (अरदिंग अप): पुष्पन अवस्था आने से पहले पौधों को गिरने से बचाने के लिए मिट्टी चढ़ाई जाती हैं।

नरमंजरी निकालन (डिटैसलिंग): संकर बीज के लिए नर जनक पराग द्वारा मादा जनक से निकली सिल्क का परागित होना आवश्यक है, यदि मादा जनक पौधों की नरमंजरी से निकला पराग उसी जनक पौधों के सिल्क को परागित करता हैं, तो संकर बीज नहीं बनता हैं। अतः खेत में दो जनको में से मादा जनक की नरमंजरी निकाल देना आवश्यक है तभी उस पौधे का सिल्क दूसरे के पराग से परागित होगा और फलतः संकर बीज बनेगा। जब पौधों के पर्णच्छेद से नरमंजरी बिल्कुल बाहर निकल आती है, लेकिन परागकोष से पराग झड़ना प्रारम्भ किया जाता है। यह कार्य 8 से 10 दिन तक जारी रखा जाता है। एक मादा पंक्ति में एक बार, उसके बाद दूसरी पंक्ति में नरमंजरी निकाली जाती है।

फसल की कटाई या भुट्टो की तुड़ाई: नर पंक्तियों को पहले खेत से काटकर अलग कर लेना चाहिए। गिरे हुए पौधों के भुट्टों को भी सही तरह से अलग कर लेना चाहिए, जिससे वे भुट्टे मादा भुट्टे में मिलने न पाये। इसके बाद भुट्टों के सूखने की व्यवस्था करके मादा भुट्टों को तोड़ लेना चाहिए। मक्का के भुट्टों में 20 से 25 प्रतिशत नमी रहना चाहिए।

भुट्टो को सूखाना एवं छांटना: मादा जनक पौधों से प्राप्त भुट्टे ही संकर बीज हैं। इसमें नर जनक वाले भुट्टे नहीं मिलाना चाहिए। अवांछित प्रकार के भुट्टों जैसे रोग ग्रस्त, भिन्न भुट्टे आदि छांटकर निकाल देना चाहिए। भुट्टे को त्रिपाल पर सूखाना चाहिए। रात में ढ़क देना चाहिए। पक्के फर्श पर सूखाने से बीज में यांत्रिक क्षति आ सकती है। भुट्टों को 13 से 14 प्रतिशत आर्दता तक सूखाने के बाद एक बार फिर छंटाई करना चाहिए। दाना निकालने के पहले भुट्टों को अलग कर देना चाहिए।

भुट्टों से दाना निकालना (शेलिंग): पहले मादा जनक पौधे के भुट्टों से दाना निकालना चाहिए। दाना निकालने का कार्य मानव द्वारा या बिजली चालित मक्का शेलर द्वारा किया जा सकता है।

भण्डारण एवं विपणन: भण्डारण के लिए बीज को 8–10 प्रतिशत आर्दता के स्तर तक सूखाना चाहिए। बीज को अलग–अलग श्रेणी में छांटकर, दवाई से उपचारित कर हवादार जूट के थैले में भर देना चाहिए एवं गुणवत्ता के आधार पर विपणन करना चाहिए।

देश के विभिन्न भागों के निवासियो के व्यवहार के लिए सर्वसुगम और व्यापक तथा एकता स्थापित करने के साधन के रूप में हिंदी का ज्ञान आवश्यक है।

– सी.पी. रामस्वामी अय्यर

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

कुपोषण एवं खाद्य–सुरक्षा हेतु दलहन एक श्रेष्ठ समाधान

अनीता सावनानी[1], अल्का डेविड[2] एवं अभिषेक कुमार सिंह[1]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[2]बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ सदियों से दालों का उत्पादन व उपभोग किया जाता रहा है। हर भारतीय के भोजन मे दालों का महत्वपूर्ण स्थान है चाहे बात दाल रोटी की हो या दाल चावल की, हर भारतीय का भोजन दाल के बिना अधूरा होता है। आज के बदलते परिवेश में जहाँ माँसाहारी भोजन के अधिक उपयोग से विभिन्न तरह की बिमारियों जैसे उच्च रक्तचाप, हृदय सम्बंधी विकार, मधुमेह की बढ़ोत्तरी हुई है वहीं दालों के उचित उपयोग से भोजन में उच्च कोटि की प्रोटीन की प्राप्ति हो सकती है। यह सिर्फ शाकाहारी व्यक्ति के लिये ही नहीं बल्कि मॉसाहारी व्यक्तियों के लिए भी प्रोटीन का सबसे सुलभ, सस्ता एवं व्यहारिक स्रोत है। इसी वजह से आज दाल की मॉग में काफी बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है।

अंतर्राष्ट्रीय दलहन वर्ष

प्रोटीन, शक्ति एवं स्वास्थ्य में दालों के महत्व, दलहन की खेती एवं व्यवसाय तथा दालों का भोजन में महत्व से संबंधित विश्व भर में जन जागरूकता पैदा करने के उद्देश्य से वर्ष 2016 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अंतराष्ट्रीय दलहन वर्ष घोषित किया है। इसी संदर्भ में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के नारे 'जय जवान जय किसान' को दोहराते हुये किसानों से अपील में कहा ''देश में दहलन की पैदावार बहुत कम है और किसानों से अपील है कि यदि उनके पास पाँच एकड़ जमीन है तो वह कम से कम एक एकड़ यानि खेती के पाँचवे हिस्से में दलहनी की खेती करें जिससे दलहन का उत्पादन बढ़ेगा एवं इसकी आपूर्ती बढ़ाने में मदद मिलेगी और आयात पर निर्भरता कम होगी।''

दालों की मांग एवं आपूर्ति

गौरतलब है कि पिछले कुछ वर्षों से दालों के उत्पादन व उसकी आपूर्ति की तुलना में लगातार कमी देखी गयी है। दलहन का उत्पादन वर्ष 2014–15 में 19.24 मिलियन टन से घटकर 17. 20 मिलियन टन रह गया है। जिसके कारण 2012–13 में कुल 40 लाख टन, 2013–14 में 30.4 लाख टन तथा 2014–15 में 55 लाख टन दालों का आयात करना पड़ा। प्राकृतिक विपदायें जैसे सूखा, बाढ़ की वजह से देश के कई हिस्सों को भारी नुकसान का सामना करना पड़ा है। इन्हीं सब वजहों का यह असर पड़ा कि दालों की कीमतों में अभूतपूर्व तेजी देखी गयी, जिसके कारण दालों का सेवन आम आदमी की पहुँच से बाहर होता जा रहा है। भारत जैसे शाकाहारी देश में दालों के बिना भोजन करने से कुपोषण व उससे पैदा होने वाली बिमारियों के बढ़ने के आसार नजर आने लगे हैं।

भोजन में दालों का महत्व

भारत की बड़ी आबादी शाकाहारी है। प्रोटीन के खजाने को समेटे हुए दाले शाकाहारी भोजन का महत्वपूर्ण भाग होती हैं। प्रोटीन मानव शरीर के शारीरिक एवं मानसिक वृद्धि के लिये नितांत आवश्यक है। प्रोटीन के अलावा इसमें कार्बोहाइड्रेट, कई प्रकार के विटामिंस, रेशा खनिज लवण आदि तत्व पाये जाते हैं, जो शरीर को स्वस्थ रखने के साथ–साथ कई प्रकार की बिमारियों से दूर रखते हैं। साबुत व छिलके वाली दालें खाना ज्यादा फायदेमंद होता है। इनमें साबुत मूँग, मसूर, चना, राजमा, अरहर, मोंठ आदि आते हैं।

दालों के पौष्टिक मूल्य (प्रति 100 ग्रा.)

दालें	कार्बोहाड्रेट (ग्रा.)	प्रोटीन (ग्रा.)	वसा (ग्रा.)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	लौह तत्व (मि.ग्रा.)	थायमिन (मि.ग्रा.)	राइबोफ्लेविन (मि.ग्रा.)	नियासिन (मि.ग्रा.)	विटामिन सी (मि.ग्रा.)
चना	60.9	17.1	5.3	202	4.6	0.30	0.15	2.9	3.
उड़द	59.6	24.0	1.4	154	3.8	0.42	0.20	2.0	0
तुवर/अरहर	57.6	22.3	1.7	73	2.7	0.45	0.19	2.9	0
सोयाबीन	20.9	43.2	19.5	240	10.4	0.73	0.39	3.2	0
मूंग	56.7	24.5	1.2	75	3.9	0.47	0.21	2.4	0
मटर	56.5	19.7	1.1	75	7.05	0.47	0.19	3.4	0
कुलथी	57.2	22.0	0.5	287	6.77	0.42	0.2	1.5	0

स्रोतः आईसीएमआर 2010

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि दालों में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। प्रोटीन शरीर की मरम्मत, तथा उसकी वृद्धि व विकास में सहायक है तथा साथ ही साथ शरीर में 8–12 प्रतिशत ऊर्जा की प्राप्ति भी प्रोटीन द्वारा प्राप्त होती है। प्रति ग्राम प्रोटीन से 4 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। जोकि हमारे शरीर के विकास एवं वृद्धि में सहायक है।

- दालों में आवश्यक अमीनों अम्ल की प्रचुर मात्रा पायी जाती है जैसे लाइसीन, थ्रीयोनाइन एवं ट्रप्टोफेन जो कि अनाज में नहीं पाये जाते। साथ ही साथ दालों में लौह लवण, कैल्शियम, मैगनीशियम, जिंक, पोटेशियम तथा घुलनशील फाइबर यानि रेशे की भी प्रचुर मात्रा पायी जाती हैं। रेशे का आहार में बहुत ही उपयोगी स्थान है। इससे पेट सम्बन्धी व्याधियाँ दूर होती हैं साथ ही रक्त में कोलेस्ट्राल तथा शर्करा की मात्रा भी नियंत्रित होती है।
- दालें आवश्यक बी कामप्लेक्स, विटामिन का भी उन्नत स्रोत मानी जाती हैं। बी कामप्लेक्स विटामिन शरीर के चयापचय (मेटाबोलिजम) को सुचारू रूप से करने में सहायक होता है। लाल रक्त कणिकाओं के निर्माण में मददगार होता है तथा मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र को सही से काम करने में भी मदद करता हैं।
- दालों में एन्टीऑक्सीडेंट की मात्रा भी प्रचुरता से पायी जाती है। एन्टीऑक्सीडेंट शरीर से विषैले तत्वों को बाहर निकालने में सहायक होते हैं। एन्टीऑक्सीडेंट से भरपूर खाद्य पदार्थ आक्सीकरण की प्रक्रिया को समाप्त कर कोशिकाओं को स्वस्थ रखने में सहायक होते हैं।

दालो के गुणात्मक पोषण में वृद्धि के उपाय

यूँ तो दालों में भरपूर मात्रा में पौष्टिक तत्व होते हैं परन्तु दालों में कुछ एंटी न्यूट्रिशनल तत्व भी पाये जाते हैं जो शरीर में जाने के बाद दालों के पोषक तत्वों का पूर्ण अवशोषण नहीं होने देते। अतः जरूरी है कि दालों को इन न्यूट्रिशनल तत्वों से मुक्त किया जाए जिससे दालों के सम्पूर्ण पोषक तत्वों का पूर्ण लाभ शरीर को प्राप्त हो सके। इसके लिए कुछ आसान विधियाँ निम्नवत् है।

दालों को भिगोना

दालों को हमेशा पकाने से पहले धोकर 15–20 मिनट तक भीगने देना चाहिए। इससे उनमें जो फाइट्रेट (Phytrate) लैक्टीन (Lactin) तथा ट्रिपसिन इनहिबीटर (Trypsin inhibitors) जैसे प्रतिपोषकीय यौगिक (Anti nutritional) पाये जाते है, उनका विघटन (Break Down) होता है और दालों के पौष्टिक तत्व सुपाच्य हो जाते हैं, भीगने से गलने में समय कम लगता है तो ईंधन की भी बचत होती है साथ ही साथ प्रोटीन सुपाच्चय होने से गैस, एसीडिटी या बदहजमी (Flatulance) जैसी व्याधियाँ भी नहीं होतीं और दालें आसानी से पाचनशील हो जाती हैं।

दालों का सम्मिश्रण

दालों में एक आवश्यक अमीनों अम्ल मिथियोनाइन (Methionine) की कमी होती है। इसके विपरित अनाजों में लाइसीन (Lysin) नामक आवश्यक अमीनों अम्ल की कमी होती है। अतः आवश्यक है कि दालों को अनाज के साथ मिश्रित करके प्रयोग किया जाए। अनाज एवं दालों को मिश्रित रूप से प्रयोग करने पर सभी अमीनों अम्लों की प्राप्ति होती है और प्रोटीन की गुणवत्ता में सुधार होता है। भारतीय भोजन में इसी कारण दाल–रोटी या दाल–चावल का प्रचलन एक संतुलित पद्धति माना गया है।

दालों का अंकुरण

अंकुरित दालें ऐसा स्वस्थ आहार हैं जो शरीर को नवजीवन देने वाला अमृतमय आहार माना गया है। इसके लिए दालों को 7–8 घण्टे पानी में भीगने दें और फिर गीले कपड़े में बाँध कर 24 घण्टे के लिए छोड दें। 24 घण्टे बाद दालों में अंकुर निकल आयेंगें और फिर उसमें सलाद जैसे खीरा, टमाटर, प्याज, नीबू आदि मिलाकर सेवन करना चाहिए। अंकुरण से भोज्य पदार्थ के पोषक तत्वों में बढ़ोत्तरी नैसर्गिक रूप से होती है। साबुत दालों मे मूँग, गोंठ, कालचना, काबुली चना, लोबिया, सोयाबीन आदि को आसानी से अंकुरित कर एक अति उत्तम स्वस्थ–आहार का सेवन किया जा सकता हैं।

अंकुरण से दालों में व्याप्त पोषक तत्व जैसे विटामिन बी काम्पलेक्स में खासतौर पर थायमिन, राइबोफलेविन, नायसिन की मात्रा दुगुनी हो जाती है। इसके अलावा केरोटीन जो शरीर में विटामीन ए का निर्माण करता है उसकी भी मात्रा बढ़ जाती है। सूखी दालों में विटामिन सी की मात्रा लगभग दस गुनी हो जाती है। अंकुरण की प्रक्रिया मे कार्बोहाइड्रेड व प्रोटीन और अधिक सुपाच्य हो जाते हैं साथ ही प्रतिपोषकीय तत्वों का ह्रास होता है और दालें सुपाच्य बन जाती हैं।

दालों में किण्वन या खमीरीकरण

दालों के पोषक तत्वों की गुणवत्ता को बढ़ाने का एक अन्य उपाय खमीरीकरण या किण्वन प्रक्रिया है। किण्वन वह प्रक्रिया है जिसमें भोज्य पदार्थ में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणु भोजन के पोषक तत्वों के साथ मिलकर उसमें रासायनिक परिवर्तन करते हैं जिसके परिणामस्वरूप भोज्य पदार्थ के पोषक तत्व सुपाच्य यौगिकों में परिवर्तित हो जाते हैं। खमीरीकरण के द्वारा विटामिन 'सी' फौलिक अम्ल तथा मिथीयोनाइन की मात्रा में वृद्धि हो जाती है साथ ही साथ विटामिन बी काम्पलेक्स की मात्रा दुगुनी हो जाती है प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट सरल रूपों में विखंडित हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप अधिक पाचनशील हो जाते है। इडली, डोसा, बड़ा, ढ़ोकला यह सभी भारतीय व्यंजन खमीरीकृत पौष्टिक भोज्य पदार्थ हैं।

खाद्य सुरक्षा तथा खाद्य गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए अति आवश्यक है कि दलहन का उत्पादन तथा नियमित रूप से सेवन किया जाये। भारत जैसे विकासशील देश में कुपोषण की समस्या बढ़ती जा रही है। जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप दालों का उत्पन्न न होना तथा साथ ही साथ पोषण ज्ञान का अभाव होने के कारण समाज के निर्धन वर्गो के साथ साथ मध्यम वर्ग भी पेट भरने के लिए सिर्फ अनाज का ही सेवन कर रहे हैं। इससे आबादी के एक बड़े हिस्से के सामने पोषण असुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो गया है। अतः व्यापक स्तर पर कुपोषण की समस्या से छुटकारा पाने के लिए अति आवश्यक है कि दालों के द्वारा खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के संदर्भ में जागरूकता पर बल दिया जाए। संतुलित आहार जीवन का आधार है जिसमें दलहन का विशिष्ट स्थान है। अच्छे स्वास्थ के लिए आवश्यक है कि दलहन का पूर्ण उत्पादन एवं उपयोग किया जाए तभी इस अंतराष्ट्रीय दलहन वर्ष की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

गन्ने में दलहनी फसलों की अन्तः फसली खेती : टिकाऊ खेती का आधार

अनिल कुमार सिंह एवं हरीश चन्द्र
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारतवर्ष मे गन्ना पूर्व वैदिक काल से ही बोया जाता है। वर्तमान में भारतवर्ष गन्ना उत्पादक देशों में प्रमुख है। हमारे देश में गन्ना ही चीनी का एक मात्र स्रोत है एवं सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान लगभग 1.9 प्रतिशत है। वर्ष 2015–16 में 49.2 लाख हे. क्षेत्र से 69.4 टन/हे. उत्पादकता के साथ 3414 लाख टन गन्ने का उत्पादन किया गया (कोआपरेटिव सुगर, मार्च, 2016)। दिन–प्रतिदिन नवीनतम् कृषि अनुसंधानों के फलस्वरूप गन्ने के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है। यदि पिछले पाँच दशकों में गन्ने की पैदावार का विश्लेषण करें तो यह ज्ञात होता है कि गन्ने के क्षेत्रफल में 2.45 गुना, उत्पादन में 5 गुना एवं उत्पादकता में 2.32 गुना की बढ़ोत्तरी हुई। गन्ने की पैदावार में लगातार वृद्धि के बावजूद भी विभिन्न राज्यों की गन्ना उत्पादकता में बहुत अंतर है। गन्ने की उत्पादकता छत्तीसगढ़ में 27.0 टन प्रति हे. एवं तमिलनाडु में 105.0 टन प्रति हे. पाई गयी है, जोकि सम्भावित एवं वास्तविक उपज में बहुत बड़े अन्तर का द्योतक है। गन्ने की उपज में अस्थिरता, कारकों की उत्पादकता में भारी गिरावट, बढ़ती हुई उत्पादन लागत, लाभाँश मे कमी एवं अस्थिर बाजार किसानों के समक्ष मुख्य मुद्दे बन गये हैं। अतः इस महत्वपूर्ण व्यापारिक फसल की मूलभूत कठिनाईयों से छुटकारा दिलाने व गन्ने की खेती को टिकाऊ बनाने हेतु नये कृषि अनुसंधान आयाम वांछनीय हैं।

गन्ना लम्बी अवधि वाली अधिक दूरी पर कतारों में लगायी जाने वाली फसल है तथा गन्ने की खेती से वर्ष में मात्र एक बार आय की प्राप्ति होती है। इस कारण इसके उत्पादन पद्धति में अंतः फसली खेती की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। कम अवधि की अधिक आय देने वाली दलहनी फसलों को गन्ने के साथ अन्तः फसल के रूप में उगाकर मृदा की उत्पादन क्षमता बढ़ाने, उत्पादन लागत कम करने और उत्पादन पद्धति को टिकाऊ बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान संभव है। इस प्रकार फसल विविधीकरण, उपलब्ध स्रोतों का समुचित उपयोग कर सीमांत और लघु किसानों के आर्थिक और सामाजिक स्तर को बढ़ाया जा सकता है तथा एकल एवं सतत् कृषि के दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है।

गन्ना उत्पादन पद्धति में दलहनी फसलों की अंतः खेती की संभावनाये

उपोष्ण क्षेत्रों में गन्ने की बुवाई प्रायः वर्ष की तीन ऋतुओं शरद, बसंत एवं ग्रीष्म काल में की जाती है। गन्ने के कुल क्षेत्रफल का 6–8 प्रतिशत शरदकाल में, 60–65 प्रतिशत बसंतकाल में और 20–25 प्रतिशत ग्रीष्म काल में बोया जाता हैं। उपर्युक्त ऋतुओं में गन्ना क्रमशः 90, 75 एवं 60 से.मी. की दूरी पर बोया जाता है। उत्तर भारत में गन्ना मुख्यतः शरदकालीन (अक्टूबर) और बसन्तकालीन (फरवरी/मार्च) में लगाया जाता है। ग्रीष्म कालीन को छोड़कर बाकी दो ऋतुओं में गन्ने के साथ अन्तः फसल ली जा सकती है। अतः गन्ने में अन्तःफसल के रूप में दलहनी फसलों के समावेश की निम्नलिखित संभावनायें हैं:

- शरदकालीन गन्ने में अन्तः फसली खेती
- बसंतकालीन गन्ने में अन्तः फसली खेती
- शीतकालीन पेड़ी आधारित अन्तः फसली खेती

गन्ने में अन्तः फसली खेती से दाल, तिलहन, सब्जी, धान्य और चारा उत्पादन की पर्याप्त संभावनायें हैं। इस पद्धति से दलहनी तथा तिलहनी फसलों का, जो कि प्रायः सीमांत भूमि में लगायी जाती हैं, गन्ने के साथ लगाकर इनकी उत्पादकता भी बढ़ायी जा सकती है। शीतकालीन पेड़ी में चारा अन्तः फसलों से चारा उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ गन्ना पेड़ी में आंखों के प्रस्फुटन में बढ़ोत्तरी संभव है।

गन्ना आधारित अंतः फसली खेती

नेशनल एग्रीकल्चरल टेक्नोलाजी प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ व अन्य सहयोगी केन्द्रों पर फसल विविधीकरण पर किये गये शोध से विभिन्न क्षेत्रों के लिए उत्पादकता और आर्थिक दृष्टिकोण से उत्तम पायी गयी। गन्ना आधारित अन्तः फसलों का चयन किया गया है तथा उनके लिए उचित प्रबन्धन तकनीकियां विकसित की गई हैं।

शरद्कालीन गन्ने में दलहन की अंतः फसली खेती

शरद्कालीन गन्ने की पैदावार बसन्तकालीन गन्ने की तुलना में 15 से 20 प्रतिशत तथा चीनी का परता 0.5 इकाई अधिक होने के बावजूद इसका क्षेत्रफल सीमित है। प्रारम्भिक अवस्था में शरद्कालीन गन्ने में दो पंक्तियों के बीच काफी रिक्त स्थान होता है और फसल की बढ़वार बहुत ही धीमी गति से होती है। ऐसी अवस्था में रिक्त स्थानों का सदुपयोग अन्तःफसल उगाकर व संसाधनों का सघन उपयोग करके शरद्कालीन गन्ने की खेती को अधिक लाभदायक बनाकर इसके क्षेत्रफल में आशातीत वृद्धि की जा सकती है। शरदकालीन गन्ना आधारित अन्तःफसल पद्धतियॉ सारणी–1 में दर्शायी गई हैं।

राजमा (पी.डी.आर.–14) की अन्तः फसली खेती करने पर गन्ने की पैदावार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शरदकालीन गन्ने की पक्तियों के बीच मसूर (डी.पी.एल.–15) की दो पंक्तियों की अन्तः फसली बुवाई पद्धति में 150 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हे. एजोस्पिरिलम के साथ प्रयोग करने से गन्ना समतुल्य उपज में वृद्धि के साथ–साथ 37.5 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हे. की बचत भी पायी गयी है।

बसंत कालीन गन्ने के साथ दलहन की अन्तः फसली खेती

बसंत कालीन गन्ना – पेड़ी फसल पद्धति में कार्बनिक पदार्थ का संरक्षण एवं खरपतवार नियंत्रण मुख्य मुद्दा है जिसका समाधान दलहनी अन्तः फसलों के चयन द्वारा किया जा सकता है। बसंत कालीन गन्ने के साथ मूँग और उर्द की अन्तः फसली खेती मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब और हरियाणा में करके दलहन का लगभग 10 लाख हे. अतिरिक्त क्षेत्रफल बढ़ाया जा सकता है। द्विउद्देशीय दलहनी फसलों के समावेश से जैसे गन्ना + लोबिया व गन्ना + मूँग पद्धति द्वारा शुद्ध लाभ में वृद्धि की जा सकती है (सारणी – 2)। इन फसलों की फली तोड़ने के बाद पौधों को हरी अवस्था में ही गन्ने की दो पक्तियों के बीच भूमि में पलट कर दबा देने से 30 से 40 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हे. की बचत पायी जाती है।

लोबिया और मूँग की सहफसल पद्धति से प्रति हे. क्रमशः 70.6 और 48.1 किग्रा. नाइट्रोजन का योगदान होने के साथ–साथ रूपया 46629 और 43707 का शुद्धलाभ प्राप्त होता है। बंसत कालीन गन्ने की पंक्तियों के बीच के स्थान में हरी खाद के लिए ढ़ैचा की सघन बुवाई से खरपतवार का नियंत्राण प्रभावशाली ढंग से हो जाता है। ढैचा को भूमि में पलट कर मिला दिया जाता है और इसके सड़ने की प्रक्रिया में निकलने वाले रसायन (एलिलोपैथी) मोथा जैसे खरपतवार के जमाव को रोकते है। साथ ही साथ मृदा में पोषक तत्वों को संतुलित रखते है।

शीतकालीन पेड़ी आधारित दलहन की अन्तःफसली खेती

जाड़े में शुरू किए गये पेड़ी में अधोभूमिगत स्थित गन्ने की आंखों का न जमना फसल के असफल होने का मुख्य कारण है। गन्ना की अधिक शर्करा युक्त जल्दी पकने वाली प्रजातियों के साथ यह एक विशेष समस्या है। सिद्वान्तः उपयुक्त तापक्रम आने तक इन अधोभूमिगत आंखों की दैहिक क्रियाओं को सक्रिय अवस्था में लाकर इस समस्या का समाधान सम्भव है। सघन तथा जल्दी बढ़ने वाली चारा फसलों जैसे : बरसीम एंव शफतल की बुआई कर जाड़े के प्रभाव को कम करके पेड़ी में अच्छा फुटाव प्राप्त किया जा सकता है (सारणी – 3)। ये चारे की फसलें पेड़ी में जीवंत अवरोध परत के रूप में जड़ क्षेत्र का ताप नियंत्रण तथा भूमिगत स्थित आंखों को पाले के कुप्रभाव से बचाव करती है। जिससे बसंत आने पर पेड़ी में उपयुक्त फुटाव हो जाता है। इससे गन्ना – पशु पद्धति को बल मिलता है।

गन्ना आधारित विविधीकरण एवं टिकाऊपन

अन्तः फसल के रूप में उगाये गये ढैचें को पलटने से सूक्ष्म जैव पदार्थ नाइट्रोजन की मात्रा में सर्वाधिक वृद्धि (58.56 से 79.9 मिग्रा./ किग्रा./10 दिन) पाई गई वहीं लोबिया के अन्तः फसल के अवशेषों को पलटने से होने वाली सूक्ष्म जैव पदार्थ नाइट्रोजन में वृद्धि 78.8 से 97.93 मिग्रा/किग्रा./10 दिन हुई (सारणी– 4)। इससे स्पष्ट है कि अन्तः फसली अवशेषों को

सारणी 1 : शरदकालीन गन्ने में अन्तः फसली पद्धतियाँ

फसल	गन्ना उत्पादन (टन/ हे.)	अन्तः फसली उत्पादन (टन/ हे.)	गन्ना समतुल्यांक उपज (टन/ हे.)	शुद्वलाभ (रूपये प्रति हे.)	लाभ लागत अनुपात
गन्ना	85.2	–	85.2	50199	1.63
गन्ना + राजमा	86.8	1.94	132.8	89884	2.54
गन्ना + मसूर	76.5	1.16	99.0	59629	1.73

सारणीः 2 बसंतकालीन गन्ने में अन्तः फसली पद्धतियाँ

फसल	गन्ना उत्पादन (टन/ हे.)	अन्तः फसली उत्पादन (टन/ हे.)	गन्ना समतुल्यांक उपज (टन/ हे.)	शुद्वलाभ (रूपये प्रति हे.)	लाभ लागत अनुपात
गन्ना	77.3	–	77.3	42696	1.38
गन्ना + लोबिया (हरी फली)	75.2	2.90	90.4	51261	1.48
गन्ना + मूँग	76.6	0.57	91.6	52765	1.54

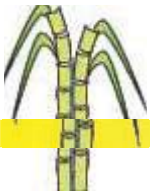

सारणी 3 : शरदकालीन पेड़ी में अन्तःफसली पद्धतियाँ

फसल	गन्ना उत्पादन (टन/ हे.)	अन्तः फसली उत्पादन (टन/ हे.)	गन्ना समतुल्यांक उपज (टन/ हे.)	शुद्धलाभ (रूपये प्रति हे.)	लाभ लागत अनुपात
गन्ना पेड़ी	73.2	–	73.2	42440	1.40
गन्ना पेड़ी + बरसीम	79.4	56.3	109.3	73542	2.43
गन्ना पेड़ी + शफतल	77.9	54.7	106.7	71072	2.35
गन्ना पेड़ी + रिजका	72.6	41.2	94.3	59292	1.96

मिट्टी में पलटने से मृदा में सूक्ष्म जीवी नाइट्रोजन में वृद्धि होती है, जोकि गन्ने की फसल के लिए नाइट्रोजन पोषण के स्रोत में योगदान करता है। इन अवशेष प्रबंध पद्धतियों के अन्तर्गत मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा मूलावरण के अनुकूल भैतिक दशाओं (मृदा घनत्व में कमी) के साथ अधिक पायी गयी है।

गन्ने के साथ दलहनी अन्तःफसल लेने से पेड़ी की पैदावार में वृद्धि व भूमि की उर्वराशक्ति में बढ़ोत्तरी होती है। साथ ही साथ उसके भौतिक गुण में मूलभूत सुधार होता है। राजमा, बरसीम एवं शफतल अन्तः फसलें काटने के बाद भूमि में उपलब्ध नत्रजन क्रमशः 246.9, 241.5 एवं 251.2 किग्रा. प्रति हे. पाया गया है। गन्ना आधारित फसल पद्धतियों में किये गये अनुसंधान के द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि दलहन अन्तःफसल के द्वारा मृदा घनत्व एवं स्पंदन दर में अनुकूल प्रभाव पाया गया है (सारणी –5)।

गन्ना उत्पादन पद्धति में विविधीकरण के प्रमुख लाभ

1. फसल तथा सहफसल उत्पाद मिश्रित खेती प्रणाली में किसान की बहुआयामी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है।
2. किसानो के गृहस्थ जीवन में आवश्यक पोषण अवयव की आपूर्ति होती है।

सारणी 4 : बावक गन्ना–पेड़ी पद्धति में मृदा स्वास्थ्य पर अंतःफसलों का प्रभाव

अन्तः फसली पद्धतियाँ	मृदा जीवणु क्रियाशीलता (कार्बन/किग्रा./10 दिन)		अतः फसल अवशेष द्वारा नाइट्रोजन (किग्रा./हे.)	फसल काटने के बाद मृदा घनत्व (ग्रा./सेमी^{3})	पेड़ी गन्ना की उपज (टन/ हे.)
	अवशेष मिलाने के पहले	अवशेष मिलाने के बाद			
गन्ना + लोबिया	78.80	97.93	69.6	1.38	65.0
गन्ना + मूँग	70.07	83.37	46.7	1.14	64.0
गन्ना + ऊर्द	74.07	79.83	31.1	1.44	59.0
गन्ना + ढैचा	68.56	79.9	44.3	1.40	62.3

सारणी 5 : अन्तः फसली खेती का मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव

अन्तः फसली पद्वति	मृदा घनत्व (ग्रा./सेमी^{3})	इन्फिल्ट्रेशन दर (मिमी./घंटा)	अतः फसल काटने के बाद उपलब्ध नाइट्रोजन (किग्रा./हे.)
गन्ना	1.38	3.75	209
गन्ना + मसूर	1.36	4.00	246
गन्ना + राजमा	1.37	4.75	231
गन्ना + बरसीम	1.24	3.73	241.5
गन्ना + शफतल	1.28	4.24	251.2

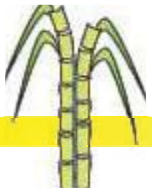

3. सह फसल से मध्यावधि में प्राप्त होने वाली आमदनी से गन्ने की खेती की अच्छी व्यवस्था की जा सकती हैं।

4. पूरे वर्ष कृषक परिवार के सदस्यों विशेषकर महिलाओं और बच्चों को काम मिलता रहता है।

5. प्रायः सीमान्त भूमि में बोयी जाने वाली दलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ जाती है।

6. फसल अवशेष से भूमि की उर्वरा शक्ति तथा भौतिक अवस्था बनाये रखी जा सकती है।

गन्ना आधारित अन्तः फसली खेती में विशेष ध्यान देने योग्य कुछ बातें

1. दलहनी अंतः फसल कम अवधि वाली, उचित पौध संरचना वाली, मध्यावधि में अधिक लाभ देने वाली व मृदा पर अनुकूल प्रभाव डालने वाली होनी चाहिए।
2. गन्ने व अन्तः फसल की क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत प्रजातियों का ही चयन करना चाहिए।
3. गन्ना बुआई के बाद अंतः फसल बोने के लिये मिट्टी की ऊपरी सतह में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है अन्यथा हल्की सिंचाई करके अंतः फसल की बुआई बाद में करनी चाहिए।
4. अंतः फसली पद्धति में सिचाई अंतः फसल की आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।
5. यांत्रीकरण द्वारा वॉछित शस्य क्रियाओं को अपनाकर अन्तः फसली खेती को शत संगत व लाभदायी बनाया जा सकता है।

अंतः फसल का चयन करने से पहले बाजार की समीक्षा आवश्यक है।

गन्ना + राजमा

गन्ना + उड़द

गन्ना + मसूर

गन्ना + चना

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

गन्ना खेती में अन्तराक्षेत्रीय सम्बद्धता से जुड़े कतिपय महत्वपूर्ण पहलू

अश्विनी कुमार शर्मा एवं ब्रह्म प्रकाश
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत में लगभग 60 लाख गन्ना कृषक हैं जिनके खेत के जोतों का औसतन क्षेत्रफल 0.77 हेक्टेयर है। उपोष्ण राज्यों में उत्तर प्रदेश में ही लगभग 30 लाख गन्ना कृषक हैं तथा प्रदेश के गन्ने की जोतों का आकार महाराष्ट्र व अन्य दक्षिणी राज्यों की तुलना में अत्यन्त कम है। गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्र में गत शताब्दी के अन्त तक प्रति पाँच वर्ष में 9 प्रतिशत तक की औसत वृद्धि दर्ज की गयी है। जबकि इस नई शताब्दी के पहले दशक में गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्रफल में कोई वृद्धि दर्ज नहीं की गयी है अपितु इसमें थोड़ी कमी ही पायी गई है। कुल बोए गए क्षेत्र में गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्र का अंश अभी भी लगभग 2.5 प्रतिशत के निकट ही स्थिर है। छोटी जोत होने के कारण भारत में मंहगी उन्नत गन्ना उत्पादन प्रौद्योगिकी को अपनाने की सम्भावनाएं सीमित हैं। इसी कारण गन्ने की उत्पादन लागतें भी भारत में काफी ऊँची है। कुल लाभ में कृषकों के लाभ का अंश प्रतिवर्ष कम हो रहा है जिससे गन्ना कृषक पोपलर व मैंथा जैसी अन्य फसलों की तरफ रूख कर रहें हैं।

गन्ना फसल 12 महीने से लेकर 18 महीने तक खेत में रहती है तथा एक बार बोने से मुख्यतः इसकी दो फसलें ली जाती हैं। अतः इस प्रकार गन्ना की एक फसल लगातार दो वर्षों तक खेत में रहती है। भारत की अधिक आबादी (125 करोड़ के लगभग) होने के कारण खाद्यानों, दलहनों एवं तिलहनों की खेती करने की हमेशा प्राथमिकता रहती है। इन आवश्यकताओं को देखते हुए गन्ना की खेती के क्षेत्र में वृद्धि नहीं हो पा रही है। इस परिदृश्य से यह स्पष्ट होता है कि गन्ना खेती को उचित बढ़ावा तभी मिल पाएगा यदि गन्ने की खेती में देश की खाद्य सुरक्षा के मुद्दे को भी सम्मिलित कर उसका समाधान किया जाए। इसके अतिरिक्त, गन्ना खेती से जुड़े अन्य कई पहलू हैं जिनको गहराई से समझने की परम् आवश्यकता है। उदाहरण के तौर पर चीनी मिल में तैयार होने वाली प्रेसमड खाद खेतों में न आकर कहीं दूसरी जगह प्रयोग होती है। वर्तमान में खेती करने में श्रमिकों की उपलब्धता की कमी है इसके लिए गन्ना खेती का यंत्रीकरण करने की आवश्यकता है। अतः गन्ना खेती के अन्तर्गत मृदा स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, श्रमिक समस्या तथा यंत्रीकरण की आवश्यकता एवं सम्बद्धता को गहराई से समझने की आवश्यकता है। वर्तमान लेख में गन्ना खेती की इस अन्तराक्षेत्रीय सम्बद्धता के पहलुओं को दर्शाया गया है।

खाद्य सुरक्षा को प्रोत्साहन एवं गन्ने के साथ दलहनी फसलों की अर्न्तसस्य पद्धति में खेती

गन्ने की खेती में दूसरी फसलों को अर्न्तसस्य पद्धति में नहीं बोया जाना भी एक मुख्य समस्या है। गन्ने की बुवाई उपरान्त खेतों के 45 दिनों तक खाली पड़े रहने के कारण कुछ उच्च मूल्य वाली अन्तर्सस्य फसलें जैसे सब्जियाँ, तिलहनी व दलहनी फसलों की खेती गन्ने के साथ सफलतापूर्वक की जा सकती है जिससे गन्ने की लम्बी अवधि की फसल को खतरा कम रहता है, साथ ही किसानों को अतिरिक्त आय भी प्राप्त हो जाती है। परन्तु अधिकांश चीनी मिलें गन्ने के साथ अन्तर्सस्य पद्धति में अन्य फसलों की खेती को मुख्य फसल के पोषक तत्व लेने, यांत्रिक खेती में बाधा तथा गन्ने व चीनी की उत्पादकता प्रभावित होने के कारण प्रोत्साहित नहीं करतीं। साथ ही अधिकांश निजी क्षेत्र की चीनी मिलें राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन जैसे सरकारी कार्यक्रम जिसमें दलहन उगाना सम्मिलित है, को नहीं अपनाते। किसान भी नीलगाय के प्रकोप के कारण अन्य फसलों की सहफसली खेती कम करते हैं। यदि इस समस्या का विस्तार से अध्ययन करके कोई समाधान निकाला जाए तो गन्ने के अर्न्तगत क्षेत्र बढ़ने के साथ–साथ दलहनी फसलों के अर्न्तगत क्षेत्र में भी वृद्धि होगी तथा खाद के जैविक स्रोतों को मृदा स्वास्थ्य व गन्ने की उत्पादकता में वृद्धि करने में अधिक प्रभावी रूप से प्रयोग किया जा सकेगा।

गन्ने की यांत्रिक खेती को बढ़ावा

गन्ना एक श्रम–प्रधान फसल है जिसकी प्रति हेक्टेयर खेती हेतु 166 से 325 श्रमिक मानवदिवसों की आवश्यकता होती है तथा कुल लागत की 50 प्रतिशत से अधिक लागत मानव श्रमिकों पर ही खर्च होती है। इसकी खेती में अधिकांश क्रियाएं मानव द्वारा ही सम्पन्न होती हैं तथा मशीनरी का प्रयोग खेत की तैयारी तक ही सीमित रहता है। निराई–गुड़ाई में सबसे अधिक श्रमिकों (69–102 मानव श्रमिकों) का प्रयोग होता है इसके बाद कटाई व बुवाई में श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। गन्ने में अन्य

प्रतिस्पर्द्धात्मक फसलों की तुलना में अधिक मानव श्रमिकों की आवश्यकता होती है। मुख्य गन्ना उत्पादक राज्यों में गन्ने की खेती की कुल लागत में मशीनरी के प्रयोग की लागत का अंश, मात्र 1–5 प्रतिशत ही है। गन्ने की कटाई में कुल संयुक्त मानव श्रमिकों का लगभग 40 प्रतिशत अंश तथा कुल उत्पादन लागत का 20 प्रतिशत से अधिक खर्च होता है। गन्ने की उत्पादन लागत को कम करने हेतु गन्ने की कटाई व बुवाई क्रियाओं का यांत्रिकीकरण एकमात्र समाधान है। मानव श्रमिकों द्वारा 1.0 से 1.2 टन की कटाई के विपरीत छोटे हार्वेस्टर यंत्रों द्वारा 5.8 टन प्रतिदिन की दर से कटाई होती है। बड़े कटाई यंत्र लगभग रु. 1.5 से 2.0 करोड़ तक मंहगे हैं। उच्च लागत किसानों की क्रय शक्ति के बाहर होने के कारण तमिलनाडु व कर्नाटक की कुछ चीनी मिलों ने प्रयोग के तौर पर इन कटाई यंत्रों को खरीदकर संचालित करना आरम्भ किया है। परन्तु ये कटाई यंत्र गन्ने के टुकड़े काट कर रख देते हैं। भारत में समूचे गन्ने के कटाई यंत्रों की माँग है जो गन्ने के टुकड़े न काट दें। गन्ने की बुवाई हेतु विकसित किए गए यंत्र अभी भी किराए पर लेकर चलाए जा रहे हैं तथा उनका क्षेत्र भी अत्यन्त सीमित है। इस समस्या का निदान प्राथमिकता के आधार पर ढूँढना होगा जिससे यांत्रिक कटाई करके गन्ने में श्रमिक उपयोग तथा उत्पादन लागत में कमी लाई जा सके। इसके लिए कृषि यंत्र निर्माताओं को किराए पर उपलब्ध कराने वाले व्यक्तियों को सरकार द्वारा मंहगें यंत्रों के लिए अनुदान उपलब्ध कराना होगा। इनके रख–रखाव के लिए ग्रामीण कारीगरों को प्रशिक्षण देने की भी आवश्यकता है।

प्रेसमड तथा समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

भारत में गन्ने की फसल में गोबर की खाद का प्रयोग संस्तुत स्तर से अत्यन्त कम स्तर पर किया जाता है। वर्ष 2005–06 के इनपुट सर्वेक्षण के अनुसार गन्ने के अन्तर्गत कुल क्षेत्र के 42 प्रतिशत क्षेत्र में गोबर की खाद का प्रयोग किया गया तथा गोबर की खाद की मात्रा भी अत्यन्त कम प्रयुक्त की गयी। चीनी उद्योग का एक और उप–उत्पाद प्रेसमड में कई पोषक तत्व होते हैं जो फसल के लिए कार्बनिक खाद का एक महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हो सकता है। परन्तु इसको गन्ने की फसल में प्रयोग किए जाने की कोई विशेष योजना नहीं बनाई गयी है। चीनी मिलें इस बहुमूल्य प्रेसमड को ईंट के भटठों को बेच देती हैं तथा गन्ने की खेती में इसे खाद के रूप में प्रयोग करने को प्रोत्साहन नहीं देतीं। प्रेसमड को चीनी मिल से खेत तक पहुँचने एवं इसका सक्षम रूप में प्रयोग करने की व्यापक व्यवस्था होनी चाहिए ताकि मृदा स्वास्थ्य को अक्षुण बनाए रखा जा सके।

भारत में दलहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र कम हो रहा है। यदि गन्ने की अंतः फसल के रूप में दलहनों को प्रोत्साहित किया जाता है तो खाद्यान्न सुरक्षा की दिशा में एक अहम् कदम होने के साथ–साथ जहाँ दलहनों के अन्तर्गत क्षेत्र में वृद्धि होगी वहीं गन्ना खेती के अन्तर्गत भी क्षेत्र बढ़ने की अपार सम्भावनाएं हैं।

इस प्रकार यद्यपि गन्ने का प्राथमिक उत्पाद चीनी है परन्तु यह जैविक खाद उत्पादन के लिए भी कच्चा माल उपलब्ध कराता है। चीनी क्षेत्र में किसी संस्थागत सुधार करने के लिए गन्ना खेती के अंतराक्षेत्रीय उप–क्षेत्रों की सम्बद्धता की प्रकृति का गहन अध्ययन आवश्यक है। चीनी क्षेत्र के सतत् विकास हेतु किसानों व चीनी मिलों के सम्बन्ध अधिक मधुर व मजबूत होने चाहिए। प्रेसमड को खाद के रूप में प्रयोग करने तथा गन्ने की बुवाई व कटाई क्रियाओं का यांत्रिकीकरण करके भारत में चीनी क्षेत्र का रूपान्तरण किया जा सकता है। चीनी मिलें बुवाई व कटाई यन्त्रों को किराए पर उपलब्ध कराके भी गन्ने की खेती में यांत्रिकीकरण को बढ़ावा दे सकती हैं। इस अन्तराक्षेत्रीय समन्वय को और सुदृढ़ करने की आवश्यकता है ताकि गन्ना खेती का सतत विकास हो सके।

हिंदी की गंगा नहीं समुद्र बनाना होगा।

– आचार्य विनोबा भावे

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

ताड़ (पाम) गुड़

मीना निगम, ओम प्रकाश, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल, वरूचा मिश्रा एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सदियों से मनुष्य अपनी मिठास की पिपासा के लिए पेड़ों को खोजता रहा है। सामान्य स्रोत जैसे–गन्ना, चुकन्दर और मेपल शुगर से उत्पादित शर्करा से सभी भली–भाँति परिचित हैं। कच्चे माल की उपलब्धता, तकनीकी जानकारी के अभाव के कारण कुछ पौधे कम जाने जाते हैं, लेकिन फिर भी शर्करा का स्रोत होने के कारण उपयोग में हैं। इन्हीं स्रोतों में एक है पाम या ताड़। ये पौधे पाल्मी कुल से सम्बन्धित हैं। पाम (ताड़) से ताड़ी, गुड़ व सीरप बनाया जाता है। ताड़ के पौधे से अनेक उपयोगी सामग्री जैसे भोजन, आश्रय, वस्त्र, लकड़ी, ईंधन, तेल, मोम, रंजक पदार्थ, आदि भी प्राप्त होते हैं। इनके पुष्पक्रम से प्राप्त होने वाले रस को नीरा, स्वीट टॉड़ी या पाम नेक्टर भी कहते हैं। इसमें सुक्रोज की मात्रा 12–17 प्रतिशत तक होती है। यह एक शुद्ध, पारदर्शी मीठा खुशबूदार ताजगी भरा पेय है। नीरा सामान्य तापमान पर प्राकृतिक किण्वन के लिए संवेदनशील है। किण्वन के बाद यह नीरा ताड़ी में परिवर्तित हो जाता है।

एकत्र किया गया नीरा

नीरा में कार्बोहाईड्रेट, मुख्यतः सुक्रोज काफी मात्रा में होता है और इसका पी.एच. मान लगभग उदासीन होता है। इसका रासायनिक संघटन कई कारकों पर निर्भर करता है जैसे स्थान, पाम का प्रकार, इसके एकत्र करने की विधि तथा मौसम आदि। इसका सामान्य संघटन निम्नवत् है :

सारणी–1: नीरा का सामान्य रासायनिक संघटन

तत्व	मात्रा (ग्राम/100 मि.ली.)
सुक्रोज	12.3–17.4
प्रोटीन	0.23–0.32
एस्कार्बिक अम्ल	0.016–0.03
कुल राख	0.11–0.41
कुल ठोस	15.2–19.7

इसके रस का उपयोग गुड़ बनाने के लिए भी होता है। गुड़ बनाने के लिए रस को उबाला एवं गाढ़ा किया जाता है। यह एक गहरी रंगत का ठोस पदार्थ है जिसमें एक विशेष सुगन्ध होती है। नीरा के किण्वन तदोपरांत आसवन द्वारा एक एल्कोहलयुक्त पेय बनता है जिसे अर्क के नाम से जाना जाता है और यह पाम मदिरा भी कहलाता है। एसिटिक किण्वन होने पर ताड़ी से सिरका (विनेगर) बनता है।

ताड़ की 2600 से ज्यादा प्रजातियाँ आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। गुड़ उत्पादन में प्रयोग किए जाने वाले पाम में मुख्यतः पाल्मॉमीरा पाम, जंगली डेट पाम, सागोपाम, कोकोनट पाम आदि हैं।

रस एकत्र करना/निकालना

गुड़ उत्पादन की क्रिया की सर्वप्रथम आवश्यकता है पौधें से रस निकालने की उचित प्रक्रिया, जिसके द्वारा पौधों से उनकी जैविक क्षमता से ज्यादा रस न निकाला जाए ताकि लम्बी अवधि तक उस पौधे से रस निकाला जा सके। पौधों से रस निकालने की क्रिया मूलतः सभी ताड़ के पौधों में लगभग समान ही होती है। निकालने का समय तथा पौधे का भाग जिसका उपयोग रस निकालने के लिए किया जा रहा है के अनुसार थोड़ा बहुत बदलाव होता है।

रस का संरक्षण एक कठिन कार्य है। गुड़ बनाने के लिए नीरा प्रायः रात में या सूर्योदय के समय एकत्र करते हैं जब वातावरण का तापमान अपेक्षाकृत कम होता है। रस एकत्र करने के लिए साफ बर्तनों (प्रायः मिट्टी के बर्तनों) का प्रयोग किया जाता है। यह बर्तन पहले गरम करके या धुँआ करके संक्रमण रहित किए जाते हैं। कभी–कभी बर्तनों में चूने का घोल पोत दिया जाता है। इन सभी सावधानियों के बावजूद भी ताजे रस को 10–12 घण्टे तक ही संरक्षित रखा जा सकता है।

ताड़ के पुष्पक्रम को चीरा लगाकर स्रावित द्रव से नीरा प्राप्त किया जाता है। खजूर के वृक्ष में तने में चीरा (जीरन काट, माझेर काट, झारा काट) लगाकर स्रावित द्रव प्राप्त करते हैं। इससे एक विशिष्ट गंधयुक्त उत्तम श्रेणी का गुड़ प्राप्त होता है।

रस से गुड़ बनाने की प्रक्रिया

गुड़ बनाने में अब पारम्परिक मिट्टी के बर्तनों के स्थान पर गैल्वेनाइस्ड आयरन के बड़े कड़ाह का तथा ईंधन की खपत को नियंत्रित करने के लिए उन्नत भट्टियों का प्रयोग होता है। एकत्रित नीरा को पहले महीन कपड़े या तार की जाली से छाना जाता है। उबालने वाले कड़ाह पर किसी वानस्पतिक तेल को चुपड़कर हल्का गरम करते हैं। कड़ाह में तेल लगाने से रस उबालते समय किनारों पर रस जलता नहीं है। अब इस कड़ाह में छने हुए रस को डाला जाता है और थोड़ा गरम किया जाता है। इस समय रस का पी. एच. मान 7 पर लाने के लिए इसमें थोड़ी मात्रा में सुपर फॉस्फेट डालते हैं, इससे अतिरिक्त चूने (जो बर्तन में संरक्षण हेतु लगाया जाता है) का अवक्षेपण हो जाता है। रस को 70° सें. तक गरम करने के बाद मोटे सूती कपड़े से छाना जाता है। छने हुए रस को कड़ाह में फिर उबाला जाता है। उबलने के साथ ही झाग सतह पर आने लगता है जिसे करछुल से हटाया जाता है। तीव्र

रस एकत्र करने की प्रक्रिया

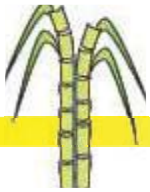

वाष्पीकरण करने के लिए रस को बार–बार चलाया जाता है। जब रस गाढ़ा होने लगता है तो आँच को धीमा कर दिया जाता है और रस गुड़ बनाने की अवस्था तक पहुँच जाता है इसका परीक्षण किया जाता है। परीक्षण के लिए इस गाढ़े पदार्थ की कुछ बूँदें ठण्डे पानी के कप में रखते हैं। गाढ़ेपन की उचित स्थिति होने पर यह उँगलियों के बीच रगड़ने पर ठोस हो जाता है। अब इस गाढ़े रस को धातु या लकड़ी के साँचों में डालकर जमने के लिए छोड़ दिया जाता है।

पाम गुड़

इस तरह बना गुड़ सख्त, केलासीय तथा सुनहरे पीले रंग का होता है। इसका स्वाद काफी अच्छा होता है। यह गुड़ गन्ने से बने गुड़ से अपेक्षाकृत उत्तम माना जाता है।

सारणी–2: पाम गुड़ का पोषक संघटन

घटक	मात्रा
नमी प्रतिशत	1.19
प्रोटीन प्रतिशत	0.35
वसा प्रतिशत (ईथर एक्ट्रेक्शन विधि से)	0.17
लवण प्रतिशत	0.74
कार्बोहाईड्रेट प्रतिशत	90.60
कैल्शियम प्रतिशत	0.06
फॉस्फोरस प्रतिशत	0.06
आयरन मिग्रा. / ग्रा.	2.5
निकोटिनिक अम्ल (मिग्रा. / 100 ग्रा.)	5.24
राइबोफ्लेविन (मिग्रा. / 100 ग्रा.)	432.0
विटामिन (मिग्रा. / 100 ग्रा.)	11.0
कैलोरिफिक वैल्यू / 100 ग्रा.	365.0

झोला गुड़

बादलों के मौसम में ठोस गुड़ बनाना सम्भव न होने पर रात में एकत्र किए गए रस से जो गुड़ बनता है उसे झोला गुड़ कहते हैं। इसको बनाने के लिए रस को ठोस गुड़ बनाने की प्रक्रिया की भाँति ही उबालते हैं लेकिन ठोस गुड़ बनाने की सीमा तक गाढ़ा नहीं करते हैं। इस कम गाढ़े रस को मिट्टी के बर्तनों में केलासन के लिए रख दिया जाता है।

ताल मिसरी या पाम कैंडी

रस को उसी तरह उबाला जाता है लेकिन गुड़ बनाने की सान्द्रता तक गाढ़ा नहीं किया जाता हे। इस सीरप को ढक्कनदार बर्तनों में भरकर कुछ महीनों के लिए मिट्टी में दबा दिया जाता है और इस समय में उसमें कैंडी क्रिस्टल बन जाते है। इसे ताल मिसरी कहते हैं।

पाम गुड़ का भण्डारण

यद्यपि पाम नीरा का सूक्ष्मजीवों से संरक्षण एक कठिन प्रक्रिया है परन्तु एक बार गुड़ बन जाने के बाद अगर इसे सूखी व हवादार जगह पर रखा जाता है तो यह काफी समय तक संरक्षित रहता है। भण्डारण के लिए उपयुक्त स्थितियाँ न होने पर इसमें मोल्ड्स (एक किस्म की फफूँदी) उग आते हैं।

पाम गुड़ की माँग ज्यादा और उत्पादन कम होने के कारण इसका मूल्य बाजार में गन्ने से बने गुड़ से अपेक्षाकृत ज्यादा होता है। उत्पादन की तकनीकी में सुधार जैसे टैपिंग प्रक्रिया, रस का संरक्षण, रस बनाने की प्रक्रिया तथा ज्यादा लम्बे समय तक रस उत्पादन करने वाली प्रजातियों का विकास करके पाम गुड़ उत्पादन को ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त आय के सतत् स्रोत के रूप में विकसित किया जा सकता है।

पाम गुड़ के उपयोग

पाम गुड़ बनाने के प्रक्रिया में ज्यादा रसायनों का प्रयोग न होने से इसमें उपस्थित प्राकृतिक खनिज लवण विद्यमान रहते हैं। पाम गुड़ में अनेक पोषक एवं औषधीय गुण होते हैं। यह विटामिन–बी कॉम्प्लेक्स तथा एस्कार्बिक अम्ल का अच्छा स्रोत है। इसमें मैग्नीशियम और पोटैशियम जैसे आवश्यक खनिज होते हैं। पोटैशियम रक्त चाप व हृदय तंत्र को नियंत्रित करता है। पाम गुड़ कफ तथा पेट की परेशानियों को दूर करने में भी लाभदायक है। यह मानव शरीर के शोधक के रूप में कार्य करता है और श्वास नली, भोजन नली, फेफड़े, पेट तथा आँतों को प्रभावी ढंग से शोधित करता है। पर्याप्त मात्रा में आयरन होने के कारण यह रक्त में हीमोग्लोबिन के स्तर को बढ़ाता है। खजूर के रस से प्राप्त गुड़ को बंगाली मिठाई (सोंदेश) बनाने में प्रयोग होता है। इसका प्रयोग अनेकों मीठे व्यंजन बनाने में होता है।

सारणी–3: पाम गुड़ एवं गन्ने के गुड़ का संघटन

गुण	पाम गुड़				गन्ने से
	पालमायरा	डेट पाम	कोकोनट पाम	सागो पाम	बना गुड़
नमी प्रतिशत	8.61	9.16	10.32	9.16	6.94
सुक्रोज प्रतिशत	76.86	72.01	71.89	84.31	69.43
प्रहासन (रिड्यूसिंग) शर्करा प्रतिशत	1.66	1.48	3.70	0.53	21.18
वसा प्रतिशत	0.19	0.26	0.15	0.11	0.05
प्रोटीन प्रतिशत	1.04	1.46	0.96	2.28	0.25
लवण प्रतिशत	3.15	2.60	5.04	3.66	1.00
कैल्शियम प्रतिशत (कैल्शियम ऑक्साइड)	0.861	0.363	1.638	1.352	0.400
फॉस्फोरस प्रतिशत (फॉस्फोरस पेंटाऑक्साइड)	0.052	0.52	0.062	1.372	0.045

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मीठी ज्वार उगाओ, भरपूर लाभ पाओ

राघवेन्द्र कुमार, ए. डी. पाठक एवं संगीता श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत जैसे विकासशील देश में गन्ना फसल के साथ मीठी ज्वार या स्वीट् सौरघम उगाना अत्यन्त लाभदायक होता है। इसका वैज्ञानिक नाम *सौरघम बाइकलर* है। विश्व में यह पांचवे सबसे प्रमुख अनाज फसल जैसे धान, मक्का, गेहूं तथा जौ के बाद उगाया जाता है, और दक्षिण भारत के अनेक सूखा प्रभावित, क्षारीय तथा जल प्लावित क्षेत्रों में यह फसल एक स्मार्ट फसल के रूप में सामने आई है जिससे खाद्यान्न तथा जैव ईंधन दोनों एक साथ मिलते हैं।

इसके पौधे बीज द्वारा खेतों में उगाये जाते हैं और इसके तने आकार में गन्ने की तरह 2 से 4 मीटर लम्बे होते हैं। इनका उपयोग शर्करा युक्त रस प्राप्ति के लिए होता है। इसे वर्ष में दो से तीन बार उगाया जाता है, साथ ही इसमें सिंचाई और कृषि लागत अन्य फसलों की तुलना में कम होती हैं। यह फसल विशेष रूप से जैव इथनॉल उत्पादन के क्षेत्र में व्यवसायिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह सर्वविदित है कि इथनॉल को व्यवसायिक रूप से पेट्रोल के साथ मिलाकर वाहनों के लिए ईंधन के रूप में गैसोहॉल के नाम से जाना जाता है। इसके रस से प्राप्त इथनॉल के जलने से उच्च गुणवत्ता वाला ऑक्टेन मिलता है जो वाहनों के इंजन के लिए अत्यन्त लाभकारी होता है। साथ ही मीठी ज्वार के तने से प्राप्त रस से विभिन्न प्रकार के शर्करा युक्त गुड़–ज्वार आधारित पेय पदार्थ बनाये जाते हैं जो देश–विदेश में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इसके रस निष्कासन के बाद, बचे हुए अवशेष जानवरों के चारे के काम में आते हैं। इसके अवशेष को कहीं कहीं घरेलू ईंधन के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इसके दाने जो देखने में बिल्कुल ज्वार की तरह होते हैं, अनाज के रूप में काम में आते हैं।

मीठी ज्वार के विविध जीव–द्रव्य बीज जो अखिल भारतीय मीठी ज्वार सुधार प्रोजेक्ट के अंतर्गत भाकृअनुप–मीठी ज्वार निदेशालय, हैदराबाद के सौजन्य से प्राप्त हुए थे, उन्हें लखनऊ स्थित भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान के फसल सुधार विभाग में वर्ष 2012–2013 के खरीफ मौसम में परीक्षण हेतु खेत में उगाया गया था।

प्रक्षेत्र परीक्षण के दौरान मीठी ज्वार के 23 जीव–द्रव्य बीज को निर्धारित मापदण्ड रेन्डोमाईज्ड ब्लॉक डिजाइन में त्रिस्तरीय क्रम में समायोजित करके उगाया गया था। प्रत्येक प्लाट के आकार का क्षेत्रफल 15 वर्ग मीटर था जिसे 5 मीटर की चार नालियो में निर्धारित किया गया। नालियों के बीच की दूरी 75 सेमी. जबकि पौधों से पौधों तक की दूरी 15 सेमी. थी। बीज की बुवाई के उपरान्त मानक के अनुकूल सभी प्रकार की शस्य क्रियाएं प्रदान की गयीं जो मीठी ज्वार की फसल के लिए जरूरी थी। तने के भरपूर विकास के उपरांत प्रत्येक जीव–द्रव्य के रस का शर्करा परीक्षण, संस्थान के जूस क्वालिटी प्रयोगशाला में 2 बार किया गया। इस प्रकार कुल 23 जीव–द्रव्य की वार्षिक रिर्पोट हैदराबाद को प्रेषित की गई। यह शर्करा परीक्षण दो बार फूलों में दाना भरने के समय (अक्टूबर माह) तथा दाना के परिवक्वता अवधि के उपरान्त (दिसम्बर माह) किया गया। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्लाट में पौधों की संख्या, तनों का कुल वजन तथा तने से रस निष्कासन प्रतिशत भी दर्ज किया गया। इस परीक्षण को फसल वर्ष 2013–2014 में भी दोहराया गया था। इसके आधार पर, उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र के लिए अनुकूल मीठी ज्वार के जीव–द्रव्य को चिन्हित किया गया।

मीठी ज्वार के खेत का दृश्य

इस शोध कार्य के परिणाम अत्यन्त ही आशाजनक हैं जो मीठी ज्वार के उन्नत किस्म निर्माण प्रक्रिया में कृषकों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। जीवाश्म जनित ईंधन पर निर्भरता, मौसम परिवर्तन सम्बन्धित समस्याएं तथा जल संकट के दौर में भारत जैसे विकासशील देश में शर्करा, तथा जैव आधारित ईंधन के स्रोत के रूप में मीठी ज्वार एक महत्वपूर्ण फसल के रूप में सामने आई है। अतः कृषकों को गन्ना तथा चुकन्दर के अलावा शर्करा फसलों के अन्य विकल्पों को अपनाने में परहेज नहीं करना चाहिए।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

गन्ना उत्पादक देशों में मृदा की समस्याएँ और उनका गन्ने की उत्पादकता पर प्रभाव

वरूचा मिश्रा, सोमेन्द्र शुक्ल, अनीता सावनानी एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

मृदा, पौधों के लिए एक प्राकृतिक स्थान है जो पौधे के विकास में कई प्रकार से लाभ प्रदान करती है जैसे यह पानी और पोषक तत्वों को पौधे को उपलब्ध कराते हैं। इसमें सूक्ष्म जीव भी पाए जाते हैं जोकि पौधे की वृद्धि के लिए फायदेमंद होते हैं। मृदा का प्रबंधन, पौधों की वृद्धि के लिए माध्यम एवं उर्वरक प्रयोग और सिंचाई यह सभी इष्टतम फसल की उत्पादकता को साकार करने के लिए महत्वपूर्ण है।

विभिन्न गन्ना उत्पादक देशों में मृदा की समस्याएँ

गन्ना उत्पादक देशों में होने वाली कुछ महत्वपूर्ण सम्बन्धित समस्याओं को सिम्थ (1978) ने अपनी अनूठी पुस्तक दी केन शुगर वर्ल्ड में उल्लेख किया है। फ्लोरिडा में मक मृदा में सामंजस्य की कमी होने से गन्ने की फसल अतिसंवेदनशील होती है। इस प्रकार की गन्ने की फसल को तेज हवा और तूफान से गन्ने की फसल को काफी नुकसान होता है। अर्थात् उसमें उप रूटिंग हो जाती है। फास्फोरस और पोटैशियम की मात्रा में हवाईन मृदा में कम होती है। यहां की भारी मृदा की तुलना में हल्की मृदा में ऑरगैनिक कार्बन की मात्रा अत्यधिक होती है जिसके कारण अपक्षरण के समय इस प्रकार की मृदा फसल की वृद्धि को प्रभावित करता है।

लुइसियाना में, आमतौर पर नदियों के दोनों किनारों से 1 से 4 मील की दूरी पर दलदली मृदा पाई जाती है जिससे पानी की निकासी में समस्या उत्पन्न होती है। इस क्षेत्र में गन्ना उत्पादन भी प्रभावित होता है। प्यूर्टोरिको में कई तटीय और समतल घाटी की मृदा में आंतरिक जल निकासी की समस्या होती है जो गन्ने की पैदावार को प्रभावित करता है।

पेरू में मृदा गन्ने की विकास के लिए अनुकूल है। नदी सिंचित क्षेत्र में वहां लवणता समस्याएं है। हांलाकि गन्ने की उत्पादकता में कुंओं से लिया गया पानी लवणता की मात्रा को बढ़ाता है जिसकी वजह से गन्ने की पैदावार में कमी आती है। वेनेज्जुला में काडीलेरा दी मेरिडा पर्वत के दक्षिण की ओर की मिट्टी बहुत भारी है जिसमें आंतरिक जल निकासी की समस्या होती है जो नम मौसम में रोपण और जुताई को प्रभावित करती है। यहां के कुछ गन्ना उत्पादन क्षेत्रों में खारी (लवणीय) मृदा भी है। पंजाब, सिंध, प्रान्तों में और पाकिस्तान में अपेक्षाकृत कम वर्षा के स्थानों पर मृदा क्षारीय है। बांग्लादेश में पाई जाने वाली मृदा काली एवं भारी मृत्तिकावत है और वहां की मृदा में जल की निकासी की समस्या है। वहां की मृदा में फास्फोरस की मात्रा में भी कमी है।

चीन में कुछ गन्ना उत्पादन क्षेत्रों में जल निकासी की समस्या है। ताइवान में तीन प्रकार की भूमि फसलों को उगाने में प्रयोग की जाती है जोकि इस प्रकार है–ज्वार भूमि, समुद्री तट के पास की भूमि, नदी के पास की भूमि, नदी के ताल के पास की भूमि और ढलानों के पास की भूमि। इस देश में किसी भी फसल को बोने से पहले व्यापक भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाया जाता है।

जापान में द्वीपों पर रोलिंग और पहाड़ी क्षेत्रों की भूमि को गन्ने की खेती के लिए प्रयोग किया जाता है। यहां की मृदा की उर्वरता काफी कम है तथा अत्यधिक अम्लीय है, तथा यहां पी.एच. मान को बढ़ाने के लिए इसमें समय–समय पर चूने की आवश्यकता पड़ती है। ओकिनावा, की ज्यादातर मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता सीमित या कम होती है।

ईरान में मृदा आमतौर पर खारी होती है परंतु कुछ स्थानों की अत्यधिक खारी और क्षारीय है। कुछ क्षेत्रों में गन्ने को लगाने से मृदा को लीचिंग प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है जिससे क्षारीयता कम हो जाती है।

दक्षिण अफ्रीका की मृदा ज्यादातर अम्लीय (पी.एच. 4.5–6.0) है। निचले क्षेत्रों में आंतरिक जल निकासी भी एक समस्या है। ढलानों पर उगने वाला गन्ने की खेती करने से पूर्व मृदा को प्रबंधन की आवश्यकता होती है; क्योंकि यह जुताई और फसल प्रबंधन कटाई आदि को प्रभावित करता है।

आस्ट्रेलिया में गन्ने की खेती के लिए प्रयुक्त ढलानों पर व्यापक भूमि संरक्षण विधाओं को अपनाने से उर्वरकता की हानि में कमी होती है।

मॉरीशस में चट्टानी क्षेत्र है जोकि गन्ना बोने के समय की जाने वाली भूमि की तैयारियों को प्रभावित करती है। इसके अलावा और भी कार्य जो भूमि को तैयार करने के लिए मशीनों से किए जाते है उनको भी प्रभावित करती है। यहां डी रांकिग और भूमि ग्रेडिंग (भूमि से पत्थर निकालना) की प्रक्रिया की मशीनीकरण के द्वारा किया जाता है।

अविभाजित उत्तर प्रदेश की मुख्य मृदा की समस्या इस प्रकार है लवणीय और क्षारीय मृदा, उथले और जरूरत से ज्यादा पारगम्य मृदा और जल भराव मृदा। अधिकतम क्षारीय और खारी भूमि जलोढ़ पथ में स्थित है और इसका क्षेत्र लगभग 1.28 मीटर हेक्टेयर है।

बुरी तरह से प्रभावित जिले निम्न प्रकार है– अलीगढ़,

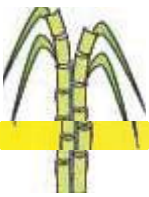

इलाहाबाद, एटावा, फर्रूखाबाद, फतेहपुर, हरदोई, कानपुर, लखनऊ, मैनपुरी, प्रतापगढ़, रायबरेली और उन्नाव भामिल है। राज्य के उप आर्द्र भागों में मृदा का एक खण्ड है। आजमगढ़ के जिलों में बलिया के पश्चिमी भागों, गाजीपुर और वाराणसी, भदोई तहसील के उत्तरी भाग। लगातार धान की खेती इस स्थिति के विकास के लिए प्रेरित करती है।

मृदा से प्रभावित गन्ना और चीनी की उत्पादकता

मृदा के संबंध में गन्ने की उत्पादकता

मृदा अपनी भौतिक यांत्रिक और हाइड्रोलिक गुणों के कारण भिन्न होती है जो गन्ने की उपज की क्षमता को प्रभावित करती है। भारत के विभिन्न भागों की कई प्रकारों की मृदा गन्ने की उत्पादकता को प्रभावित करती हैं (तालिका 1)। गन्ने की कृषि–परिस्थिति पर किए जाने वाले इस मृदा जल वायु अध्ययन के डाटा को 43 गन्ना क्षेत्रों से तैयार किया गया है। अधिकतम क्षेत्र (44.5 प्रतिशत) और उत्पादन (33.3 प्रतिशत) हाल ही में बनी जलोढ़ मिट्टी से आया है। यदपि औसत उत्पादकता (109.8 टन / हेक्टेयर) तटीय बलुई मृदा में सबसे अधिक था। इन स्थानों पर गन्ने की अधिक पैदावार के साथ साथ उच्च पैन वाष्पी करण और बायो–मास उत्पादकता भी अधिक पायी गयी थी। उच्चतम (1894.5 मि.मी.) और सबसे कम (867.0 मि.मी.) पानी की सिंचाई की जरूरतों को क्रमशरू जोन तृतीय (उच्च उपज, कम वृद्धि) और जोन वी (उच्च उपज के लिए माध्यम, उच्च प्रसार के माध्यम) में दर्ज किया गया था।

कोयंबटूर में जल्दी पकने वाली और उच्चतम चीनी देनी वाली किस्म (CoC 671) पर विभिन्न प्रकार की मृदाओं के असर के अध्यन्न से यह पता चला है कि फ्लुवेंटिक उस्ट्रोपेप्ट्स (98.84) > उदिक रहोदुस्टाल्फ्स (93.90) > टिपिक उस्ट्रोपेप्ट्स (86.50) > उल्टिक हप्लुस्तल्फ्स (74.13) > टिपिक क्रोमुस्तेर्स (69.20) > वर्तिक हप्लुस्तल्फ्स (61.77) > वर्तिक उस्ट्रोपेप्ट्स (54.36) > लिथिक उस्तरोथेंट्स (49.42) के दौरान उपज क्षमता का संकेत देते हैं।

सारणी 1: भारत में मृदा के संबंध में गन्ने की उत्पादकता

क्र. सं.	मृदा के प्रकार	प्रतिशत गन्ने का क्षेत्रफल	गन्ने की उपज : टन/हेक्टेयर	प्रतिशत गन्ने की उत्पादकता
	गन्ने की उपज > ओसत उपज 62.25 टन/हेक्टेयर			
i.	कैल्शियम युक्त सीएरोजोमिक	3.19	50.13	2.57
ii.	लाल और पीले रंग की मृदा	2.55	50.65	2.07
iii.	कैलि ायम युक्त मृदा	0.59	51.20	0.46
iv.	अल्लुवियल रिसेंट	44.50	53.52	38.30
v.	तराई मृदा	4.70	54.41	4.11
vi.	ब्राउन हिल मृदा	4.28	56.18	3.85
	गन्ने की उपज + ओसत उपज 20 %			
vii.	उथली काली मृदा	1.77	66.12	1.88
viii.	लाल दोमट मृदा	5.89	69.11	6.52
ix.	गहरे काले मृदा	5.06	69.39	5.56
x.	मध्यम काली मृदा	9.04	70.96	10.30
xi.	मिश्रित लाल और काली मृदा	1.42	75.57	1.73
	गन्ने की उपज > ओसत उपज + 20 %			
xii.	लेटराइट मृदा	1.63	80.91	2.12
xiii.	डेल्टीय जलोढ़ मृदा	0.86	82.31	1.13
xiv.	तटीय जलोढ मृदा	1.03	84.91	1.47
xv.	लल रेतेली मृदा	12.72	81.29	16.60
xvi.	तटीय दोमट मृदा	0.73	109.80	1.33

गन्ने के किल्ले संरचनात्मक और कार्यात्मक इकाइयां हैं जो न केवल यांत्रिक समर्थन गन्ने को प्रदान करती है बल्कि चीनी का भंडारण भी करती है। इसके अतिरिक्त टिल्लेरिंग गन्ने में शाखाओं के विशेष विधा को दर्शाता है। मृदा की विशेषताएँ जैसे उसकी बनावट, संघनन, रोपण की गहराई और जुताई का संचालन,यह सभी टिल्लेरिंग को प्रभावित करते हैं। बलुई मृदा में मृत्तिकावत् मृदा की तुलना में गन्ने की अंकुरण की प्रक्रिया अधिक तेजी से होती है। बलुई मृदा की तुलना में, मृत्तिकावत् मृदा में प्रारम्भिक चरण में टिल्लेरिंग अधिक पायी गयी है। दक्षिण अफ्रीका में, हल्की बनावट वाली फेरीसाल और गहरी भारी बनावट वाली अल्लुवियम मृदा पर उगाई गयी गन्ने की फसल और पेरी से उत्पन्न फसल पर एक अध्यन्न में यह पाया गया कि औसतन डंठल की संख्या प्रति इकाई क्षेत्र में हल्की बनावटी मृदा (14.3 मी.–2) की तुलना में भारी बनावटी मृदा (16.3 मी.–2) में अधिक पायी गयी।

मृदा संघनन, फसल की वृद्धि और उसके विकास पर गहरा प्रभाव डालती है। संघनन का उच्च स्तर (1.7 ग्रा. सेंमी.) टिलर उत्पादन, उत्पादक टिलर की संख्या और मिलेबल गन्ने की संख्या को प्रभावित करती है।

खरपतवार नियंत्रण

स्टींगा हरमोनीथीक, एक वार्षिक खरपतवार है जो गन्ने की जड़ों पर परजीवी रूप में होते हैं। इस खरपतवार का गंभीर संक्रमण गन्ने की प्रजातियों में अनेक प्रकार के लक्षण लाता है जैसे जली पत्तियां, छोटी और नुकीलीदार पत्तियां का विकास, टिलर की मृत्यु, हवाई जड़े बनना। इसका संक्रमण उपजाऊ मृदा में कम होता है। हांलाकि फास्फोरस (65 किग्रा.) का प्रयोग इस खरपतवार के संक्रमण को अधिक प्रभावित नहीं करता परन्तु गन्ने की प्रजाति Co 421 पर इस खरपतवार का प्रभाव फास्फोरस के प्रयोग से कम पाया गया।

रस की गुणवत्ता

गन्ने की फसल के लिए लाभदायक मृदा, गन्ने के विकास और उसकी गुणवत्ता को प्रभावित करती है। बोनेम, 1884 ने यह पाया कि जो गन्ना कैल्शियम युक्त मृदा पर उगाया गया उसका रस उस गन्ने से ज्यादा मीठा है जो चिकनी मृदा पर उगाया गया जबकि चिकनी मृदा में हूमस की मात्रा दूसरी मृदा की तुलना में अधिक होती है। मारिशस में यह दर्ज किया गया कि वह गन्ना ज्यादा मीठा होता है जो कैल्शियम युक्त मृदा पर उगाया जाता है। निचले क्षेत्रों पर उगाई गई फसल देर में पकती है और इस फसल को बाढ़ से प्रभावित होने का खतरा अधिक होता है। इसी कारणवश इस फसल की कटाई देर से की जाती है। गन्ने का रस लेटाराइट और अम्लीय मृदा पर उगाए गए गन्ने से प्राप्त किया गया उसमें सिलिका की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है जो अवसादन, निस्पंदन और चीनी की परिष्कृत गुणवत्ता को प्रभावित करती है। जो गन्ना चूने पत्थर वाली मृदा में उगाया जाता है उसके रस में उच्च शुद्धता पाई गई जबकि सिलीकैशियस और उच्च नमकीन मृदा पर उगाए गए गन्ने से प्राप्त रस में उच्च मेलासीजेनिक पाए गए।

रियनोसो 1921 ने यह पाया कि कैल्शियम युक्त मृदा पर उगाया गया गन्ना उसमें औरों की तुलना में अधिक सैक्रीफेरस गन्ने उत्पन्न हुए। सैलाबी मृदा में, क्षारीय मृदा में गन्ने जो उत्पन्न हुए हांलाकि वो दिखने में ठीक होते हैं परंतु उनके रस की गुणवत्ता बहुत खराब होती है जिसके कारण रस के प्रसंस्करण में कठिनाई आती है और उसमें अधिक सीरा होता है। अम्लीय मृदा की तुलना में क्षारीय मृदा में उत्पन्न गन्ने में बेहतर सुक्रोज की मात्रा पाई गई। प्यूर्टो रिको में लूगो लापेज 1954 ने यह दर्ज किया कि जो फसल खराब रिसाव वाली मृदा में उगाई जाती है उसमें सुक्रोज की मात्रा कम होती है उन फसल की तुलना में जो सामान्य मृदा में उगाई जाती है। पंजाब की तुलना में, गुड़ की वसूली उत्तर प्रदेश में बेहतर होती है क्योंकि यहां की मृदा का पी. एच. अपेक्षाकृत अधिक होता है और इसमें अधिक विनिमय कैल्शियम आयंस होते है जो फलस्वरूप बेहतर मृदा की बनावट और उसकी निकासी के कारण है। हल्की मृदा पर उगाया गया गन्ना भारी मृदा की तुलना में, उसमें अधिक मात्रा में रस पाया जाता है। मृदा में अधिक नमक की मात्रा गन्ने के रस की गुणवत्ता को कम करती है। प्यूर्टोरिको में एक गन्ने की किस्म ऊबा में अम्लीय मृदा की तुलना में क्षारीय मृदा में उगाई गई इस किस्म में बेहतर सुक्रोज की मात्रा और शुद्धता पाई गई।

जगादरी (पंजाब) बांगड़ क्षेत्रों की तुलना में फसल का परिपक्वन खादर क्षेत्रों में शीघ्र हो जाती है। देर से पकने वाली किस्मों में खद्दर क्षेत्र में CoS 321, Co 617 और CoS 225 और बगाड़ क्षेत्र में CoL 29, Co 646 और बै 245 ने बेहतर प्रदर्शन किया। हल्की मृदा की तुलना में, भारी मृत्तिकावत मृदा से उत्पन्न गन्ना हमेशा जल्दी पकते है और इनमें अधिक चीनी की मात्रा होती है।

उत्तर प्रदेश में किए गए अध्ययन से यह पाया गया कि भारी मृदा की तुलना में हल्की मृदा में गन्ने की पैदावार अधिक होती है जबकि रस की गुणवत्ता पर इसका विपरीत असर पड़ता है। रूद्रपुर आन्ध्र प्रदेश में किए गए 8 किस्म के गन्नों की रस की गुणवत्ता के अध्ययन में यह पाया गया कि अदसली फसल जो चलका और रेगुर मृदा पर उगाई गई उसमें अक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर के दौरान Co 744, Co 740, Co 775 में सुक्रोज की मात्रा अधिकतम है। जबकि इसी दौरान रेगुर मृदा में Co 740, Co 775 और Co 878 में अधिकतम सुक्रोज की मात्रा रस में दर्ज की गई (तालिका 2)।

गन्ने पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना की रिपोर्ट (तालिका 3) ने यह दर्शाया है कि मृदा की किस्म गन्ने और चीनी की पैदावार को प्रभावित करती है। फिलीपींस में किए गए अध्ययनों ने भी यह दर्शाया कि मृदा की किस्म और उर्वरक का

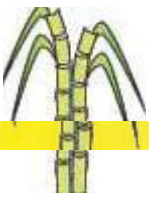

सारणी 2: निजाम चीनी मिल (आंध्र प्रदेश) में गन्ने की उपज, व्यवसायिक चीनी परता (%) और व्यवसायिक चीनी परता (टन/हे.) में चलका (रेतेली दोमट) और रेगुर (चिकनी दोमट) मृदा पर होने वाली अदसली फसल पर प्रभाव

गन्ने की किस्मे	चलका मृदा			रेगुर मृदा		
	गन्ने की उपज (टन/हेक्टेयर)	व्यवसायिक चीनी परता (%)	व्यवसायिक चीनी परता (टन/हेक्टेयर)	गन्ने की उपज (टन/हेक्टेयर)	व्यवसायिक चीनी परता (%)	व्यवसायिक चीनी परता (टन/हेक्टेयर)
को. 4119	116.24	12.88	14.97	208.26	10.59	22.04
को. 527	116.68	13.21	15.42	217.82	12.35	26.91
को. 740	142.72	13.34	19.05	935.34	8.99	21.15
को. 744	119.03	14.40	17.15	247.17	9.90	24.61
को. 775	147.12	14.81	21.79	231.24	12.63	29.21
को. 799	147.86	14.81	19.67	182.71	9.36	17.10
को. 875	147.00	13.62	20.02	192.57	13.07	25.11
SEM±	8.65			21.25		
CD (5% p)	21.50					

सारणी 3: विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में अलग मिट्टी में कुछ गन्ने की किस्मों का प्रदर्शन

मृदा के प्रकार ⟶	केन्द्रीय प्रायद्वीपीय	काली कपास मृदा पूर्वीतट	लाल दोमट मृदा ऊपरी प्रायद्वीपीय	रेतीली मृदा पूर्वीतट
क्षेत्र ⟶				
स्थान ⟶	कोयम्बटूर (तमिलनाडु)	तनुका (आंध्र प्रदेश)	समीर्वाती (कर्नाटक)	मुंडियम–पक्कम (तमिलनाडु)
को.क. 671 गन्ने का क्षेत्रफल (टन/हे.)	124.34	18.12	81.20	12.65
रस में सुक्रोज प्रतिशत की मात्रा	87.60	17.72	60.99	14.00
व्यवसायिक चीनी परता (टन/हे.)	14.62	6.81	10.04	5.76
औसत गन्ने का वनज (किलोग्राम)	1.77	1.72	1.12	1.50

प्रयोग गन्ने और चीनी की उत्पादकता को प्रभावित करते है और इसका असर किस्मों पर अलग–अलग पड़ता है। हल्की मृदा की किस्म की तुलना में उर्वरक का प्रयोग गन्ना और चीनी दोनों की उत्पादकता को प्रभावित करते है। क्यूबा में लाटोसोल सैंडी मृदा में गन्ने की किस्म Ja 60.5 में उच्चतम पोल प्रतिशत और शुद्धता देखी गई है।

जल्दी पकने वाली गन्ने की किस्म CoC 671 गन्ने के रस की गुणवत्ता खारा क्षारीय मृदा पर, इस गन्ने के रस की गुणवत्ता अच्छी नहीं पाई गई। चिकनी मृदा की तुलना में हल्की और रेतीली मृदा में गन्ने के रस की गुणवत्ता खराब पाई गई।

हरियाणा में 16 गन्ने की किस्मों पर किए गए अध्ययन में यह पाया गया कि गन्ने की सभी किस्मों में अवकारक शर्करा करनाल और यमुना नगर की अपेक्षा हिसार में कम पायी गयी जो यह दर्शाता है कि यह कृषि जलवायु और मृदा के विभिन्न स्थिति से संबंधित है।

क्षेत्र की विभिन्नता के कारण मृदा की स्थिति गन्ने की उपज और उसके रस की गुणवत्ता पर प्रभाव डालती है। उदाहरण के लिए लेटराइट मृदा में तथा कुछ उड़ीसा की मृदा में अधिक मात्रा में कोलाइडयन सिलिका गन्ने के रस में होता है। इसी प्रकार Co 419 की किस्म जो बाम्बे डेक्कन में उगाई जाती है उसके रस में P_2O_5 की उच्च मात्रा होती है जबकि तमिलनाडु की मृदा में इसका स्तर और कम होता है। विभिन्न कृषि जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए गैर शर्करा के स्तर पर भी मतभेद होते हैं। इसे उर्वरक के संतुलित प्रयोग से निश्चित सीमा में कम किया जा सकता है।

खराब गुणवत्ता वाली मृदा पर रिजिंग की वजह से गन्ने और चीनी की पैदावार में सुधार हुआ। जब खराब सूखी मृदा को 200–300 मिमी. जमीनी स्तर से ऊपर रिजिंग का प्रयोग 3 और 7 पेड़ी फसलों पर किया गया तब सूखे की स्थिति में उस पर कोई भी महत्वपूर्ण सुधार नहीं हुआ परन्तु जब वर्षा का स्तर औसत से

ऊपर था तब 35 से 23 प्रतिशत गन्ने की उत्पादकता और 45 से 27 प्रतिशत चीनी की पैदावार पर क्रमानुसार 5 से 6 पेड़ी फसलों पर अत्यंत महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। इस तरह का सुधार बेहतर जड़ विकास की वजह से दिखाई दिया।

गुड़ / गुड़ की गुणवत्ता

उत्तर प्रदेश और पंजाब के क्षेत्रों में, शुष्क इलाकों में खनिज की मात्रा अधिक थी परंतु घुलनशील लवण की मात्रा में कोई अन्तर नहीं था। जबकि दोनों राज्यों में जलोढ़ मृदा होती है तब भी गुड़ की वसूली पंजाब की तुलना में, उत्तर प्रदेश में अपेक्षाकृत अधिक होती है। आंध्र प्रदेश और उड़ीसा के तटीय राज्यों में जहां की मृदा चिकनी बलुई या क्षारीय है वहां से उत्पन्न गन्ने का रस अम्लीय है (पी.एच. 5.2–5.4)। उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में जहां की मृदा लैटरिटिक है वहां के अम्लीय रस में कम द्विसंजोजक और उच्च सिलिका की मात्रा होती है। जिससे गुड़ की उचित सेटिंग नहीं हो पाती है। गुड़ की उचित सेटिंग लाईमिंग की प्रक्रिया के द्वारा भी नहीं हो पाती है। जबकि चित्तौड़ के कुछ भागों में (आंध्र प्रदेश) मृदा के उच्च पी.एच. के कारण गुड़ की सामान्य सेटिंग हो जाती है। यह सेटिंग मात्र गन्ने के रस को उबालने से प्राप्त होती है। केरल की लेटराइट मृदा का कम पी.एच. (5.2) और उसमें कम द्विसंयोजक कैटायन होते है परंतु इस मृदा में घुलनशील सिलिका की मात्रा अधिक होती है। जब गुड़ इस मृदा में उत्पन्न गन्ने के रस से बनाया जाता है। तब उसमें सेटिंग की समस्या उत्पन्न होती हे। होसपेट कर्नाटक और मुम्बई डेकन के पथ में पाई जाने वाली मृदा का पी.एच. बहुत अधिक होता है (पी.एच. 9. 5)। गुड़ की सेटिंग मात्र गन्ने के रस को उबालकर प्राप्त किया जा सकता है। इसी क्षेत्र में जिन मृदा में ज्यादा मात्रा में चूना पाया जाता है उससे उत्पन्न गन्ने के रस में फास्फेट को डाला जाता है जिससे गन्ने के रस की क्लैरिबिल्टी में सुधार होता है। मृदा में उपलब्ध P_2O_5 की स्थिति बेहतर गुड़ की गुणवत्ता के लिए महत्वपूर्ण है जबकि उत्तरी बिहार में मृदा में $CaCo_3$ की उच्च मात्रा गुड़ की गुणवत्ता को खराब करती है। अच्छी जल की निकासी, मध्यम से हल्की संरचना वाली मृदा को अच्छी गुण की गुणवत्ता के लिए उपयुक्त है।

महाराष्ट्र की गहरी काली मृदा में उगाई गई फसल पोषक तत्वों से समृद्ध होती है इसके रस से बने हुए गुड़ का रंग ज्यादातर काला होता है।

यह सम्भवतः इसलिए होता है क्योंकि इसमें अपेक्षाकृत कम मात्रा में पोषक तत्व पाए जाते है। इसके परिणाम स्वरूप उच्च शुद्धता और हल्के रंग का गुड़ प्राप्त होता है। पाड़ेगांव में, आमतौर पर शुष्क जलवायु में यहां की मृदा में मोन्टमोरिलोनाइट खनिज मृदा होती है और इसमें अधिक मात्रा में नमक का संचय और उच्च आधार विनिमय क्षमता है। इस मृदा से उत्पन्न गन्ने में अधिक मात्रा में पोषक तत्व होते है। विशेष रूप से नाइट्रोजन यौगिकों की मात्रा जो गुड़ के काले रंग का कारण होते है। गुड़ को सुनहरा पीला रंग प्राप्त करने के लिए गन्ने के रस में बड़ी मात्रा में क्लारीफिकैन्ट डाले जाते है। सामान्य वर्षा की कमी में जब अधिक सिंचाई की जाती है उससे उत्पन्न गन्ने के रस में चीनी की मात्रा कम होती है जो गुड़ को प्रभावित करती है।

नमक प्रभावित मृदा में जैसे ही गन्ने के रस की शुद्धता अवसाद होती है वैसे ही पोटाश और क्लोरीन की मात्रा में सहवर्ती वृद्धि होती है। इस प्रकार के गन्ने के रस से बने गुड़ की रखने की क्षमता अत्यधिक खराब होती है।

जल भराव मृदा में, जो फसल बाढ़ से पीड़ित रही जुलाई से सितम्बर माह तक और उसमें 120 सेंमी. गहरा पानी भरा रहा उस गन्ने की फसल में गैर प्रोटीन नाइट्रोजन (वर्तमान के 90 प्रतिशत नाइट्रोजन में बढ़त और सुक्रोज और गर्म सामग्री में गिराव होता है। ऐसी परिस्थितियों के अंतर्गत ग्लूकोज और राख की सामग्री में बढ़त होती है और P_2O_5 में कमी होती है। इस तरह का असंतुलन गन्ने के रस को खराब गुणवत्ता और गुड़ की वसूली में गिरावट लाती है। नदी या नहर तटबंध के किनारे या पंजाब क दलदलों के तट पर जहां कोई जल निकासी नहीं होती वहां पर कोई भी गन्ने की किस्म (काठा किस्म को) छोड़कर नहीं उगती। ऐसी परिस्थितियों में गुड़ की जगह, राब बनाई जाती है। जो गुड़ उस गन्ने से प्राप्त किया जाता है जो दलदली मृदा में उत्पन्न कराया जाता है उसमें अपेक्षाकृत उच्च कुल के साथ ही गैर प्रोटीन नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है। इसके अतिरिक्त यह 75 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता (और आर एच) पर अपेक्षाकृत अधिक नमी अवशोषित करती है। इन्हीं कारणों से सम्भवतः इस तरह की स्थितियों के तहत तैयार किया गुड़ जल्दी खराब होता है।

उपरोक्त विरिण से ज्ञात होता है कि मृदा की समस्याएँ गन्ने की उपज व रस गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

भारतवर्ष में गन्ना प्रजातियों का विकास

संगीता श्रीवास्तव एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत में मिठास वाली फसलों में गन्ना एक प्रमुख नकदी फसल के रूप में उगाया जाता है। देश में गन्ने का क्षेत्रफल लगभग 53.14 लाख हेक्टेयर है। खेती योग्य भूमि में निरन्तर कमी आने का प्रभाव गन्ने पर भी पड़ा है। देश की निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के कारण प्रति किसान भूमि उपलब्धता घटती चली जा रही है। वैश्विक स्तर पर भी उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र में विस्तार करना अब सम्भव नहीं हैं, क्योंकि खेती योग्य भूमि सीमित है। केवल उत्पादन व उत्पादकता बढ़ा कर ही इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

सन् 1888 में गन्ने में उर्वरता की पुनः खोज के बाद जावा मे गन्ने का आनुवंशिक सुधार शुरू हुआ। उस समय गन्ने की विभिन्न जाति के अनेक कृन्तक (क्लोन्स) उपलब्ध थे। जब गन्ने की प्राचीन किस्मों का बड़े पैमाने पर वर्ष दर वर्ष व्यावसायिक उत्पादन होने लगा तो धीरे–धीरे गन्ने में रोग तथा व्याधियों का संक्रमण भी बढ़ने लगा। इसके फलस्वरूप अधिक गन्ना तथा शर्करा उत्पादकता हेतु गन्ने में आनुवांशिक सुधार की भी आवश्यकता हुई। गन्ने की वे प्रजातियाँ जो उस समय प्रचलित थीं, उनका घरेलू उपयोग मनुष्य द्वारा ही किया गया था। बाद में धीरे–धीरे गन्ने की परम्परागत जंगली जाति के साथ संकरण द्वारा गन्ने का सुधार हुआ।

गन्ने की उगाई जाने वाली किस्मों में परम्परागत जंगली प्रजातियों के अंतर्जातीय संकरण द्वारा अनेक उन्नत तथा सफल व्यावसायिक प्रजातियों का विकास हुआ। इन प्रजातियों में अधिक शर्करा तथा उत्पादकता, बढ़वार, रोग रोधिता तथा भिन्न–भिन्न पर्यावरणों के लिए सहनशीलता आदि लक्षण समायोजित किये गये।

गन्ना प्रजनन :

पुराणों के अनुसार इक्षु या ईख की सृष्टि महर्षि विश्वामित्र ने की थी। संभवतः वे ही भारत के प्रथम पौध प्रजनक थे। रूसी वानस्पतिज्ञ वैविलोवने भी दक्षिण पूर्व एशिया को ही गन्ने का उद्‌गम स्थल माना है। माना जाता है कि पाँचवी सदी में यह मिठास भारत से ईरान तक पहुँची तथा सातवीं सदी में मिस्र व स्पेन के धरातल तक फैल गई। सोलहवीं सदी में अमेरिका ने इस मिठास को चखा। गन्ने का सुव्यवस्थित प्रजनन कार्य जावा में शुरू हुआ जहाँ नोबिलाइजेशन विधि द्वारा अनेक पी.ओ.जे. प्रजातियों का विकास हुआ। यहाँ तक कि पी. ओ. जे. 2878 एक उत्कृष्ट कृन्तक सिद्ध हुआ। सम्पूर्ण विश्व में गन्ना उत्पादन करने वाले देशों में गन्ने की प्रजातियों में सुधार हेतु प्रजनन कार्यक्रमों में इन्ही संकर प्रजातियों का प्रयोग किया गया तथा भिन्न–भिन्न जलवायु तथा विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर संतति (प्रोजेनी) से कृन्तकों का चयन किया गया। हवाई तथा लुइसियाना में पुनरावृत्ति चयन द्वारा गन्ने की पैदावार तथा शर्करा की मात्रा में सुधार किया गया। 1974 के बाद ऑस्ट्रेलिया में भी गन्ना प्रजनन व सुधार कार्यक्रमों मे गन्ने मे नये जनकों का प्रयोग हुआ।

गन्ने की आधुनिक प्रजातियों का विकास मुख्यतः *सैकेरम आफिसिनरेम* तथा *सैकेरम स्पौन्टेनियम* के अंतर्जातीय संकरण द्वारा हुआ है जिसे *सैकेरम बारबेराई* व *सैकेरम साइनेन्स* के समायोजन द्वारा परिष्कृत किया गया है। स्पष्ट रूप से गन्ने की प्रजातियों के प्रारम्भिक विकास तथा तत्पश्चात् प्राप्त सफलता में मुख्यतया *सैकेरम स्पौन्टेनियम* के जीन्स के संकरण का योगदान है। लुइसियाना व ताईवान मे गन्ने में शर्करा की मात्रा सुधारने में सफलता प्राप्त करने में पुनरावृत्ति चयन विधि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह भी पाया गया है कि गन्ने की स्पेशीज की संकर किस्मों में जनकों की तुलना में अधिक शर्करा परता पाई गई हैं, क्योंकि इनमें शर्करा के लिए संभावित जीन्स का समायोजित (एडीटिव) प्रभाव होता है। यद्यपि शर्करा के प्रतिशत को बढ़ाना थोड़ा मुश्किल प्रतीत होता हैं, परन्तु यही गन्ने की प्रजातियों के प्रदर्शन में सुधार का मूल आधार भी हैं, तथा इसी पर हमारी भविष्य की आशायें केन्द्रित हैं।

समकालीन प्रजनन कार्यक्रमः

भारत में गन्ने की पैदावर में सतत सुधार हुआ है। यद्यपि इस सुधार के लिए जिम्मेदार कारणों को आनुवांशिक, प्रतिरोपण अथवा उत्पादन आदि घटकों में बाँटना अत्यन्त कठिन है तथापि यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि बीते इन सालों में गन्ना उत्पादकता में 50–70% सुधार आनुवांशिक कारणों द्वारा ही हुआ है। देश में कृषि सम्बन्धित क्षेत्रों मे भिन्न-भिन्न जलवायु पाये जाने के कारण गन्ने के उत्पादन को प्रभावित करने के लिए उत्तरदायी कारण भी भिन्न हैं, जिन्हें ध्यान में रखते हुए गन्ने की आधुनिक प्रजातियों के विकास के लिए प्रजाति चुनाव कार्यक्रम हेतु अलग–अलग केन्द्र बना कर विकेंद्रीकरण के सिद्धान्त को

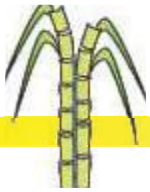

अपनाया गया है। इन प्रयासों के फलस्वरूप गन्ने की उन किस्मों का विकास सम्भव हुआ है, जिनमें लक्षित वातावरण के अनुसार गन्ने के पूर्णतया पकी अवस्था में आने में विभिन्न स्तर हैं।

कोयम्बटूर स्थित गन्ना प्रजनन संस्थान द्वारा 1980 में प्रारम्भ किये गये एक कार्यक्रम के तहत गन्ने की विभिन्न प्रजातियों के कृन्तकों को प्रयोग करके गन्ने का आनुवांशिक आधार बढ़ाने हेतु कुछ श्रेष्ठ अंतर्जातीय संकर प्रजातियों का विकास किया गया है। इन श्रेष्ठ अंतर्जातीय संकर किस्मों को राष्ट्रीय संकरण उद्यान (रा.स.उ.), कोयम्बटूर में उपलब्ध कराया गया है ताकि इनका प्रयोग देश भर के गन्ना प्रजनक, गन्ने के सुधार हेतु एक उपयुक्त जनक के रूप में कर सकें। गन्ने के अंतर्जातीय सुधार कार्यक्रम से अत्यधिक प्रोत्साहित परिणाम सामने आये हैं। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, द्वारा भी गन्ने की कुछ उच्च शर्करा जेनेटिक स्टॉक का समावेश इस रा.स.उ.में किया गया है जिससे कि उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र की आवश्यकतानुसार गन्ने की उच्च शर्करा तथा लाल सड़न प्रतिरोधी क्षमता वाली जातियों के विकास हेतु जीन्स संग्रह को बढ़ाया जा सके।

रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयनः

यदि पिछले 40–50 वर्षों में देशों में गन्ने की बोई जाने वाली प्रजातियों का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि बहुत सी उन्नतशील प्रजातियाँ जैसे कि को. 213, को. 312, को. 419, को. 997, को. 1148, को. 1158, को. शा. 767, को. ज. 64, को. सी. 671 आदि लाल सड़न, उकठा, कंडुआ, पेड़ी कुंठन, पर्णदाह, घासी प्ररोह, मोज़ेक आदि रोगों से ग्रस्त होने के कारण विलुप्त हो गईं या होने के कगार पर हैं। रोगों की रोकथाम के लिए रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन सबसे उत्तम और सरल उपाय है। अतः रोगग्रसित क्षेत्रों में रोग प्रतिरोधी प्रजातियाँ उगाना ही उचित है। ऐसा करने से रोगों का प्रकोप फसल पर न्यूनतम होता है। प्रतिरोधी प्रजातियाँ भी कुछ वर्षों पश्चात् विशेष कारणों द्वारा रोगग्रसित हो जाती हैं। किसानों द्वारा गन्ने की नई–नई प्रजातियों की माँग के कारण बीज के साथ नये–नये रोग भी गन्ने में प्रविष्ट कर जाते है। इसके अतिरिक्त गन्ने की संकर प्रजातियों, तथा बीज को पूर्व फसल से लगातार लेना भी रोगवृद्धि का प्रमुख कारण है। नई किस्म को विकसित होने में लगभग 8–10 वर्ष लग जाते हैं। इस अवधि में अधिकांशतः रोगों का आपतन बढ़ जाता है तथा विभिन्न प्रजातियों में रोग–कारक उत्पन्न हो जाते हैं, परिणाम स्वरूप कृषकों तक पहुँच कर नई किस्में अधिक दिनों तक नहीं चल पाती हैं। इसके लिए आवश्यक है कि विभिन्न रोगों के रोग-कारकों की जातियों की अच्छी समझ हो जिससे कि गन्ने की सुधार प्रक्रिया को त्वरित किया जा सके।

प्रजातियों का चयनः

जो प्रजातियाँ एक निश्चित वातावरण में सर्वाधिक लाभयुक्त उत्पादन तथा स्थिरता प्रदान करती हैं वे आदर्श प्रजातियाँ कहलाती हैं। रोगों जैसे कि लाल सड़न व कीट इत्यादि तथा रोगकारकों की नई जातियों के प्रादुर्भाव के कारण होने वाले भारी आर्थिक नुकसान की भरपाई हेतु प्रजाति विभिन्नीकरण सर्वश्रेष्ठ साधन है।

एक ही प्रजाति में सभी ऐच्छिक गुणों का समावेश होना कठिन है। अतः गन्ना प्रजनक प्रजाति विकास करते समय कुछ मुख्य आवश्यक गुणों तथा उनके समावेश की सुलभता को ध्यान में रखते हैं। प्रजातियों के संदर्भ में प्रजातीय योजना का होना अति आवश्यक है जिसका अर्थ है उपलब्ध प्रजातीय संसाधनो का लक्षित पर्यावरण में अधिकतम उपयोग करके गन्ना तथा शर्करा का स्थिर व लाभप्रद उत्पादन। वास्तव में यह गन्ने की विभिन्न परीक्षित प्रजातियों के गुणों को ध्यान में रखते हुए लक्षित पर्यावरण योग्य प्रजातियों का चयन करके गन्ने की फसल से अधिकतम लाभ लेना है। इसका उद्देश्य गन्ना उत्पादकों तथा प्रबंधको को विभिन्न प्रजातियों की बावक फसल तथा पेड़ी हेतु भूमि आवंटन में मदद करना तथा गन्ने की कटाई और पेराई का समय गन्ने में उपलब्ध शर्करा की सर्वोच्च परिपक्वता के अनुसार निर्धारित करना है, जिससे कि गन्ना उत्पादकों व मिल मालिकों दोनों को सर्वाधिक आर्थिक लाभ मिल सके।

भविष्य की रणनीति

(i) आनुवांशिक संसाधनों का समुचित उपयोग

गन्ना प्रजनन के प्रारम्भिक चरण में तत्प्रचलित प्रजनक कृन्तकों का प्रयोग किया गया परन्तु इन्हें चुनते समय सर्वश्रेष्ठ कृन्तकों को नहीं चुना गया। इसके फलस्वरूप लम्बे अन्तराल तक गन्ने की प्रजातियों का आनुवांशिक आधार सीमित रहा तथा इनमें जैविक व अजैविक प्रतिबल, विशेषतया जल भराव, मृदा लवणता तथा सूखे जैसी परिस्थितियों से निपटने की क्षमता कम थी। अतः भारत व विश्व के अन्य गन्ना उत्पादक देशों में गन्ना संवर्धन सम्बंधी अनुसंधान कार्य में नये जीन स्रोतोंका समावेश किया गया। यद्यपि नये जीन स्रोत के रूप में कुछ गन्ने की किस्मों के आधारभूत गुणों के कारण उनका चयन एक प्रजनक के रूप में किया गया तथापि उनका प्रयोग वास्तविक अनुसंधान कार्य में सीमित रहा क्योंकि इन प्रजातियों में या तो फूल नहीं लगते अथवा लगते हैं तो एक साथ नहीं लगते। यह समस्या उन क्षेत्रों में भी है जहाँ पर गन्ने में प्राकृतिक रूप से फूल लगते हैं। लुइसियाना (यू. एस. ए), क्वीन्सलैण्ड (ऑस्ट्रेलिया) और अंगोला (दक्षिण अफ्रीका) में गन्ना प्रजनन प्रयासों में बाधा बन रही इन समस्याओं के सुधार हेतु प्रजातियों में इच्छित फूल लगने की प्रक्रिया को उत्प्रेरित करने के प्रयत्न किये गये जो सफल भी रहे है। सम्भव है कि फूल उत्प्रेरण सुविधा उपलब्ध होने पर भारतवर्ष में भी इच्छानुसार प्रजनक

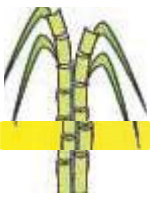

चयन द्वारा आनुवांशिक सुधार और शर्करा मात्रा मे बढ़त प्राप्त की जा सकती है।

(ii) मुख्य प्रजनन कार्यक्रम

आवश्यकता इस बात की है कि गन्ने के उपलब्ध जीव-द्रव्य को शस्य विज्ञान द्वारा, वाह्यगुणों द्वारा, जैव रसायनों द्वारा, गुणसूत्रों द्वारा तथा आण्विक पहचान चिह्नों द्धारा अध्ययन और मूल्याँकन किया जाये। यह पाया गया है कि प्रजातियों में विभिन्नता अधिक होने पर अंतर्जातीय संकरण द्वारा अधिक शर्करा मात्रा संश्लेषित करने वाली प्रजातियों का चयन सरल हो जाता है। इन सुधरी हुई प्रजातियों का प्रयोग शीघ्र उच्च शर्करा एकत्र करने वाली किस्मों के विकास हेतु किया जा सकता है। गन्ने मे उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाने की बहुत संभावनाएँ है, जबकि शर्करा के प्रतिशत को बढ़ाना थोड़ा मुश्किल प्रतीत होता है।

दक्षिण एवं मध्य भारत के प्रदेशों, जहाँ गन्ने की उत्पादकता 98 टन प्रति हेक्टेयर है तथा शर्करा परता की क्षमता 11.64% है, इनकी तुलना में उत्तर भारत में यह क्षमता केवल 58 टन प्रति हेक्टेयर तथा शर्करा परता केवल 9.4% की ही है। इसका मुख्य कारण यहाँ की अस्थिर जलवायु है जो कि गन्ने की बढ़वार एवं शर्करा संश्लेषण के लिए अपेक्षाकृत कम समय ही उपलब्ध होने देती है। इसके साथ ही जैविक कमियों के प्रतिरोधी, रोगरोधी व कीटरोधी लक्षण सहित उच्च शर्करा एवं गन्ना उत्पादकता हेतु गन्ने का आनुवंशिक सुधार आवश्यक है। देश के विभिन्न कृषि जलवायु परिक्षेत्रों तथा अजैविक प्रतिबल वाली पर्यावरण परिस्थितियों हेतु गन्ने की प्रजातियों के विकास पर आधारभूत एवं अनुप्रायोगिक अनुसंधान कार्य आवश्यक है।

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में सुव्यवस्थित शोध कार्य अभियान के फलस्वरूप गन्ना सुधार प्रक्रिया की शुरूआत हुई। गन्ने की नई प्रजातियों का विकास मुख्य रूप से विभिन्न प्रदेशों में विकसित/चयनित गन्ने की किस्मों के आपस में संकरण द्वारा जैव विविधता उत्पन्न करने तथा परिष्कृत करने के उपरांत अखिल भारतीय समेकित गन्ना अनुसंधान परियोजना के तहत विभिन्न प्रदेशों में स्थित राज्य स्तरीय एवं केन्द्रीय गन्ना शोध केन्द्रों द्वारा मूल्यांकन करके किया गया तथा विभिन्न कृषि जलवायु परिक्षेत्रों की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा गया। संस्थान द्वारा विकसित व निर्गत प्रजातियाँ को. लख. 8001, को. लख. 8102, को. लख. 94184, को. लख. 7201 एवं को. लख. 9709 इन्हीं सतत प्रयासों का परिणाम है। इसके अतिरिक्त इस संस्थान द्वारा कुछ प्रजनन स्टॉक भी रा.स. उ. में लगाये गये है, जिनमें अधिक शर्करा एकत्र करने की तथा चोटी बेधक सहनशीलता की आनुवंशिक क्षमता है।

(iii) जैव प्रौद्योगिकी

गन्ने में शर्करा का संश्लेषण अनेक जैव रासायनिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप होता है। शर्करा संश्लेषण के जीन का चयन कर उसके प्रभाव को बढ़ाने तथा शर्करा के कम से कम विघटन व शर्करा क्षय कम करने हेतु अध्ययन व शोधकार्य जारी हैं। ऊतक संवर्द्धन द्वारा भी रोगमुक्त पौधे पैदा किये जा रहे हैं, विशेषतया वायरस रोग मुक्त पौधे। इस विधि की विशेष भूमिका नवीन किस्मों में अधिक से अधिक तथा शीघ्रतम विकास में भी है। एंथर संवर्द्धन द्वारा सैकेरम स्पौन्टेनियम में हैपलौइड बनाये गये है, जो आधारभूत और अनुप्रायोगिक अध्ययन हेतु कारगर सिद्ध हुए हैं। आण्विक पहचान चिह्नों द्वारा जैव विविधता के परिलक्षण में सहयोग मिला है जो कि वाह्य संरचना द्वारा विश्लेषित करना कठिन है। गन्ने की प्रजातियों के विकास में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग की अपार संभावनाएं है। इस तकनीकी द्वारा कम समय में वांछित उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है जैसे रोगरोधी, कीटरोधी, खरपतवार नाशी प्रतिरोध क्षमता, भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यावरण एवं भूमि संबंधी विकारों के लिए उपयुक्त गन्ने की प्रजातियों का विकास। अभी हाल ही में एक सूखा प्रतिरोधक ट्रांसजेनिक प्रजाति इन्डोनेशिया में व्यावसायिक खेती हेतु विर्निमुक्त की गयी है।

यद्यपि मैं उन लोगों में से हूँ, जो चाहते हैं और जिनका विचार है कि हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।

—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

पशुओं के नवजात बच्चों में खीस की उपयोगिता

अतुल कुमार सचान, ब्रह्म प्रकाश, अश्विनी कुमार शर्मा एवं मो. अश्फॉक खान
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गाय व भैंस ब्याने के पश्चात जो प्रथम पीला व गाढ़ा दूध देती हैं, उसे कोलोस्ट्रम या खीस कहते हैं। यह दूध नवजातों के लिए अमृत के समान होता है क्योंकि यह उनकी संक्रामक बीमारियों से रक्षा करता है। करीब 100 वर्ष पूर्व एक वैज्ञानिक प्रयोग से यह सिद्ध किया गया था कि जिन नवजातों को दूध पिलाया गया उनमें से काफी बच्चों की दस्त होने के कारण मृत्यु हो गई। जबकि वह बछड़े जिनको जन्म के बाद खीस पिलाई गई, वे पूर्णतयः स्वस्थ रहे। तभी से यह मान लिया गया कि खीस में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण तत्व जरूर हैं जो गाय व भैसे के नवजातों को प्रतिरक्षा (बीमारियों से बचाव) प्रदान करते हैं और गाय व भैंसे के नवजातों की में जन्मोपरान्त मृत्यु दर काफी कम कर देते हैं। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर यह जानना आवश्यक हो जाता है कि खीस में ऐसे कौन से महत्वपूर्ण तत्व हैं जिनके कारण नवजात पशुओं को खीस देना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है तथा उनको खीस कब व कितनी मात्रा में देनी चाहिये?

खीस की उपयोगिता

खीस की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नवजातों की प्रतिरक्षा शक्ति कायम रखने में है। खीस में एण्टीबोडीज अथवा विभिन्न प्रकार के प्रतिरक्षक पिण्ड विद्यमान होते हैं, जो उनकी संक्रामक रोगों से रक्षा करते हैं। यह एण्टीबॉडीज बड़े आकार के प्रोटीन अणुओं से निर्मित होती हैं। यदि संक्रामक रोगों के कीटाणु नवजातों पर आक्रमण करते हैं तो यह प्रतिरक्षक पिण्ड उन कीटाणुओं के साथ संलग्न होकर उनका विनाश कर देते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि खीस नवजातों को संक्रामक रोगों से बचाती है।

खीस में प्रतिरक्षक पिण्ड 'एम', 'जी' व 'ए' ही मुख्य रूप से महत्वपूर्ण हैं तथा इनका कार्य दैहिक संक्रमण से रक्षा करना है। 'ए' पिण्ड आँतों, फेफड़ों व दुग्ध ग्रन्थियों की श्लेष्म झिल्ली में पाया जाता है तथा इसका कार्य भी संक्रमण से शरीर की रक्षा करना है। 'एम' तत्व यद्यपि बहुत छोटा होता है फिर भी उपरोक्त दोनों प्रणालियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जन्म के तुरन्त बाद नवजातों में अपनी प्रतिरक्षा के लिए शरीर में किसी भी प्रकार की एण्टीबोडीज नहीं होती हैं। इसलिए उनको संक्रामक रोगों से ग्रस्त होने का हमेशा भय बना रहता है। हालांकि, इनमें एण्टीबॉडीज निर्मित करने की क्षमता तो होती है परन्तु नवजात बच्चों में यह क्षमता बहुत कम होती है। इसलिए नवजात बछड़ों में अतिसार व विषाक्तता होने का भय रहता है। यदि प्रतिरक्षक तत्व (एण्टीबॉडीज) माँ से नवजात को गर्भकाल के दौरान ही मिल जाएं तो नवजातों को जन्मोपरान्त होने वाले संक्रामक रोगों से बचाया जा सकता है। मनुष्यों में यह गर्भकाल के दौरान ही माँ से नवजात शिशु को मिल जाता है। अतः उनमें जन्म से पहले ही रोगों से लड़ने की क्षमता होती है पर यह प्रणाली पशु के बच्चों में जन्म के समय विकसित नहीं होती है। इसलिए नवजात पशुओं को संक्रामक रोगों से बचाना बहुत जरूरी हो जाता है। इस कमी को खीस पिलाकर पूरा किया जा सकता है। खीस में विद्यमान एण्टीबॉडीज का नवजात पशु अच्छी तरह शोषण कर लेते हैं। चूँकि जन्म के एकदम पश्चात् ही उन पर जीवाणुओं के आक्रमण होने की सम्भावना रहती है। इसलिए आवश्यक है कि उन्हें खीस जन्म के तुरन्त बाद ही पिला दी जाये। प्रतिरक्षक गुण के अलावा खीस के कुछ अन्य उपयोग भी हैं जैसेः

- खीस रेचक या दस्तावर होती है। बच्चे के अन्दर गर्भकाल के दौरान पाचन अंगों में जमा पदार्थों को बाहर निकालने व सफाई में मदद करती है।
- इसमें प्रोटीन अधिक मात्रा में (14 प्रतिशत) होती है। जो नवजातों की बढ़ोत्तरी में सहायक होती है।
- खनिज पदार्थ जैसे कैल्शियम, फास्फोरस व लौह तत्व की मात्रा खीस में दूध की अपेक्षा कई गुना अधिक होती है, जो हड्डियाँ व रक्त बनाने में सहायक होती है।

खीस में काफी मात्रा में प्रतिरक्षक पिण्ड विद्यमान होते हैं। खीस उत्पन्न करने के लिए पशु को अपने एण्टीबोडीज के एकत्रित भण्डार समाप्त करने पड़ते हैं। जन्म के तीन महीने पश्चात् तो बछड़ों की अपनी ही प्रतिरक्षक प्रणाली विकसित हो जाती हैं और वह रोगों से अपना बचाव कर सकते हैं। कुछ अधिक दूध देने वाली गायों को प्रसव से पूर्व ही अयन ज्यादा भरा होने के कारण दूध निकाल लिया जाता है। ऐसा करने से इनकी खीस में उत्पन्न लाभदायक अवयवों की मात्रा कम हो जाती है।

खीस में उपलब्ध एण्टीबॉडीज का नवजातों द्वारा शोषण होना भी एक प्रक्रिया है। खीस पिलाने के 4 घण्टे के पश्चात् ही प्रतिरक्षक पिण्डों की मात्राा रक्त में पहुँच जाती है। यदि जन्म के तुरन्त पश्चात् खीस न पिलाई जाए तो यह प्रतिरक्षक पिण्ड जो आकार में काफी बड़े होते हैं, उनको नवजात शिशुओं द्वारा शोषित करने की क्षमता कम हो जाती है क्योंकि बच्चे की आँतों में इसका शोषण एक विशेष प्रकार की कोशिकाओं द्वारा होता है और यह कोशिकाएं शीघ्र ही छोटी–छोटी कोशिकाओं में

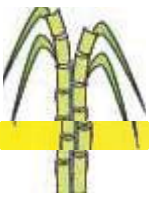

परिवर्तित हो जाती हैं। जो खीस में उपलब्ध तत्वों को शोषित नहीं कर पाती हैं। इसीलिए जन्म के तुरन्त पश्चात् अर्थात जन्म के दो घण्टे के अन्दर ही खीस दे देनी चाहिए क्योंकि खीस के प्रतिरक्षक पिण्ड बड़े आकार के होते हैं जो बाद में बछड़ों द्वारा शोषित नहीं किये जा सकते।

खीस पिलाने का उचित समय

आधुनिक अन्वेषणों ने यह दिखा दिया है कि नवजातों को जन्म के आधे घण्टे के अन्दर ही खीस पिलाना सबसे उत्तम रहता है। पर किसी कारणवश यह सम्भव न हो तो जन्म के दो घण्टे बाद तक अवश्य पिला देनी चाहिए। वैज्ञानिक प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जिन नवजातों को खीस जन्म के 5–7 घंटे बाद पिलाई गई, उनके रक्त में प्रतिरक्षक पिण्डों की मात्रा उन बछड़ों की अपेक्षा जिनको खीस जन्म के आधा घण्टे में पिला दी गई, काफी कम थी तथा देर से खीस पिलाने वाले बच्चों में से काफी साँस व पेट की बीमारियों से मर गये। अतः खीस को बच्चों को जन्मोपरान्त देना, जितना जल्दी हो सके, यानी जन्म से दो घण्टे के अन्दर, अनिवार्य हो जाता है।

आम तौर पर अधिकतर पशु पालकों में यह भ्रान्ति रहती है कि जब तक गाय या भैंस जेर नहीं डालती है तब तक गाय से न तो खीस निकालते हैं और न ही नवजातों को खीस पीने देते हैं। इस गलत धारणा के कारण गाय–भैंस व उनके नवजातों दोनों पर ही बहुत गलत प्रभाव पड़ता है। गाय–भैंस के अयन में खीस का दबाव बने रहने से परेशानी होती है व कई बार इसी कारणवश थनैला रोग हो जाता है। इधर नवजात को सही समय पर खीस न मिलने के कारण उनके स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे नवजातों के रोगग्रस्त होने की सम्भावना रहती है। इसी कारण नवजातों को समय से खीस पिलानी चाहिए।

नवजात स्वयं गाय/भैंस के थन को चूसने का प्रयास करता है और यदि बच्चा कमजोर पैदा हुआ है या खड़ा नहीं हो पा रहा है तथा थन से पीने में असमर्थ है तब खीस को स्वच्छ बर्तन में निकालकर पिला देना चाहिए।

खीस की मात्रा

बच्चे को उसके शरीर भार का 1/10 भाग के बराबर ही खीस पिलानी चाहिए, यानी हर 10 किलोग्राम शरीर–भार पर 1 किलोग्राम खीस। उदाहरण के लिए यदि नवजात बछड़ा 25 कि.ग्रा. वजन का है तो उसे पूरे दिन में 2.5 कि.ग्रा. खीस तीन बार में बराबर–बराबर मात्रा में विभाजित करके पिलानी चाहिए। पर एक बार में अधिक मात्रा में खीस नहीं पिलानी चाहिए जिससे दस्त लगने का डर रहता है।

जब खीस उपलब्ध न हो

यदि किसी कारणवश जैसे गाय से खीस का न उतरना, गाय का मर जाना, गाय का बच्चे को न लगाना आदि के चलते नवजातों को खीस उपलब्ध न हो रही हो तो उसे किसी दूसरी गाय/भैंस की खीस पिला देना चाहिए। यदि यह भी संभव व उपलब्ध न हो तो खीस के पूर्ण रूप से अभाव की अवस्था में यह उचित है कि अरण्डी (कैस्ट्रोल) के तेल की थोड़ी मात्रा दूध में निम्न तरीके से नवजात को दी जायेः–

दूध	–	560 मि.ली.
पानी	–	280 मि.ली.
अरण्डी का तेल	–	1/2 चाय का चम्मच भरा हुआ
अण्डा	–	एक फेंटा हुआ

उपर्युक्त मिश्रण 5 दिन तक देना चाहिए इससे भी उसकी प्रतिरक्षा शक्ति बढ़ती है और पाचन नली भी साफ होती है।

खीस का हिमीकरण

खीस का हिमीकरण करके लम्बे समय तक, उसकी गुणवत्ता को बनाएं रखा जा सकता है। इस तरह से उच्च गुणवत्ता वाली खीस हमेशा उपलब्ध बनी रहती है। इसके लिए खीस को 1.5 से 2 लीटर वाले पैकेट में फ्रीज करके रखा जा सकता है।

खीस को हिमीकृत करने व पिघलाने से उसकी गुणवत्ता कम नहीं होती है। ऐसी परिस्थितियों में जब किसी गाय/भैंस से खीस पतली या पानी जैसी होना या इसमें खून आना या गाय में थनैला रोग होना आदि की स्थिति में हिमीकृत खीस का हिम–द्रवण (पिघलाकर) करके नवजात को पिलाया जा सकता है। खीस के हिम–द्रवण के लिए 40 से 45 डिग्री तापक्रम वाले गर्म पानी का प्रयोग करना चाहिए व खीस को शरीर तापक्रम तक गर्म हो जाने पर इसे नवजात को पिलाना चाहिए।

खीस के हिमीकरण की प्रथा कुछ बड़े–बड़े पशु प्रक्षेत्रों पर प्रयोग में लाई गई है। पर पशुओं के नवजात बच्चों को ताजी खीस पिलाना सर्वथा उचित रहता है।

खीस द्वारा बीमारी स्थानान्तरण

ऐसी बहुत ही कम परिस्थितियॉ होती हैं जब खीस पशु से बछड़े में बीमारियों का स्थानान्तरण करती है। पर इसके कुछ उदाहरण हैं जैसे तपेदिक (टी.बी.) व कैंसर। यदि कोई गाय/भैंस इन बीमारियों से ग्रस्त हो तो नवजात को जन्म के तुरन्त बाद गाय/भैंस तथा प्रसव क्षेत्र दोनों से ही दूर कर देना चाहिए जिससे बच्चों में बीमारी पहुँचने की सम्भावना न के बराबर हो जाती है। ऐसी स्थिति में किसी दूसरी गाय/भैंस से खीस निकालकर बछड़े को पिलानी चाहिए।

खीस की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारक

पशु की खीस गाढ़ी व क्रीम की तरह हल्की पीली होने का मतलब है उसकी गुणवत्ता अच्छी होना अर्थात उसमें अधिक मात्राा में एण्टीबॉडीज का होना। इसके विपरीत पतली खीस की

गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है। पतली खीस होने के निम्न कारण होते हैं:

1. गायः भैंस का अपर्याप्त शुष्ककाल (दो माह से कम), अपरिपक्व प्रसव (प्रसव काल पूरा होने से पहले ही बच्चा दे देना) व प्रसव से पहले ही दूध का निकालना, ब्यॉत से पहले ही दूध का निकालना आदि।
2. गाय की उम्रः पहले ब्यांत की गाय की खीस पतली होती है जिससे उसमें एण्टीबोडीज कम होती हैं। इसके विपरीत पुरानी गायों में यह अवयव अधिक होते हैं साथ ही साथ इन पुरानी गायों की खीस में विविध प्रकार की एण्टीबॉडीज पाई जाती हैं। क्योंकि इनके शरीर में ज्यादा बीमारियों से लड़ने की क्षमता उत्पन्न हो चुकी होती है।
3. गाय की नस्लः देशी गायों में संकर व विदेशी गायों की तुलना में एण्टीबॉडीज अधिक होती हैं। अतः इनका दूध गाढ़ा होता है।

पशुओं के दूध का रासायनिक संगठन

खीस की जानकारी के साथ–साथ विभिन्न पशुओं के दूध का रासायनिक संगठन जानना अति आवश्यक है जो कि सारणी सं.–1 में दिया गया है। यह सारणी दर्शाती है कि मिथुन के दूध में सर्वाधिक वसा व प्रोटीन पाई जाती है। मानव दूध में प्रोटीन सबसे कम पायी जाती है।

गाय के खीस का रासायनिक संगठन

अगर हम गाय के खीस व दूध की तुलना करते हैं तो हम पाते हैं कि खीस में सभी अवयव अधिक मात्रा में पाये हैं। जैसे– कुल ठोस 23.9 प्रतिशत खीस में व 12.5 दूध में है। इसी प्रकार वसा की मात्रा भी खीस में करीब दो गुनी है। खीस में प्रोटीन की भरमार होती है जो लगभग 14 प्रतिशत हैं इसी प्रकार कुछ भस्मों जैसे कैल्शियम व फास्फोरस अवयवों की मात्राा भी दूध की तुलना में काफी अधिक है।

सारणी–1 पशुओं के दूध का रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

पशु	कुल ठोस	वसा	प्रोटीन	भस्म
भैंस	16.73	7.00	3.94	0.84
गाय (देसी)	13.34	4.65	3.38	0.77
गाय (विदेशी)	12.50	3.80	3.30	0.80
बकरी	13.50	4.50	3.80	0.52
भेड़	16.30	6.04	4.85	0.52
याक	17.40	6.50	5.40	0.90
ऊँट	13.60	4.50	3.60	0.70
मिथुन	22.00	9.60	10.40	0.70
घोड़ी	11.20	1.09	1.89	0.31
मानव	12.13	3.50	1.30	0.15

सारणी–2 गाय के खीस व दूध का तुलनात्मक रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

क्र.सं.	अवयव	खीस	दूध
01	कुल ठोस	23.9	12.5
02	वसा	6.7	3.8
03	प्रोटीन	14.0	3.2
04	इम्यूनोग्लोबुलिन	6.5	0.09
05	लैक्टोज	3.0	4.6
06	भस्म	1.8	0.8
07	कैल्शियम	0.26	0.13
08	फास्फोरस	0.24	0.10
09	मैगनीशियम	0.04	0.01
10	सोडियम	0.07	0.08
11	पोटैशियम	0.14	0.16
12	क्लोराइड	0.12	0.10

भैंस के खीस का रासायनिक संघटन

भैंस के खीस में वसा का प्रतिशत ब्याने के 24 घण्टे तक अधिक रहता है पर जैसे–जैसे समय बढ़ता है वैसे–वैसे वसा का प्रतिशत कम होता जाता है व ब्याने के 5–6 दिन बाद सामान्य स्तर (6.7 प्रतिशत) पर पहुँच जाता है। भैंस के दूध में वसा का औसत 7.0 प्रतिशत होता है।

खीस काफी गाढ़ी होती है, ब्याने के बाद भैंस के खीस में कुल ठोस पदार्थ की अधिकतम् मात्रा 26.98 प्रतिशत पाई गई जो ब्याने के 6 दिन बाद सामान्य स्तर पर पहुँच जाती है। भैंस के दूध में औसतन कुल ठोस पदार्थ 16.73 प्रतिशत होता है।

प्रारम्भ में खीस में लैक्टोज की मात्रा कम पाई जाती है परन्तु ब्याने के 5–6 दिन बाद यह अपने सामान्य स्तर पर पहुँच जाती है। भैंस के दूध में लैक्टोज की मात्रा 6 प्रतिशत के लगभग पाई जाती है।

प्रारम्भ में खीस में प्रोटीन की मात्रा बहुत अधिक (लगभग 15 प्रतिशत) होती है। पर, धीरे–धीरे कम होती चली जाती है व 5–6 दिनों बाद सामान्य स्तर पर पहुँच जाती है। भैंस के दूध में औसत प्रोटीन की मात्रा करीब 4 प्रतिशत होती है। इसी प्रकार भैंस की खीस में केसीन व एल्ब्यूमिन की मात्रा भी कुछ ज्यादा होती है पर 5–6 दिनों में सामान्य हो जाती है।

भैंस की खीस व दूध में सर्वाधिक अन्तर ग्लोब्युलिन का होता है। ग्लोब्युलिन एक ऐसा तत्व है जो नवजातों को बीमारियों से बचाव में मदद करता है। अतः खीस में ग्लोब्युलिन (0.19 प्रतिशत) सामान्य दूध की तुलना में करीब 50 गुना अधिक (9.93 प्रतिशत) होती है। ब्याने के 4–5 दिनों बाद खीस में ग्लोब्युलिन की मात्रा सामान्य स्तर पर पहुँच जाती है।

विभिन्न प्रजातियों की खीस का तुलनात्मक अध्ययन

विभिन्न प्रजातियों की खीस का तुलनात्मक अध्ययन सारणी संख्या–4 में किया गया है। इस सारणी से ज्ञात होता है भेंड़ की खीस में सबसे ज्यादा वसा (17.4 प्रतिशत) पाई जाती है जबकि मिथुन में प्रोटीन उच्चतम मात्रा (36.7 प्रतिशत) में पाई जाती है।

कई वैज्ञानिक प्रयोगों से यह तथ्य सामने आया है कि यदि नवजात सीधा ही थन से खीस पी लेता है तो खीस का नवजात के शरीर द्वारा अच्छी प्रकार से शोषण होता है अगर खीस गाढ़ी है तो उसका मतलब है कि उसमें अधिक एण्टीबॉडीज हैं।

नवजात बछड़ों को संक्रामक रोगों से बचाने एवम् उनको स्वस्थ जीवन देने में खीस की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः नवजात को सही समय व उचित मात्रा में खीस पिलाना चाहिए। ऐसा करने से नवजात को एक स्वस्थ पशु के रूप में तैयार किया जा सकता है।

सारणी–3: भैंस के खीस का रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

ब्याने के पश्चात समय (घं0)	कुल ठोस	वसा	लैक्टोज	प्रोटीन	केसीन	एल्ब्युमिन	ग्लोब्युलिन
1	26.98	7.6	4.22	15.48	4.20	0.60	9.93
6	23.58	7.7	3.95	11.99	4.07	0.58	6.67
12	20.69	9.9	4.29	6.48	2.98	0.38	2.69
24	19.96	9.3	4.72	5.90	3.46	0.37	1.51
36	17.18	6.9	5.49	5.33	3.40	0.31	0.84
48	16.87	6.9	4.93	5.08	3.69	0.36	0.62
72	16.31	6.5	4.77	5.09	3.80	0.38	0.46
84	18.48	6.9	5.97	5.61	4.33	0.54	0.30
120	17.20	6.7	5.32	5.22	4.08	0.39	0.31
144	17.10	6.3	5.69	5.11	3.98	0.42	0.24
भैंस के दूध का औसतन रासायनिक संघटन (प्रतिशत)							
ब्याँत औसत	16.73	7.00	5.78	3.94	3.09	0.28	0.19

सारणी–4: विभिन्न प्रजातियों की खीस का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत)

प्रजातियाँ	कुलठोस	वसा	लैक्टोज	प्रोटीन	भस्म	पानी
गाय	23.9	6.7	3.0	14.0	1.8	76.1
भैंस	27.0	7.6	4.2	15.50	0.84	73.0
भेंड़	41.8	17.4	2.2	20.1	1.0	58.2
बकरी	18.8	8.2	3.4	5.7	0.9	81.2
याक्	36.4	14.8	2.3	17.9	1.4	63.6
मिथुन	48.1	6.8	3.5	36.7	1.1	51.9
शूकर	30.2	7.2	2.4	18.8	0.6	69.8
मानव	10.2	2.9	5.3	2.0	–	89.8

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

चारा एवं चारागाह फसलों में सूत्रकृमियों का प्रकोप और उनका निदान

राकेश कुमार सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सूत्रकृमि (निमैटोड) एक अत्यन्त निम्न श्रेणी के अकशेरू वर्ग के जन्तु होते हैं। इनका आकार मुख्यतः 0.5से 1.0 मिमि. लम्बा होता है। ये अनेक प्रकार से फसलों को हानि पहुँचाते है। कुछ सूत्रकृमि पौधों की जडों के अन्दर प्रवेश कर जाते है और उनकी वृद्धि जडों की कोशिकाओं में होती है। यहां अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं। कुछ ऐसे होते हैं कि उनका कुछ हिस्सा जडों की कोशिकाओं में और कुछ बाहर होता है। कुछ अन्दर–बाहर घूमते रहते है। बाकी बाहर रह कर पौधों की जडो से अपना भोजन लेते रहते हैं और अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं।

यह सूत्रकृमि कृषि उत्पादन में समस्या उत्पन्न करते हैं। पौधों की जडों के उपयुक्त कार्य न करने पर एवं उचित मात्रा में भोजन न लेने से फसल की पैदावार में काफी अन्तर आ जाता है। सूत्रकृमियों द्वारा जड़ों की क्षय से पौधा मिट्टी से उपयुक्त मात्रा में जल व उर्वरक नहीं ले पाता हैं। जिससे पौधों की पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाती है। मिट्टी में जनित सूत्रकृमियों में काफी भिन्नता पाई जाती है। इसलिये देश के अलग–अलग भागों में अलग–अलग प्रजाति के सूत्र कृमियों का प्रकोप पाया जाता है। इसके अतिरिक्त सूत्रकृमियों द्वारा ग्रसित जड़ों में विभिन्न प्रकार के हानिकारक कवक और जीवाणु आक्रमण कर देते हैं। कुछ सूत्रकृमि से वायरस भी पौधे के अन्दर पहुँचते हैं। सूत्रकृमियों द्वारा ग्रसित पौधे सामान्यतः छोटे रह जाते है, पत्तियां पीली पड जाती हैं और मुरझा जाती हैं। अत्यन्त गंभीर प्रकोप होने पर कभी–कभी पौधे मर जाते हैं।

मुख्य प्रकार से निम्न रूप से सूत्रकृमियों का प्रकोप देश में हर जगह पाया जाता है।

रूटनाट सूत्रकृमि (मेलोडोगाइन)

यह सूत्रकृमि चारा फसलों में बहुत लगते हैं। इनके आक्रमण से पौधों की जड़ें फूल कर गांठ बना लेती हैं। मादा जड़ों के उतकों में रहती हैं। उसकी योनी बाहर की तरफ रहती है। यह एक चिपचिपे पदार्थ में अंडे देती है। मादा 150–300 तक अंडे देती है। अंडे मिट्टी में रहते हैं। जब दूसरी फसल बोई जाती है तो ये अंडे नमी और उपुयक्त ताप पर हैच हो जाते हैं। जिनसे इनके लार्वा बाहर आ जाते हैं। वहां उनका विकास नर और मादा सूत्रकृमि में हो जाता है। फलस्वरूप जड़ें क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। भारत में मुख्यतः *मेलोडागाइन इनकागनिटा* और *मे. जवानिका* प्रजातियां पाई जाती हैं जो फसलों को नुकसान पंहुचाती हैं।

सिस्ट सूत्रकृमि (हेटरोड)

इस सूत्रकृमि की मादा जब परिपक्व हो जाती है तो मजबूत सिस्ट बना लेती है। जिसमें अंडे भरे रहते हैं। ये सिस्ट जड़ों से अलग हो कर मिट्टी में पड़े रहते हैं और जब दूसरी फसल बोई जाती है तो उपयुक्त वातावरण (नमी और ताप) पाकर अंडो से बच्चे बाहर निकल आते हैं और नई जड़ों में भेद कर जड़ के अन्दर पहुंच जाते हैं। जहाँ उनका विकास नर और मादा सूत्रकृमि के रूप में होता हैं। चारा फसलों में मुख्यतः *हेटरोडेरा जिया, हेटरोडेरा सोर्घाही, हेटरोडेरा कैजीन* भारत में पाये जाते हैं।

रोटाइलेन्कुलस सूत्रकृमि

ये सूत्रकृमि पौधो की जड़ों में घुसे रहते हैं। मादा अंडे चिपचिपे पदार्थ में देती है। ये अंडे मिट्टी में पड़े रहते हैं। नई फसल बोने पर अंडों से बच्चे निकल कर जड़ों को भेद कर अन्दर चले जाते हैं। वहां उनका विकास नर और मादा सूत्रकृमि में होता है। चारा फसलों में *रोटाइलेकुलस ऐनीफार्मिस* का प्रकोप पाया जाता है।

स्टंट सूत्रकृमि (टाइलेकोरिकस)

ये सूत्रकृमि मिट्टी में रहते हैं, कभी–कभी जडों मे भी प्रवेश कर जाते हैं। इनका जीवन चक्र मिट्टी और जड़ दोनो में रहता है। ये अंडे बच्चे दोनो जगह देते हैं अर्थात् जड़ों में और मिट्टी में इनके प्रकोप से पौधे छोटे रह जाते हैं। ये प्रायः जड़ गलने वाले कवकों को और प्रोत्साहित कर देते हैं। भारत में *टाइलेकोरिस* की बहुत सी प्रजातियाँ पायी जाती हैं।

लेजन सूत्रकृमि (प्रेटिलेंकस)

यह सूत्रकृमि भी टाइलेकोरिक की भांति जड़ों के अन्दर और बाहर मिट्टी में वयस्क, अंडो और बच्चों के रूप में पाये जाते हैं। प्रभावित जड़ों में गांठे कत्थई रंग के घाव (लेजन) बन जाते है। ये सूत्रकृमि भी जड़ को गलाने वाले कवकों का उकसाया करते हैं। चारा फसलों में मुख्यतः *प्रेटिलेंकस जिआ* आदि प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

चारा फसलों में पाये जाने वाले अन्य सूत्रकृमि

हेलीकोटाइलेंकस, रोटाइलेंकस, हापलोलैम्स, जीफीनिमा, लॉजीडोरस आदि।

रोकथाम एवं प्रबंधन

1. सिस्ट निमैटोड के लिये उपुक्त फसल चक्र उपयोग में लाते हैं। ज्वार लगने वाले *हेटरोडेरा सोर्घाई* के लिये अगली फसल रिजका या बरसीम लगाना चाहिये। यदि लोबिया में *हेटरोडेरा*

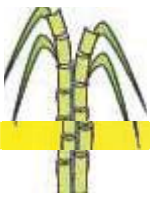

कैजनी का प्रकोप हो तो अगली फसल में जई लगानी चाहिये।

2. गर्मी के दिनों में गहरी जुताई से सूत्रकृमियों का प्रकोप कम हो जाता है।
3. नीम की खली 10 कुं/हे. मिट्टी में मिला कर पानी से सींच दें और खेत को कुछ दिनों के लिये खाली छोड दें।
4. बीज का उपचार कार्बोफयूरान 1ग्रा./किग्रा. अथवा नीम की गुठली का पाउडर 5ग्रा./किग्रा. के हिसाब से करें।
5. यदि सूत्रकृमियों का प्रकोप अत्यन्त तीव्र हो तो बुवाई के समय बीज के साथ कार्बोफयूरान 1.5 कि.ग्रा./हे. क्रियाशील तत्व (ए.आई.) उपयोग करें।
6. सूत्रकृमि अवरोधी वैरायटी की बुवाई से भी कुछ हद तक इनके प्रकोप से कमी की जा सकती है।

तालिका–1: चारा एवं चारागाह फसलों में लगने वाले सूत्रकृमि

क्र. सं.	फसल	मुख्य सूत्रकृमि
1	लोबिया	*मेलोडागाइन इनकागनिटा, मे. जवनिका, हेटरोडेरा, कैजनी, रोटाइलेकुलस रेनीफार्मिस*
2	बरसीम	*टाइलेकोरिकस वेलोनिलैमस, मे. इनकागनिटा*
3	लूसर्न	*मे. इनकागनिटा, मे. जवनिका, प्राटाइलेकस थार्नी*
4	स्टाइलो	*मे. इनकागनिटा, प्राटाइलेकस थार्नी, टा. ब्रेविनेटस*
5	ज्वार	*हेटरोडेरा सोर्घाइ, प्रा. जिआ टा. ब्रेविलीनेटस*
6	जई	*प्रा. जिआ*
7	मक्का	*हेट. जिआ प्रा. जिआ टा. ब्रेविलिनेटस*
8	अन्य	अनेक वाह्य परजीवी सूत्रकृमि

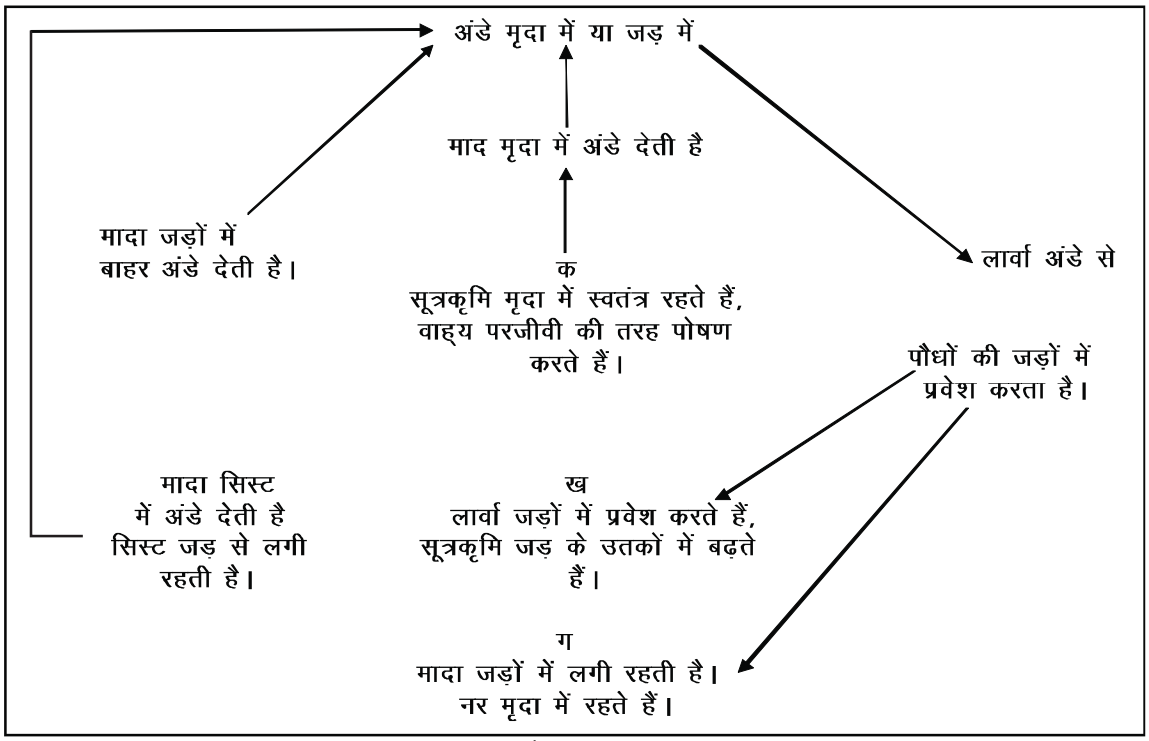

सूत्रकृमियों का जीवन चक्र
क. बाह्य परजीवी, ख. रूट नाट (मेलेडोगाइन), ग. सिस्ट (हेटरोडेरा)

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन एवं प्रबंधन

कामता प्रसाद[1], कमला कान्त[2], गोपाल साँखला[2] एवं निकिथा एल[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[2]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत में 70 प्रतिशत आबादी कृषि और पशुपालन पर आधारित है। देश में सीमांत और छोटे किसानों की मुख्य जीविका पशुपालन है। लेकिन वैज्ञानिक ढंग से पशुपालन न करने से किसानों को ज्यादा लाभ नहीं मिल पाता है। इसके लिए बहुत सारी ध्यान देने योग्य बातें है। उनमें से एक है स्वच्छ दुग्ध उत्पादन। उत्तम किस्म का दुग्ध प्रोटीन एवं कैल्शियम का अच्छा स्रोत है। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन व्यवसाय की दृष्टि से पशुपालकों के लिए अत्यंत महत्वपुर्ण है। यह पशु और पशुपालकों के स्वास्थ्य के लिए भी आवश्यक है। स्वच्छ दुग्ध की भण्ड़ारण क्षमता अधिक होती है। जिसे हम दूर–दूर तक पहुंचा सकते हैं और स्वच्छ दुग्ध से बनाये गये उत्पाद जैसे घी, मक्खन एवं पनीर आदि भी उच्च श्रेणी के होते हैं। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन से अभिप्राय है कि दुग्ध में हानिकारक जीवाणु, गोबर, धूल एवं भूसा इत्यादि से मुक्त होना चाहिए।

स्वच्छ दूग्ध उत्पादन कैसे करें

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

साफ वातावरण तथा पशुशाला

- पशुशाला के आसपास का वातावरण साफ होना चाहिए।
- पशुओं के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध होना चाहिए।
- जल निकास के लिए फर्श में पर्याप्त ढ़लान होना चाहिए।
- पशुओं का आवास स्थान साफ होना चाहिए।
- गोबर, पेशाब व बिखरा हुआ खराब चारा तुरंत हटा लेना चाहिए।
- फिनाइल व कीटाणु नाशक का समय–समय पर प्रयोग करते रहना चाहिए।
- पशु आवास की जगहों पर फर्श और दीवारें दरारें एवं छिद्र कीटाणुओं से मुक्त होने चाहिए क्योंकि ऐसी जंगहों पर कीटाणुओं और कीड़ों के पनपने का खतरा बना रहता है।
- स्वच्छ पानी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
- चारा मशीन व दुग्ध दुहने की मशीन साफ होनी चाहिए।

पशुओं की सफाई

- दूध निकालने से पहले पशु को नहलाना चाहिए।
- दूध निकालने से पहले थनों को साफ पानी से धोकर साफ कपड़े से पोंछ देना चाहिए।
- थनों को धोते समय थोड़ी मालिश भी करनी चाहिए।
- थनों पर यदि कोई घाव हो तो कीटाणुनाशक मलहम का प्रयोग करना चाहिए।
- दुग्ध निकालते समय पशु को शांत रखना चाहिए।
- दुग्ध प्रतिदिन निर्धारित समय पर ही दुहना चाहिए।
- दुग्ध निकालते समय पशु को चारा और दाना देना चाहिए।
- संक्रामक पशुओं को अलग रखना चाहिए और उसकी साफ सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

ग्वाले की साफ सफाई

- दुग्ध निकालने से पहले हाथों को साबुन से धो लेना चाहिए।
- दुग्ध निकालने वाला साफ सफाई के बारे में जानता हो तथा उसके नाखून छोटे होने चाहिए।
- दुग्ध निकालने से पहले हाथों पर चिकना पदार्थ लगायें।
- हाथों या थनों को चिकना करने के लिए अंगुली दुग्ध में न डुबोएं।
- दुग्ध निकालने वाला स्वस्थ होना चाहिए।
- सर पर कोई कपड़ा आदि भी बांध लेना चाहिए।
- दुग्ध निकालते समय शांत रहना चाहिए।
- थनों का धोना व दुग्ध निकालने का सारा काम लगभग 8 मिनट में हो जाना चाहिए।
- दुग्ध निकालने के बाद थनों को जीवाणु नाशक घोल में डुबोना चाहिए।
- दुग्ध निकालते समय गुटका एवं तम्बाकू का सेवन नहीं करना चाहिए।
- दुग्ध दुहने वाले के कपड़े साफ होने चाहिए।

बर्तन की सफाई

- दुग्ध निकालने वाले बर्तन को अच्छी तरह साफ करना चाहिए।
- बर्तन साफ व उनके पैंदे गोल बिना जोड़ों के होने चाहिए ताकि उनकी साफ सफाई अच्छी तरह से की जा सके।
- बर्तनों को साफ करने के बाद सुखा लेना चाहिए।
- दुग्ध छायादार व ठन्डे स्थान पर रखना चाहिए।
- बर्तन दुहने के बाद साफ कर लेना चाहिए।
- बर्तन जंग से मुक्त और अवशोष रोधी एल्युमीनियम या जस्ते–लोहे का बना होना चाहिए।

- स्टेन लैस स्टील सबसे अच्छा होता है।

पर्यावरण से सम्बंधित बिन्दु

- दुग्ध निकालने का स्थान साफ होना चाहिए।
- दुग्ध निकालने से एक घंटा पहले सफाई कर लेनी चाहिए, जिससे धूल के कण दूध में न गिर पावें।
- दुग्ध निकालते समय भूसा इत्यादि धूल वाला चारा नहीं देना चाहिए।
- दुग्ध निकालते समय पशु को धूल रहित दाना देना चाहिए।
- शुरूआत वाला कुछ दुग्ध को अलग बर्तन में रखना चाहिए, क्योंकि उसमें सूक्ष्म जीवों की संख्या ज्यादा होती है।
- दुग्ध निकालने के बाद आधा घंटे तक पशु को बैठने नहीं देना चाहिए
- पशुओं को ब्याने के 60–70 दिन पहले खुला छोड़ देना चाहिए।

दुग्ध दुहने की विधि

- दुग्ध हमेशा पूरे हाथ से मुठ्ठी बन्द करके निकालें (पूर्ण हस्तविधि) न कि अंगूठा मोड़कर। जल्दी पूरा दूध निकालना चाहिए।
- थनों से पूरा दूध निकालना चाहिए।
- थनैला रोग से संक्रमित होने की जानकारी हेतु दूध को जाँचते रहना चाहिए।

- थन संक्रमित हो जांए तो दूध दुहने की अपेक्षा इनका उपचार करना चाहिए।
- पहले आगे वाले दो थनों का तथा बाद में पीछे के दोनों थनों का दुग्ध निकालना चाहिए।
- जिन थनों में दुग्ध अधिक हों उनका दूध पहले निकालना चाहिए।

दुग्ध का भंड़ारण

- दुग्ध को सीधे धूप में नहीं रखना चाहिए अन्यथा कुछ विटामिन नष्ट होने का खतरा बना रहता है।
- दुग्ध को शीघ्र ही 4°C पर ठंड़ा कर लेना चाहिए जिससे कि उसमें सूक्ष्म जीवों का विकार न हो सकें।
- दुग्ध को एल्यूमीनियम या स्टेनलैस स्टील के बर्तन में संग्रह करना चाहिए। ये बर्तन लाने ले जाने के लिए अच्छे होते हैं।
- दुग्ध को हमेशा कपड़े से ढककर रखना चाहिए ताकि उसमें धूल या मक्खी आदि न गिरें।

दुग्ध को ठंड़ा करने की विधि

- दुग्ध को ठंड़ा करने से सूक्ष्म जीवाणुओ की गतिविधियों और विकास को धीमा कर देता है। यह दुग्ध को नुकसान होने से बचाता है। दुग्ध को निम्न विधियों से ठंड़ा कर सकते है:
- ठंडी हवा से
- ठंडे पानी से
- बर्फ से
- रेक्रिजरेटर से

गर्म विधि से दुग्ध भंड़ारण

- ताप कई सूक्ष्म जीवाणुओं को मारता है जिससे कि दुग्ध को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है और दुग्ध को खराब होने से बचाता है।

10. सावधानियां

- दुग्ध निकालते समय हाथ पूरी तरह सूखे होने चाहिए।
- थनों में दरार या छाला दिखाई देने पर कीटाणु रोधी क्रीम का प्रयोग करना चाहिए।
- पशुओं में दुग्ध उतारने के लिए ऑक्सीटोसिन के टीके लगाना उचित नहीं है। इससे दुग्ध देने की क्षमता भी कम हो जाती है।

11. दुग्ध निकालते समय कुछ ध्यान देने योग्य बातें

- थन के आस–पास के बालों को काट देना चाहिए।
- दुग्ध शांति पूर्ण माहौल में निकालना चाहिए।
- ऐसे पशु जो ताजे ब्यांए हुए हों व ऐसे पशु जो ज्यादा दुग्ध देते हों उनको सबसे पहले दुहना चाहिए।
- दुग्ध जो ऐसे थनों से निकाला गया हो जिनमें दवाई लगाई गई हो उसको दूसरे पशु के दुग्ध से अलग रखना चाहिए ना कि उस दुग्ध के साथ मिलाना चाहिए।
- दुग्ध निकालने के बाद इसको छलनी से छान लेना चाहिए।
- यह ध्यान रखें कि दुग्ध के बर्तन धोने के लिए प्रयोग किया जाने वाला पानी साफ व जीवाणु रहित होना चाहिए।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लाभ

- कम समय में दुग्ध को नुकसान होने से बचाया जा सकता है।
- दुग्ध और दुग्ध उत्पाद की भंड़ारण क्षमता बढ़ जाती है।
- क्षय रोग (टी.बी.) और डेप्थेरिया जैसे रोगों का फैलने या संक्रमण होने से बचाया जा सकता है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

फलोद्यानों में सघन बागवानी

वन्दना धामी, वी.पी. सिंह एवं सी.पी. सिंह
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

फलों का बढ़ती हुई जनसंख्या को पोषण सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ वनों के अतिरिक्त वृक्ष आच्छादित क्षेत्रफल बढ़ाने में बहुमूल्य योगदान है। वर्तमान में देश में फलों के अर्न्तगत क्षेत्रफल 72.16 लाख हेक्टेयर व उत्पादन 889.77 लाख टन है **(सारणी–1)**। फलों के अर्न्तगत क्षेत्रफल में वृद्धि एवं तकनीकी विकास के बावजूद उत्पादकता कमोबेश उसी स्तर पर बनी हुई है, जोकि उत्पादन क्षमता से काफी कम है। फलों के अर्न्तगत् लगातार क्षेत्रफल को बढ़ाना सम्भव नहीं है, क्योंकि कृषि भूमि पर बढ़ते हुये शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं अन्य ढ़ाँचागत् विकास कार्यों के कारण काफी दबाव है। अतः फलों का उत्पादन बढ़ाने के लिये उत्पादकता में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है। फलदार पौधे मुख्य रूप से बहुवर्षीय होते हैं, जिनमें प्रथमतः फलत् देर से आरम्भ होती है एवं द्वितीय, मानक दूरी पर लगाने से प्रति इकाई क्षेत्रफल में कम पौध लगाये जाने से कुल उत्पादन प्रभावित होता है। फलों की उत्पादकता बढ़ाने में सघन बागवानी तकनीक अत्यन्त सफल सिद्ध हुई है। सामान्यतः किसान भाईयों की ऐसी धारणा है कि फल वृक्षों को पर्याप्त अंतर पर ही लगाकर अधिकतम उपज ली जा सकती है परन्तु बागों में फल वृक्षों की संख्या को बढ़ाकर भी अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार से फल वृक्षों को कम अन्तर पर रोपित कर अधिक उपज प्राप्त करना ही "सघन बागवानी" कहलाता है। सघन बागवानी का मुख्य उद्देश्य ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज क्षेत्रफल का समुचित उपयोग करना, पौधों के विकास एवं उपज में सही सामंजस्य स्थापित कर फलोत्पादन को बढ़ावा देना एवं उपलब्ध संसाधनों (जल, भूमि, उर्वरक, पौध रक्षा रसायन आदि) से अधिकतम् सम्भावित लाभ प्राप्त करना है। किसानों में इस तकनीक का व्यापक प्रचार–प्रसार न होने के कारण वे इसका लाभ नहीं उठा रहे हैं। अतः इस लेख का उद्देश्य किसानों को इस तकनीक के सम्बन्ध में व्यावहारिक जानकारी उपलब्ध कराना है।

सारणी–1 : भारत में प्रमुख फलों का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता (वर्ष : 2014–15)

फसल	क्षेत्रफल (लाख हे.)	उत्पादन (लाख–टन)	उत्पादकता (टन/हे.)
केला	803	297.25	37.00
आम	2516	184.31	7.3
नींबू वर्गीय प्रजाति	1078	114.17	10.3
पपीता	133	56.39	42.3
अमरूद	268	36.68	13.7
सेब	119	25.85	21.8
अनार	131	13.46	10.3
लीची	84	5.85	7.0
अन्य फल	1484	98.72	6.7
कुल	**7216**	**889.77**	**12.3**

सघन बागवानी : आवश्यकता/लाभ

1. कृषि योग्य भूमि का लगातार घटते जाना एवं भूमि के मूल्यों में लगातार बढ़ोत्तरी होना।
2. सामान्य बागों द्वारा कम उत्पादकता एवं लाभ।
3. सामान्य बागों में देर से फल प्राप्त होना।
4. फलों की मांग में लगातार वृद्धि होना।
5. सघन बागों द्वारा शीघ्र व अधिक उत्पादन।
6. सघन बागवानी में सूर्य के प्रकाश का समुचित उपयोग।
7. भूमि एवं संसाधनों का समुचित उपयोग।
8. बागों का आसान प्रबन्धन एवं निवेश पर शीघ्र वापसी।
9. कर्षण क्रियाओं, पौध सुरक्षा, फल तुड़ाई आदि कार्यों में आसानी।
10. सघन बागों द्वारा अधिक उपज एवं उच्च गुणवत्तायुक्त फलों का उत्पादन।

सघन बागवानी को प्रभावित करने वाले कारक

जलवायु – किसी स्थान की वार्षिक वर्षा, प्रकाश, तापक्रम तथा हवा के दबाव को उस स्थान की जलवायु कहा जाता है। जलवायु के इन सभी कारकों का प्रभाव सभी क्षेत्रों में समान रूप से नहीं पाया जाता है। सघन रोपण करने वाले क्षत्रों में तापक्रम फल–वृक्षों के अनुरूप हो तथा प्रकाश भी अधिक मात्रा में अधिक समय तक उपलब्ध होना चाहिये। आयताकार विधि में उत्तर–दक्षिण दिशा में पंक्तियों का स्थिति रखने से वर्गाकार विधि व पूर्व–पश्चिम दिशा में पंक्तियों का स्थिति की अपेक्षा सूर्य का प्रकाश अधिक मिलता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ही पौधों को लगाने का आपसी अंतर निर्धारित करना चाहिये। साथ ही साथ वर्षा का वितरण एवं उसकी मात्रा, वायुमंडल में नमी की उपस्थिति तथा वायु संचार भी उचित रूप से होना चाहिये।

प्रजाति का चयन – फल प्रजातियों की लम्बाई के अनुसार उनके लगाने का अंतर निर्धारित किया जाता है। ऐसी प्रजातियाँ जिनकी ऊँचाई अधिक होती है, अधिक अंतर देकर लगाई जाती है जबकि बौनी प्रजातियों को अपेक्षाकृत कम अंतर पर लगाया जाता है, इस प्रकार से सघन रोपण के लिये जो प्रजातियाँ चुनी

सारणी–2. सघन तथा सामान्य फलोद्यानों का तुलनात्मक अध्ययन

क्र. सं.	कारक	सघन फलोद्यान	सामान्य फलोद्यान
1.	वृक्ष लगाना	वृक्षों की पारस्परिक दूरी कम	वृक्षों की पारस्परिक दूरी अधिक
2.	प्रति हेक्टेयर वृक्षों की संख्या	अधिक	कम
3.	औद्यानिकी क्रियायें	अधिक	कम
4.	पौधों की देख–रेख	सुगम होती है।	अपेक्षाकृत कठिन होती है।
5.	उत्पादन लागत	अधिक पड़ती है।	कम पड़ती है।
6.	फलों का संवहन	सुगम होगा क्योंकि यांत्रिक रूप से किया जाता है।	कठिन होती है क्योंकि मजदूरों द्वारा किया जाता है।
7.	फलों के गुण	वृक्षों का आकार छोटा होने से पूर्ण प्रकाश मिलता है जिससे उच्च गुणवत्ता युक्त फल प्राप्त होते हैं।	वृक्षों का आकार बड़ा होने से प्रकाश की कम मात्रा उपलब्ध हो पाती है। अपेक्षाकृत निम्न गुणवत्ता वाले फल प्राप्त होते हैं।
8.	पादप नियंत्रकों का प्रयोग	अधिक होता है।	कम होता है।
9.	फलों की पैदावार	प्रति हैक्टेयर अधिक	प्रति हैक्टेयर कम
10.	शुद्ध लाभ	अधिक होता है।	अपेक्षाकृत कम होता है।

जाये वे कम बढ़ने व फैलने वाली होनी चाहिये। सघन बागवानी के लिये उपयुक्त फल प्रजातियों का संक्षिप्त विवरण तालिका–3 में दर्शाया गया है।

मूलवृन्तों का प्रयोग – सघन रोपण हेतु पौधे तैयार करने के लिये मूलवृन्त की लम्बाई तथा ओजस्वता अत्यन्त ही प्रभावकारी कारक माना जाता है। बौने मूलवृन्तों के प्रयोग से फल वृक्षों की बौनी व्यावसायिक प्रजातियाँ तैयार की जा सकती हैं, जिसको कम अन्तर पर सफलता पूर्वक लगाया जा सकता है। उत्तराखण्ड, जम्मू–कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में यह देखा गया है कि प्रायः सेब में बौने मूलवृतों की भूमि में पकड़ कमजोर होती है एवं फलों से लदे होने पर यह वृक्षों को उचित सहारा नहीं दे पाते जिससे तेज हवा आदि में वृक्षों के गिरने का भय बना रहता है। इन परिस्थितियों में अन्तः वृन्तों (इण्टर स्टॉक) में जैसे एम.एम.–106, एम.एम.– 109, एम.एम.–111, एम.–4 एवं एम.–7 का उपयोग लाभकारी पाया गया है। प्रमुख फल प्रजातियों में उपलब्ध बौने मूलवृन्तों का विवरण तालिका–3 में दर्शाया गया है।

सिंचाई एवं पोषण प्रबन्धन – सघन रोपण पद्धति में प्रति इकाई क्षेत्रफल अधिक पौधों का रोपण किया जाता है। अतः पानी एवं उर्वरक की अधिक आवश्यकता होती है। पौधों को लगाने के बाद थालों में उचित नमी बनाये रखने के लिये गर्मियों में एक सप्ताह एवं सर्दियों में 10 दिन के अंतर पर स्थान के मौसम एवं मिट्टी के प्रकार के अनुसार सिंचाई करनी चाहिये। घास अथवा काली पॉलीथीन की पलवार का प्रयोग करके कम पानी वाले क्षेत्रों में भी थालों में नमी को अधिक समय तक बनाये रखा जा सकता है। सघन बागवानी के लिये टपक सिंचाई पद्धति बहुत ही उपयुक्त पायी गयी है। पर्वतीय क्षेत्रों में पौधों को सिंचाई करना सबसे बड़ी बाधा है। इसके लिये सूक्ष्म सिंचाई विधि बहुत ही लाभदायक है। इस विधि में पानी की मात्रा को लम्बे समय के लिये कम अन्तराल पर बार–बार दिया जाता है। जिससे पौधे में उनकी आवश्यकता के अनुसार उचित नमी की मात्रा रखी जा सके। पोषण प्रबन्धन के लिये उर्वरकीकरण (फर्टिगेशन) विधि बहुत उपयुक्त है। इसमें सिंचाई करने वाले पानी में पोषक तत्वों को सूक्ष्म सिंचाई विधि की सहायता से पौधों तक पहुँचाया जाता है, जिससे खाद पौधे की जड़ में सही समय में प्रयोग करने में सहायता मिलती है। चूँकि पौधों से लगातार एवं अधिक मात्रा में फलत् लेनी होती है। अतः सघन बागवानी में नियमित एवं अधिक खुराक की आवश्यकता होती है। अतः आवश्यक है कि जितना फल उत्पादन किया जाये उसी अनुपात में खाद, उर्वरक, सूक्ष्म पोषक तत्व इत्यादि का प्रयोग करके मिट्टी एवं पौधों को स्वस्थ रखा जाये।

पौध–रोपण एवं सघनता – सघन बागवानी के लिये पौधों की रोपाई वर्गाकार या आयताकार विधि से की जा सकती है। पौध रोपण विधि और दूरी फसल के अनुसार अलग–अलग होती है। विभिन्न फलों में रोपण दूरी एवं सघनता सारणी–4 में दर्शायी गयी है। सघन बागवानी में आयताकार विधि का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है।

सधाई काट–छाँट एवं ढाँचा निर्माण – फल वृक्षों में सधाई द्वारा पौधों का ढाँचा तैयार किया जाता है। जिससे वे अधिक मजबूत बन सकें व फलों की अधिक पैदावार दे सकें। सघन फलोद्यानों में सामान्य फलोद्यानों की अपेक्षाकृत अधिक कृन्तन किया जाता है, जिससे उनकी वृद्धि को नियंत्रण में रखा जा

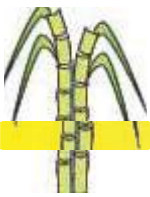

सारणी–3 : प्रमुख फलों में उपलब्ध प्रजातियाँ एवं मूलवृन्त

क्र. सं.	फसल	प्रजाति	मूलवृन्त
1.	आम	आम्रपाली दशहरी, लंगड़ा, चौसा, मल्लिका एवं अन्य व्यावासिक प्रजातियाँ	वलाइकोलम्बन
2.	अमरूद	लखनऊ–49, इलाहाबादी सफेदा, पंत प्रभात, ललित, श्वेता	सीडियम प्युमिलम, सीडियम *फ्राइडरिशथेलिएनम*, पूसा सृजन
3.	लीची	रोज सेन्टेड, सीडलेस, कलकतिया	–
4.	पपीता	पूसा नन्हा, पूसा ड्वार्फ, पंत पपीता–1	–
5.	सेब	स्पर प्रजातियाँ – रेड स्पर, ओरेगॉन स्पर, सिल्वर स्पर, रेडचीफ, स्टार क्रिमसन, रेड किंग, वेल स्पर, गोल्डर स्पर अन्य प्रजातियाँ – रेड डिलिशियस, गोल्डन डिलिशियस, बिनोनी, रॉयल, डिलिशियस, रोम ब्यूटी, लाल अम्बरी, चौबटिया अनुपम	**अत्यन्त बौना** : एम.–27 **बौना** : एम.–9, एम.–26, एम.एम.–116 **मध्यम औजस्वी** : एम.एम.–106
6.	आड़ू	रेड हैवन, रेड जून, जुलाई एल्बर्टा, (पर्वतीय क्षेत्र) शान–ए–पंजाब, शरबती सूर्खा, फ्लोरडासन, सहारनपुर प्रभात, शरबती (मैदानी क्षेत्र)	
7.	अनार	गणेश, कन्धारी, भगवा	–
9.	नाशपाती	चाइना, बग्गूगोशा, पंजाब गोल्ड, पंजाब नैक्टर (मैदानी क्षेत्र), कान्फ्रैन्स, फ्लेमिश ब्यूटी, मैक्सरेड बार्टलेट, विलियम बार्टलेट (पर्वतीय क्षेत्र)	इ.एम. क्वीन्स ए और सी.
10.	बेर	गोला, सेबिया, उमरान, कैथली, जोगिया, अर्ली उमरान, थार भुवराज, थार सेविका	*जिजिफस रोटन्डीफोलिया (झरबेरी), जिजिफस नुम्मुलेरिया*

सके। ऐसे उद्यानों में जुताई, वृक्षों की सुरक्षा इत्यादि क्रियायें यांत्रिक करनी होती है। काट–छाँट करने से पौधों को उचित प्रकाश प्राप्त होता है। जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बढ़ जाती है तथा पर्याप्त हवा के संचार से पौधों में कुल संग्रहित पोषक तत्वों का संतुलन बना रहता है। विभिन्न फल वृक्षों में कटाई–छंटाई की क्रियाये एवं ऊँचाई अलग–अलग होती है। सघन बागवानी में चूंकि पौधों के आकार को नियंत्रित करने के लिये नियमित काट–छाँट होती रहती है। अतः फल अच्छी गुणवत्ता के प्राप्त होते हैं।

वृद्धि नियामक का प्रयोग – आम, लीची, सेब आदि फल–पौधों की सघन बागवानी जिनमें प्रति वर्ष काट–छाँट की जा सकती है, पादप वृद्धि नियामक जैसे कल्तार (पैक्लोब्युट्राजाल) का प्रयोग करना चाहिये। प्रति वृक्ष 3–4 ग्राम सक्रिय तत्व की दर से घोल बनाकर जड़ों के पास सिंचाई करने से कल्लों में उसी वर्ष फूल देने की क्षमता बढ़ जाती है। परन्तु इसके नियमित प्रयोग से पौधे के स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव देखा गया है। अतः यदि वृद्धि नियामकों का प्रयोग दो वर्षों के अन्तराल पर किया जाये तो पौधों से लम्बे समय तक उपज ली जा सकती है।

असंगत मूलवृन्तों का प्रयोग – असंगत कलमी प्रजाति एवं मूलवृन्तों के प्रयोग से वृक्ष में बौनापन लाया जा सकता है। बेर में असंगत मूलवृन्त *जिजिफस नुम्मुलेरिया* के प्रयोग से वृक्षों में बौनापन देखा गया है, जिसका उपयोग सघन बागवानी में सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

समस्यायें

सघन बागवानी अपनाने में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जितनी बाग की सघनता बढ़ती जाती है, उसका प्रबन्धन करने में उतनी ही अधिक तकनीकी दक्षता एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। सघन बागवानी अपनाते समय उसमें आने वाली समस्याओं को अवश्य दृष्टिगत् रखना चाहिए, जिससे उनको उचित समय पर नियंत्रित किया जा सके।

- सघन बागवानी में वृक्षों की ओज का ह्रास शीघ्र हो जाता है जिससे इसके बागों की आयु सामान्य बागों की अपेक्षा कम रहती है।
- सघन फल उद्यान विपरीत वातावरणीय परिस्थितियों जैसे सूखा, जल भराव आदि को सहन करने में कम सक्षम होते हैं।
- सघन वृक्षों की जड़ों का फैलाव भूमि में कम होने के कारण ये वृक्ष नमी व पोषक तत्वों को मृदा की निचली परतों से अवशोषित करने में सक्षम नहीं होते है।
- उष्ण एवं उपोष्ण फल–वृक्षों के उच्च गुणवत्तायुक्त मूलवृन्तों की कमी है।

सघन बागवानी एक प्रणाली है जिसमें पौधों के आकार को सीमित मात्रा में बढ़ने और उससे उत्पादन लेने के सभी प्रयास किये जाते है। वे बागवानी फसलें जो आकार में छोटी एवं काट–छाँट के प्रति सहिष्णु होती हैं उनमें इसे आसानी से किया जा सकता है। आम, अमरूद, लीची, अनार, सेब आड़ू, पपीता आदि में सघन बागवानी भली–भाँति की जा सकती है। अतः इस तकनीक का लाभ उठाकर अपने बाग से अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहिये।

सारणी–4. फल–फसलों की प्रमुख प्रजातियाँ एवं सघन बागवानी का उत्पादकता पर प्रभाव

फल–फसल	सघनता		उत्पादन (टन प्रति हैक्टेयर)	
	सामान्य बागवानी	सघन बागवानी	सामान्य बागवानी	सघन बागवानी
आम	–	2.5 मी. × 2.5 मी. (आम्रपाली)	–	30
	10 मी. × 10 मी.	5 मी. × 5 मी.	08–10	30–40
अमरूद	6.8 मी. × 6.8 मी.	6 मी. × 3 मी. 3 मी. × 3 मी. 2 मी. × 1 मी. (मीडो बागवानी)	12–15	40–50
लीची	10 मी. × 10 मी.	5 मी. × 5 मी.	08–10	25–30
पपीता	2.5 मी. × 2.5 मी.	1.5 मी. × 1.5 मी. 1.25 मी. × 1.25 मी.	30–35	60–65
सेब–स्पर प्रजाति	5 मी. × 5 मी.	3 मी. × 3 मी.	25–30	60–65
सेब–सामान्य प्रजाति	7.8 मी.× 7.8 मी.	6 मी. × 4 मी. 5 मी. × 5 मी. 4.5 मी. × 4.5 मी. 3 मी. × 3 मी. 1.5 मी. × 1.5 मी. } उपलब्ध मूल वृन्त के अनुसार	20–25	50–60
आड़ू	6 मी. × 6 मी.	6 मी. ×3 मी. 3 मी. ×3 मी.	15–18	35–40
अनार	5 मी. × 5 मी.	5 मी. × 3 मी. 5 मी. × 2 मी. 3 मी. × 3 मी.	12–15	30–35

आम की सघन बागवानी

अमरूद की सघन बागवानी

उद्यान अनुसंधान केंद्र, पंतनगर पर आम एवं अमरूद की सघन बागवानी

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

कृषि में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव एवं निराकरण की पहल

यू.एस. गौतम, अतर सिंह, एस. के. दुबे, अजीत कुमार श्रीवास्तव एवं अवनीश कमार सिंह
भाकृअनुप–कृषि प्रौधोगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, कानपुर–208002

देश में कृषि व्यवस्था पूर्णतया वर्षा पर निर्भर है क्योंकि वर्षा ही सिंचाई के स्रोतों में पानी की उपलब्धता को निर्धारित करती है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा में लगातार बदलाव हो रहा है तथा अर्धशुष्क व शुष्क क्षेत्रों में कभी–कभी सामान्य से अधिक वर्षा की संभावना जताई जा रही है। मध्य भारत में ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि सन् 2050 तक ठंड के मौसम में होने वाली वर्षा में 10 से 20 प्रतिशत की कमी होगी। समय से वर्षा का न होने का भी कृषि उत्पादन पर खास प्रभाव पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, छत्तीसगढ़ में पूर्व मानसून वर्षा में कमी होती जा रही है तथा समुद्र तटीय क्षेत्रों में चक्रवातीय क्रियाओं द्वारा अधिक वर्षा से नुकसान की भी संभावना जताई जा रही है। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि भारत में सन् 2050 तक मानसून की वर्षा में 10 से 135 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है। जलवायु परिवर्तन से दलहनी एवं अनाज वाली फसलों में बांझपन बढ़ने की संभावना जताई जा रही हैं। इन्टर गर्वनमेन्ट पेनल ऑन क्लाइमेट चेन्जर (आई.पी.सी.सी.) के सन् 2007 में प्रकाशित रिपोर्ट के मुताबिक यदि तापमान 0.14–0.58°C प्रति दशक बढ़ता है तो उष्णीय फसलों में दाने की पैदावार में 5.11 प्रतिशत की कमी होने की संभावना है तथा सन् 2050 तक 11.46 प्रतिशत तक कमी हो सकती है। आई.पी.सी.सी. की चौथी आंकलन रिपोर्ट में कहा गया है कि फसल की उत्पादकता मध्यम व अधिक अक्षांश पर बढ़ सकती है परन्तु यदि तापमान में 1.3°C की वृद्धि होती है तो उत्पादन घट सकता है। भारत में सन् 2002–03 में ठण्ड के मौसम में तुशार पड़ने से तथा मार्च 2004 में गर्म हवाओं से कृषि उत्पादन पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव देखा गया है।

असामान्य मौसम का एक उदाहरण

विगत जनवरी 2005 में कई दिनों तक चली शीत लहर का प्रभाव, आम, केला, आँवला एवं पपीते पर देखा गया जिससे 22 से 46 प्रतिशत तक उत्पादन प्रभावित हुआ। राजस्थान के सीकर, झुंझनू, नागौर तथा चुरू में 25 दिसम्बर 2005 से 10 फरवरी 2006 तक आई तापमान में कमी के कारण गेहूँ व जौ के उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कृषि को प्रभावित करने वाले कीड़ो पर भी हो सकता है। कीट–पंतग, खरपतवार जलवायु के प्रति काफी उदासीन होते है। गर्मी अधिक होने तथा जलवायु में अधिक विभिन्नता वन पारिस्थिति को अधिक प्रभावित कर सकती है जिससे कीटों के बढ़ने व जंगलों में आग लगने की घटना बढ़ सकती है। इसी प्रकार वर्ष 2014 में हुदहुद के कारण अतिवृष्टि का प्रभाव तथा वर्ष 2015 में औसत से भी कम बारिश होना इस प्रकार बदलते जलवायु के कुछ दुष्प्रभाव है।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव को कम करने के उपाय

जलवायु परिवर्तन से होने वाले ह्रास को रोकने के लिए कृषि वानिकी एक कारगर जैविक अवशमन का साधन है। जलवायु परिवर्तन को नियंत्रण करने में कृषि वानिकी का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से योगदान होता हैं। जिसमें अप्रत्यक्ष लाभ, प्रत्यक्ष लाभों से ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। अप्रत्यक्ष लाभ सतत् लाभ होते है जो कि उत्पादन में टिकाऊपन लाते हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव है कि ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन कम किया जाय तथा वायुमण्डल से इसे किसी न किसी माध्यम से शोषित किया जाए, जिससे वैश्विक तापमान में हो रहे बढ़ोत्तरी को कम किया जा सके तथा जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सके।

अवशमन की युक्तियाँ

जलवायु परिवर्तन के अवशमन के लिए मुख्यता: निम्नवत युक्तियाँ है:

1. कार्बन का जो भी मौजूदा भण्डार है उसे सुरक्षित रखा जाए।
2. मौजूदा भण्डार को बढ़ाया जाए जिससे कार्बन चक्रण अधिक हो सके।
3. प्राकृतिक ईंधन के स्थान पर जैवपुंज (Biomass) से उर्जा उत्पादन किया जाय।
4. जैविक ईंधन का प्रयोग बढ़ाया जाए तथा गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का प्रयोग किया जाए जैसे– सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा आदि।

प्राकृतिक सिंक सुरक्षित करें:

- सिंक (कुण्ड) के रूप में वायुमण्डल, प्राकृतिक ईधन, भौमिक जैव पदार्थ व मृदा तथा समुद्र में उपस्थित है, जो कि कार्बन का उद्गम स्थान एवं कुण्ड भी है।
- यदि हम इन प्राकृतिक सिंक (कुण्ड) की सुरक्षा करें तो जलवायु परिवर्तन की समस्या को कम किया जा सकता है।

- कुछ प्राकृतिक संसाधन ऐसे हैं जिसे मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए अधिक दोहन कर रहा है जैसे, प्राकृतिक वनस्पति, मृदा एवं जल।
- कार्बन चक्रण का अभिप्राय यह है कि वनस्पति एवं मृदा में जो भी कार्बन है उसकी मात्रा को बढ़ाया जाय जिससे वायुमण्डल में उपस्थिति कार्बन डाईऑक्साइड की सान्द्रता को कम किया जा सके।
- जो भी वन इस समय मौजूद है उसमें कार्बन मूल को कृषिवानिकी के साथ अपनायें।
- वन का संरक्षण तथा क्षीण वन, जिसका जैवपुंज व मृदा कार्बन कम है, उसमें कृत्रिम पुनर्जनन के द्वारा कार्बन चक्रण को बढ़ाया जा सकता हैं।
- कृषि भूमि में कृषिवानिकी को अपनाकर वृक्ष संरक्षण को बढ़ाया जा सकता है, जिसके पर्यावरण संरक्षण के साथ–साथ मनुष्य की जरूरतों को भी पूरा किया जा सकता है।
- कार्बन निर्धारण का उद्देश्य है कि उत्पाद के लिए जैविक कार्बन के प्रयोग को प्राकृतिक ईधन आधरित ऊर्जा व सीमेंट आधारित उत्पाद के स्थान पर जैविक उत्पाद का प्रयोग किया जाए, जैसे निर्माण कार्यो में सीमेन्ट, लोहा आदि के स्थान पर लकड़ी का प्रयोग तथा प्राकृतिक ईधन को जैविक ईधन से प्रतिस्थापित किया जाए। लम्बी अवधि की यदि बात करें तो ग्रीन हाउस गैस प्रभाव को कम करने लिए प्रतिस्थापन प्रबंधन की बहुत अधिक सम्भावना है।

जलवायु समुत्थानशील प्रौद्योगिकियों के प्रदर्शनों का अनुभव

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को विश्व भर में देखा जा रहा है। लेकिन भारत जैसे देशों में उच्च जनसंख्या के दृश्य में संवेदनशील कृषि पर अधिक निर्भर करता है जहाँ पर प्राकृतिक संसाधनों और कमजोर मुकाबला तंत्र पर अत्यधिक दबाव है। भारत में पिछले 100 वर्षों से तापमान में 0.60 सेल्सियस बढ़ने की प्रवृत्ति का अनुमान किया गया था। इस प्रकार अनुमानित प्रभावों की खाद्य सुरक्षा को प्रभावित फसलों की उपज के उतार–चढ़ाव के लिए आगे बढ़ जाने की संभावना है। महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभावों को मध्यम अवधि (2010–39) जलवायु परिवर्तन के साथ पेश किया गया है। उपज में 4.5–9 प्रतिशत की कमी का तापक्रम के वितरण और परिणाम पर निर्भर करता है। लम्बे समय से जलवायु परिवर्तन के भविष्यवाणी के प्रभाव (2070–2099) और भी अधिक हानिकारक होंगे एवं फसल की पैदावार में 25% या उससे भी अधिक की हानि होगी अगर कोई अनुकूल कदम न उठाए गए।

कृषि उत्पादकता को बनाये रखना सभी के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका विशेष रूप से प्रभाव गरीब, छोटे और सीमांत किसानों पर अधिक प्रभाव पड़ेगा। यहाँ तक कि लम्बे समय से जलवायु परिवर्तन के परिणामों और तेजी से पूर्ण अनुकूलन के अभाव में गरीबों की आजीविका की सुरक्षा पर गंभीर खतरा हो सकता है। जलवायु परिवर्तन के बाद से फसलों, पशुओं, पानी की कमी, मृदा क्षरण की तरह विभिन्न अजैव, तनाव और जैव विविधता की तरह नुकसान पर हमारे देश के लिए जटिल चुनौतियों की स्थिति में एक केन्द्रित और लम्बी अवधि के अनुसंधान के लिए विशिष्ट समस्याओं के समाधान खेजने की आवश्यकता है।

देश के संवेदनशील कृषि क्षेत्रों में जलवायु समुत्थानशील प्रौद्योगिकियों से परिचय करायेंगे, जिससे इस परियोजना को विकसित और लोकप्रिय करने का प्रयास होगा। इस योजना के अन्तर्गत जिलों और मण्डलों मे सूखा, बाढ़, ठंड, लू, गर्म मौसम की स्थित आदि में जलवायु परिवर्तनशीलता से निपटने में मदद मिलेगी। हालांकि योजना का लक्ष्य देश के सभी जलवायु क्षेत्रों कमजोर क्षेत्रों, वर्षा आधारित तटीय और पहाड़ी क्षेत्रों में छोटे और सीमान्त किसानों में ध्यान केन्द्रित करने पर और अधिक लाभ होगा।

जलवायु समुत्थानशील कृषि पर राष्ट्रीय पहल परियोजना के अर्न्तगत वर्ष 2012–13 से 2015–16 में उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड के क्रमशः 11 व 2 कृषि विज्ञान केन्द्रों ने कृषि तकनीकी प्रदर्शन पर कार्य किया। वर्ष 2014–15 से इस परियोजना में मृदा लवणता जैसी समस्या को भी ध्यान रखते हुए इस प्रकार की भूमि एवं प्रभावित क्षेत्रों के अन्तर्गत आने वाले कृषि विज्ञान केन्द्रों पर भी इस परियेजना का क्रियान्वयन शुरू हो गया है। उतर प्रदेश में इस प्रकार की समस्या के उचित हल खोजने के लिए दो कृषि विज्ञान केन्द्रों को जिम्मेदारी सौंपी गई है। इस प्रकार कुल मिलाकर 15 कृषि विज्ञान केन्द्रों पर इस परियोजना का संचालन हो रहा है। इस परियोजना के तहत वर्ष 2015–16 तक कुल 74845 किसान लाभान्वित हुए हैं, जिसमें प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन में 6432; फसल उत्पादन में 11624; पशुधन एवं मात्स्यिकी उत्पादन में 8723; संस्थानिक तकनीक मध्यवर्तन में 6497; सामर्थ्य विकास में 16280 व प्रसार कार्यों से 25289 किसानों को सेवाएं प्रदान की गईं।

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधनः कूड़ पर सरसों की फसल; ढैंचा का हरी खाद के रूप में प्रयोग; धान की नर्सरी का मशीन द्वारा रोपण; जीरो टिलेज विधि द्वारा गेहूँ की बोवाई; धान के साथ मछली उत्पादन; जल संचय संरचना; उर्वरको का संतुलित प्रयोग; वर्षा जल का संचयन; एलडीपीई का तालाबों में प्रयोग; सिंचाई के विभिन्न तरीकों का प्रयोग; फौव्वारा विधि द्वारा सिंचाई करना; नाडेप और वर्मीकम्पोस्ट गड्ढ़ें बनाना; पुराने तालाबों का नवीनीकरण कर मछली उत्पादन; किसानों के खेतों व सामुदायिक भूमि पर कृषि वानिकी एवं फल पौधों का रोपण। 20996 हेक्टेअर क्षेत्र में किया गया जिससे 6432 किसान लाभान्वित हुए तथा 7897 फलदार पौधे भी लगाये गये।

सारणीः जलवायु समुत्थानशील कृषि पर राष्ट्रीय पहल कार्य विवरण – 2015–16

क्र. सं.	मॉड्यूल	लाभार्थी	क्षेत्रफल (हे.)/ पाठ्यक्रमों की संख्या	फल वृक्ष पशु
1.	प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन	6432	20996	7897
2.	फसल उत्पादन	11624	2274.6	1287
3.	पशुधन तथा मत्स्य पालन	8723	152.8	21031 -7260
4.	संस्थागत कार्य	6497	1295.6	
5.	क्षमता विकास	16280	601	
6.	प्रसार क्रियाएँ	25289	1191	
	कुल	**74845**	**24719.1/ 1792**	

फसल उत्पादनः बाढ़/सूखा/तापमान सहनशील दलहनी, तिलहनी तथा खाद्यान्न फसलों की प्रजातियों; सतत ऊष्मीय दबाव के क्षेत्र में रबी फसलों की बुआई के समय में बदलाव; धान की एसआरआई विधि से खेती; धान तथा इनकी सीधी बुआई के सम्बन्ध में तकनीकी प्रदर्शन; देर से बरसात आने की स्थिति में सार्वजनिक पौधशाला का विभिन्न तिथियों में बोवाई तथा स्थान विशेष के लिए अन्तःफसली पद्धतियों का प्रदर्शन। वातावरण की बदलती परिस्थितियों में उकठा रोग अवरोधी प्रजातियों का प्रदर्शन; दलहनी फसलों, विशेषकर ग्रीष्म कालीन, पर प्रदर्शन तथा देर से गेहूँ बोवाई की प्रजातियों पर प्रदर्शन। सतही जल के ह्रास की स्थिति में गन्ने की प्रजातियों को नाली व कूड़ विधियों में प्रदर्शित किया गया। गुणवत्तायुक्त प्रोटीन मक्के की प्रजाति का प्रदर्शन; बाढ़ के बाद संभावित क्षेत्रों में मौसमी सब्जियों तथा पोषण वाटिका का प्रदर्शन। गिरते जल स्तर वाले क्षेत्र में गेहूँ की फसल के बदले सरसों पर तकनीकी प्रदर्शन। इस प्रकार 2274.6 हेक्टेयर क्षेत्रफल पर आयोजित किये गये जिसमें 11624 किसानों को लाभ मिला।

पशुधन तथा मत्स्य पालनः चारा उत्पादन; दाना एवं चारा भण्डारण की विधियों तथा पशुओं में हार्मोन उपचार; पशु स्वास्थ्य शिवरों का आयोजन; पशुओं में टीकाकरण व कृमि की रोकथाम तथा पशुपालन हेतु उचित स्थान का प्रदर्शन; पानी की कमी तथा अधिकता की स्थिति में मछली पालन; तालाबों का प्रबंधन; घर के पीछे मुर्गी पालन तथा नस्ल सुधार पर 152.8 हेक्टेयर पर चारा उत्पादन से 8723 पशुपालक लाभान्वित हुए।

संस्थागत कार्यः बीज बैंक, ग्रामीण स्तरीय मौसम केन्द्र के माध्यम से मौसम की जानकारी, मूल्यांकन समिति का गठन तथा कृषि यंत्रों का किराये पर प्रयोग, आदि नये कार्यों को संचालित किया गया जिससे 6497 किसान लाभान्वित हुए।

क्षमता विकासः विभिन्न विषयों पर कुल 601 पाठ्यक्रम आयोजित किये गये जिससे 16280 किसान लाभान्वित हुए।

इस परियोजना के 13 सहभागी कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा 1191 प्रसार क्रियाओं का आयोजन किया गया जिससे 25289 किसान लाभान्वित हुए। प्रसार कार्यक्रम जैसे प्रक्षेत्र दिवस; वैज्ञानिक कृषक क्षेत्र भ्रमण; किसान मेला एवं गोष्ठी; प्रदर्शन भ्रमण; मोबाईल द्वारा सलाह; कृषि सलाह सेवा; जागरुकता कार्यक्रम; कृषक समूह, निरीक्षण दल भ्रमण; सामूहिक चर्चा; विधि प्रदर्शन; किसान दिवस, इत्यादि आयोजित किये गये।

अगर हिंदुस्तान को सचमुच आगे बढ़ना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी और भाषा को नहीं मिल सकती है

–महात्मा गाँधी

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

गन्ने में ग्रीष्मकालीन बेधकों का समेकित प्रबंधन

अरूण बैठा एवं एम आर सिह

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना फसल में लगने वाले कीटों की संख्या अन्य फसलों की तुलना में अधिक होती हैं। बुवाई से काटने तक, गन्ने के सभी भागों में कभी न कभी कीटों का प्रकोप होता रहता है। उत्तर प्रदेश में गन्ने पर मुख्यतः आठ प्रकार के विभिन्न बेधकों का प्रकोप पाया जाता है। इनमें से कुछ का आक्रमण सीमित क्षेत्र में तथा कुछ का पूरे प्रदेश में देखा गया है। इन बेधकों में कुछ प्रजातियाँ ग्रीष्म ऋतु में अधिक सक्रिय रहती है तथा कई प्रजातियाँ वर्षा तथा उसके बाद अधिक क्षति पहुँचाती हैं।

ग्रीष्मकालीन बेधकों में मुख्य रूप से अंकुर बेधक, गुलाबी बेधक, हरा बेधक तथा मूल बेधक अंकुरित पौधों को क्षति पहुँचाते है। इन बेधकों का प्रकोप मार्च से मध्य जुलाई तक पोरी बनने से पहले रहता है। प्रारम्भिक अवस्था में लगने वाले कीटों से अंकुरित किल्लों का विकास प्रभावित होता है। पैदावार में अधिक वृद्धि के लिए इनकी उचित रोकथाम करना अति आवश्यक है।

अंकुर बेधक *(Chilo infuscatellus)*

गन्ना फसल का जमाव पूर्ण होने के बाद पौधा तथा पेड़ी गन्ने में गर्मी के दिनों में बीच का गोंफ सूख जाता है, तथा किनारे की दोनों पत्तियाँ हरी रहती हैं। यह अंकुर बेधक के कारण होती है। बेधक की सूँड़ी मटमैले रंग की होती है, पीठ पर बैंगनी रंग की पाँच धारियाँ पायी जाती हैं। मादा पतंगा रात्रि में पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर झुण्ड में अण्डे देती है। अण्डे अधिकतर पौधों की निचली प्रथम तीन हरी पत्तियों पर ही मध्य धारी के पास देते हैं। एक मादा प्रथम रात्रि में लगभग 400 अण्डे देती है। प्रत्येक समूह में 20–60 अण्डे होते हैं। अण्डों से नवजात सूँड़ी 5–6 दिन में प्रातःकाल निकलते हैं। नवजात सूँड़ी तेजी से निकलकर पौधे की प्रथम लिपटी हुई पत्तियों (लीफ–शीथ) में पहुँच जाती है। लिपटी हुई पत्तियों के अन्दर से सूंडी कुछ समय तक खाती रहती है, बाद में तने पर कई स्थानों पर काटते हुए तने में छेद कर घुस जाती है। लगभग 10 दिनों के खाने के बाद बीच की गोफ सूखकर पीली हो जाती है, जिसे डेडहार्ट (dead heart) या मृतसार भी कहते हैं। क्षतिग्रस्त पौधे धीरे–धीरे सूख जाते हैं। इस तरह से यह बेधक पौधे की आरम्भिक अवस्था में ही ज्यादा नुकसान पहुँचाती है। क्षतिग्रस्त पौधे के सबसे नीचे के अंकुरित आँख से नये पौधे निकलते हैं जो बाद में गन्ने में परिवर्तित हो जाते हैं। इसके कारण कृषकों के बीच ऐसा विश्वास पनप जाता है कि इस बेधक के आक्रमण पौधे के शुरू की अवस्था में लाभदायक होते हैं क्योंकि ज्यादा कल्ले निकलने के कारण उपज में वृद्धि होती है। जबकि कुछ कृषक इसे शुरू की अवस्था में ज्यादा पौधे क्षतिग्रस्त होने के कारण उपज में कमी बताते हैं। पूर्ण विकसित सूंडी पतंगे के निकलने के लिए तने को काटकर एक छिद्र बनाती है तथा तने के अन्दर ही छिद्र के पास शंकु (प्यूपा) में परिवर्तित हो जाती है जिसमें से 8–10 दिन के अन्तराल पर वयस्क पतंग (मॉथ) निकल आता है। एक जीवन चक्र लगभग 29–40 दिन में पूर्ण होता है। अंकुर बेधक की सूँड़ी चलायमान (migratory) होती है। एक गन्ने को क्षति पहुँचाने के बाद दूसरे गन्ने को क्षति पहुँचाते हैं। प्यूपा बनने से पहले एक सूंडी 3–4 पौधे को क्षति पहुँचाते हैं। इसी चलायमानता के कारण कभी–कभी 2–3 छिद्र या उससे ज्यादा क्षतिग्रस्त गन्ने पर दिखाई देती है। उत्तर प्रदेश में इस कीट की वर्ष में छः पीढ़ियाँ होती हैं। ज्यादा प्रकोप अप्रैल, मई एवं जून महीने में होता है, जब तापमान (36–41°C) और कम आर्द्रता (40–50%) हो।

अंकुर से क्षतिग्रस्त गन्ने

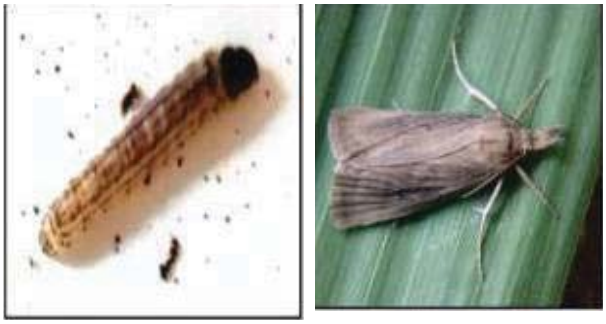

बेधक की सूंडी एवं वयस्क

गुलाबी बेधक *(Sesamia inferens)*

गुलाबी पतंगें (वयस्क) हल्के भूरे रंग की होती है। इसकी सूँड़ी धारी रहित उपर से गुलाबी और नीचे से सफेद होती है।

मादा पंतगा रात में कई पौधों के लीफ शीथ पर 2 या 3 कतारों में लगभग 400 अण्डे देती है। कभी कभी अण्डे भूमि पर भी देते हैं। सूँड़ी नीचे की ओर लीफ शीथ और तने के बीच रहकर कुछ समय तक खाने के बाद गन्ने के आधार के पास भूमि से थोड़ा ऊपर एक या दो सीधे छेद बनाकर अन्दर घुसकर खाती है। छेद से काफी मात्रा में गीला पदार्थ निकलता रहता है। अन्दर के कोमल भाग को खाने से गन्ने की बीच की गोफ सूख जाती है। इससे ग्रसित गोफ (मृतसार) आसानी से खोजी जा सकती है। तने पर 1–2 छिद्र अक्सर देखने को मिलते हैं। एक जीवन चक्र 36–60 दिन में पूरा होता है। इसका प्रकोप फरवरी से दिसम्बर तक लगभग सभी प्रदेशों में कहीं ज्यादा और कहीं कम होता है, लेकिन फरवरी से जून तक ज्यादा सक्रिय रहता है।

गुलाबी बेधक से क्षतिग्रस्त गन्ने

गुलाबी बेधक की सूँड़ियाँ

हरा बेधक (*Raphimetopus ablutellus*)

इस बेधक की सूँडी हरे रंग की होती है और इसलिए अन्य बेधकों की सूँड़ी से इसे आसानी से पहचाना जा सकता है। इसका पतंगा (वयस्क) भूरे रंग का हल्का लाली लिए होती है। सूँड़ी का वक्षीय भाग स्लेटी रंग तथा उदरीय भाग गहरे हरें रंग का होता है। इसके शरीर पर कोई धारी नही पायी जाती है। अन्य बेधकों की सूँड़ी की तरह इसकी सूँड़ी की भी पाँच अवस्थायें होती हैं। प्रथम अवस्था की सूँड़ी का रंग सफेद, द्वितीय अवस्था में हरा तथा उदर हल्का गुलाबी होता है तृतीय, चर्तुथ तथा पंचम अवस्था ही सूँड़ी गहरे हरे रंग की होती है।

सूँड़ी छोटे पौधों के आधार के पास 1–2 छेद बनाकर अन्दर जाकर खाती है फलवस्वरूप अंकुर बेधक के समान मृतसार बनता है। लगभग 20–25 दिन में सूँड़ी पूर्ण विकसित हो जाती है जो भूमि के अन्दर ककून बनाकर उसमें शंकु (प्यूपा) में परिवर्तित हो जाती है। जिससे मार्च के प्रथम सप्ताह में वयस्क पंतगे निकलकर प्रथम पीढ़ी आरम्भ करता है। द्वितीय पीढ़ी मध्य अप्रैल से आरम्भ होकर मध्य मई तक पूर्ण होती है। तृतीय पीढ़ी की सूँड़ी जून के अंत तक क्षति पहुँचाती रहती है और इसी रूप में गन्ने के जड़ों में अगली फरवरी तक निश्क्रिय अवस्था में पड़ी रहती है। इस कीट से मार्च से जून तक क्षति होती है और अप्रैल में इसका प्रकोप अधिक होता है। इस कीट की वर्ष में 3 पीढ़ियाँ पायी जाती है।

हरा बेधक से क्षतिग्रस्त गन्ना

मूल बेधक (*Emmalocera depressella*)

बेधक की यह प्रजाति भूमि के अंदर के तने के भागों को क्षति पहुचाती है। अतः जैसा कि इसका नाम है यह वास्तविक रूप से जड़ों को क्षति नही पहुचाती है। इस बेधक की सूँड़ी सफेद रंग की होती है जिसके सिर का रंग पीलापन लिए भूरा होता है व्यस्क पतंगे रात में निकलते है तथा दिन में लीफशीथ के अन्दर छिपे रहते है। इस बेधक की वर्ष में 3 पीढ़ियाँ पायी जाती है। सर्दी की सूँड़ियों से मार्च के अन्तिम सप्ताह में वयस्क पतंगे निकलकर जीवन चक्र आरम्भ करता है। इस पीढ़ी के अण्डे अप्रैल में देते है जिनसे निकली सूँड़ी जून के प्रथम सप्ताह तक सक्रिय रहती है। शंकु से मई के अन्तिम सप्ताह से जून के तृतीय सप्ताह तक व्यस्क निकलने लगते है जो दूसरी पीढ़ी के लिए अंडे देती है इसकी सूँड़ी अगस्त तक सक्रिय रहती है।

बेधक की यह प्रजाति भूमि के अन्दर तने के भागों को क्षति पहुँचाती है। नवजात सूँड़ियाँ पत्तियों के किनारे–किनारे चलकर तने पर भूमि की सतह के पास पहुँचकर तने के अन्दर घुस जाती है। अंकुरण के समय इसका प्रकोप आसानी से पहचाना जा सकता है। इस समय ग्रसित पौधों की मध्य गोफ सूख जाती है, परन्तु वर्षा में जब गन्ने कड़े हो जाते है, तब ग्रसित पौधों के बाहरी लक्षणों से नहीं पहचाना जा सकता है।

इस बेधक द्वारा ग्रसित अंकुरो की सूखी हुई गोफ खीची नही जा सकती है और न उसमें दुर्गन्ध ही आती है, तने की सतह पर केवल एक छिद्र मिलता है और लीफ शीथ के अन्दर सूँडी द्वारा क्षति के निशान भी नही मिलते। अधिक ताप तथा शुष्क वातावरण इस बेधक की वृद्धि के लिए अनुकूल होते हैं।

समेकित कीट प्रबंधन

ग्रीष्मकालीन बेधक

(i) ग्रसित पौधों को भूमि की सतह से काटकर नष्ट कर देना चाहिए।

(ii) आरम्भ में गन्ने की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाकर समय–समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

(iii) गन्ना बोते समय फोरेट 10 जी 25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर या रिजेन्ट 0.3 प्रतिशत 25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर से नाली में प्रयोग करें।

(iv) पेड़ी में या शरद में बोई गई फसल में पौधे की जड़ों के पास फोरेट 10 जी 25 किग्रा./हेक्टेयर या फ्यूराडान 3 जी 33 किग्रा./हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करें। गुलाबी, हरा और मूल बेधक के लिए कीटनाशक का प्रयोग अप्रैल से मई के बीच करें।

(v) अण्ड परजीवी, *ट्राइकोग्रामा किलोनिस* 50000 वयस्क प्रति हेक्टेयर की दर से अगेती बेधक के लिए मार्च से जून तक 7–10 दिनों के अन्तराल पर छोड़ें।

मूल बेधक से क्षतिग्रस्त गन्ने

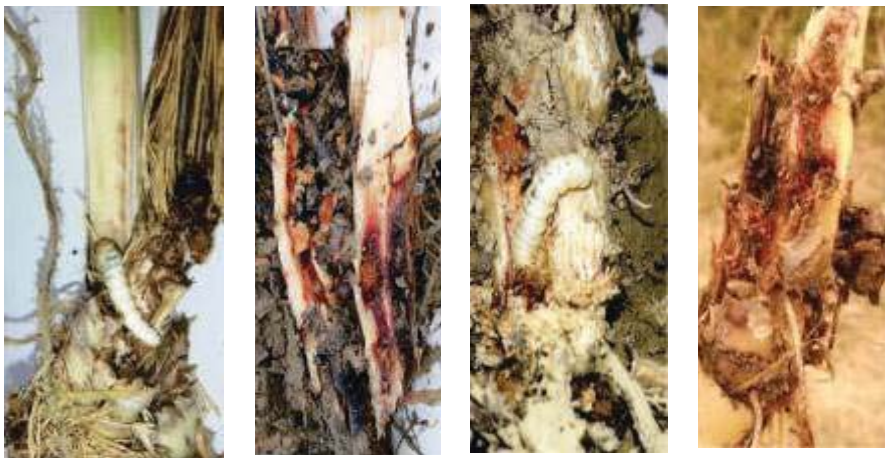

बेधक की सूँडी एवं क्षतिग्रस्त जड़

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

दलहनी फसलों की कीटों से सुरक्षा

विनोद कुमार सिंह, ऋचा सिंह, डी. के. उपाध्याय एवं सुरेश सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र अम्बरपुर, सीतापुर

दलहनी फसलों का हमारे दैनिक जीवन में बहुत योगदान है। इसमें 20 से 24 प्रतिशत प्रोटीन पायी जाती है। इसके अतिरिक्त रेशा, विटामिन, खनिज लवण जैसे–लौह, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, जिंक आदि पाया जाता है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। दलहनी फसलें भूमि को आच्छादन प्रदान करती हैं, जिससे भूमि का क्षरण कम होता है, साथ ही नत्रजन स्थिरीकरण का नैसर्गिक गुण होने के कारण वायुमण्डलीय नत्रजन को अपनी जड़ों में स्थिर करके मृदा उर्वरता को बढ़ाती हैं। विश्व में दलहन की खेती 77.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है, जिससे 907.7 किलोग्राम/ हेक्टेयर उत्पादकता के साथ 70.41 मिलियन टन उत्पादन प्राप्त होता है। संसार में दलहन की खेती मुख्य रूप से भारत, कनाडा, म्यांमार, चीन, ब्राजील, ऑस्ट्रेलिया, रूस, यूक्रेन, यू.एस.ए., फ्रांस तथा तंजानिया में की जाती है। भारत दुनिया में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक एवं उपभोक्ता देश है। हमारे देश में दलहन की खेती 23.26 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है, जिससे 789 किलोग्राम/हेक्टेयर उत्पादकता के साथ 18.34 मिलियन टन उत्पादन प्राप्त होता है। हमारे देश में दलहन की खेती मुख्य रूप से मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान, गुजरात राज्यों में की जाती है। दलहनी फसलों जैसे– चना, अरहर, उर्द, मूँग, मसूर व मटर की खेती प्रमुख रूप से की जाती है। इन फसलों पर लगभग 150 प्रकार के कीड़े आक्रमण करते हैं, परन्तु लगभग एक दर्जन कीटों द्वारा इन फसलों को प्रमुख रूप से हानि पहुँचती है। अतः इन कीटों का सफलतापूर्वक नियन्त्रण करके ही अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

अरहर के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबन्धन

पत्ती लपेटक कीटः इस कीट की सूड़ियाँ पीले रंग की होती हैं जो पौधे की चोटी की पत्तियों को लपेट कर उसी में छिपकर पत्तियों को खाती हैं।

पत्ती लपेटक कीट की सूड़ी एवं प्रकोपित पौधा

प्रबंधन

- इस कीट का प्रकोप पौधे की प्रारम्भिक अवस्था में ही होता है। जो बाद में स्वतः समाप्त हो जाता है। अतः इसके नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

अरहर का मत्कुण (तुर पॉड बग) : इस कीट का प्रकोप अरहर के अतिरिक्त लोबिया एवं सेम पर भी होता है। इसके शिशु तथा प्रौढ़ दोंनों ही पौधों के कोमल भागों, पत्तियों, फलियों एवं कलिकाओं से रस चूस कर पौधों को कुप्रभावित करते हैं। प्रकोपित फलियाँ सिकुड़ी हुई तथा पीले धब्बेयुक्त दिखाई देती हैं। इनमें पाये जाने वाले दाने आकार में छोटे हो जाते हैं जिससे फसल की उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

प्रौढ़ कीट लगभग 20 मिमी. लम्बा भूरे रंग का होता है। इसका प्रोनोटम काँटेदार तथा पैर के फीमर का निचला भाग फूला हुआ होता है। प्रारम्भिक अवस्था में शिशु कीट लाल रंग के काँटेदार थोरेक्स वाले होते हैं। मादा कीट पत्तियों, पुष्प कलिकाओं अथवा फलियों पर 3–15 के समूह में अक्टूबर माह में अण्डे देती हैं जिससे आठ दिन पश्चात नवजात शिशु निकलकर समूहों में पौधों के कोमल भागों पर पहुँच जाते हैं तथा रस चूस कर पौधों को कमजार करते रहते हैं। ये शिशु दो से तीन सप्ताह में प्रौढ़ में परिवर्तित हो जाते हैं तथा ये अक्टूबर से मई तक सक्रिय रहते हैं।

फलियों पर अरहर के मत्कुण कीट का प्रकोप

प्रबंधन

- फलियों/पत्तियों पर दिये गये अण्डों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।
- शिशुओं के समूहों को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।

- क्लोपायरीफास 30 ई.सी. 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.25 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

तुर प्लूम मॉथ (अरहर का कलगी कीट) : इस कीट की गिडारें ही फसलों को हानि पहुँचाती हैं। गिडारें छोटी हरे रंग की तथा पूर्ण विकसित होने पर 1.25 सेंमी. लम्बी हरे भूरे रंग की तथा शरीर छोटे छोटे बालों से युक्त हो जाती है। नवजात सूड़ियॉ प्रारम्भ में फलियों को खुरचकर खाती हैं तथा बाद में फलियों में छेद बना कर अन्दर के दाने को खाती हैं जिससे कभी कभी पूरी फली दाना विहीन हो जाती हैं। यदा कदा ये सूड़ियॉ कलियों पर भी आक्रमण करते पायी गयी हैं।

मादा कीट पौधे के कोमल भागों पर एकल रूप में 17 से 19 अण्डे देती हैं जिनसे नवजात सूड़ियाँ निकलकर फलियों पर आक्रमण करती हैं। पूर्ण विकसित सूंड़ी बाद में फली में अथवा फली की सतह पर प्यूपा में परिवर्तित हो जाती है जिससे 3–12 दिनों में प्रौढ़ निकल आता है।

अरहर के प्लूम मॉथ की सूँड़ी, प्रकोपित फली एवं वयस्क कीट

प्रबंधन

- फलियों पर उपस्थित सूँड़ी तथा प्यूपा को नष्ट कर देना चाहिए।
- इन्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. 0.5 मिली./लीटर पानी अथवा स्पाइनोसैड 45 एस.सी. 0.2 मिली. प्रति लीटर पानी अथवा क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.25 मिली./लीटर पानी की दर घोलकर छिड़काव करने से कीट नियंत्रित हो जाता है।

अरहर की फली मक्खी : इस कीट का प्रौढ़ चमकदार काले रंग का तथा आकार में घरेलू मक्खी से छोटा होता है। मादा अपने उदर के पिछले भाग को कोमल फलियों में धॅसा कर अण्डे देती है। इन अण्डों से पतले एवं छोटे मैगट निकलकर विकसित हो रहे दानों को खाती हैं। पकी हुई फलियों को ध्यान से देखने पर लगभग एक मिमी. व्यास के झिल्ली चढ़े हुए छेद देखे जा सकते है। भयंकर कीट प्रकोप की दशा में 60 प्रतिशत तक उपज प्रभावित हो जाती है।

प्रबंधन

- फली बनना प्रारम्भ होते ही प्रत्येक सप्ताह में कम से कम 50 फलियों का प्रति खेत की दर से निरीक्षण करना चाहिए तथा 5 प्रतिशत प्रकोप दिखाई देते ही एसीफेट 75 एस.पी. 1.0 ग्राम + 10 ग्राम गुड़ प्रति लीटर पानी अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 2.0 मिली. + 10 ग्राम गुड प्रति लीटर पानी का छिड़काव करना चाहिए। निरीक्षण का कार्य लगातार करते रहना चाहिए तथा 5 प्रतिशत प्रकोप होने पर पुनः छिड़काव कीटनाशी बदलकर करना चाहिए।

अरहर की फली मक्खी, सूँड़ी व प्रकोपित दाना

अरहर एवं चने का फली बेधक : इस कीट का प्रकोप अरहर, चना, टमाटर, तम्बाकू एवं कच्चे भुट्टों पर मुख्य रूप से होता है। इस कीट की सूड़ियाँ ही फसल को हानि पहुँचाती हैं। अरहर एवं चने पर इस कीट का प्रकोप फूल आने से लेकर फसल कटने तक बना रहता है। प्रारम्भिक अवस्था में जब पौधों में फलियाँ नहीं होती हैं, सूड़ियॉ पत्तियों को ही खाती हैं परन्तु फलियाँ लगने के साथ ही साथ ये फलियों पर आक्रमण करके दाने में छेद बनाकर अंदर घुसकर खाना प्रारम्भ कर देती हैं। जब इनका शरीर फलियों में छिपने योग्य नहीं रहता है, तब ये अपना अगला भाग फली के अन्दर डाल कर दाने को खाती रहती हैं। एक सूँड़ी 30 से 40 फलियों को प्रकोपित करने की क्षमता रखती है।

प्रौढ़ कीट हल्के भूरे रंग का तथा शरीर भूरे पीले रंग के बालों से युक्त होता है। इसके अगले पंख के मध्य में एक गुर्दे के आकार का धब्बा होता है। पीछे के पंख पीले एवं सफेद तथा वाह्य किनारा गहरा भूरा अथवा काला रंग लिये हुए होता है। मादा कीट कोमल टहनियों, कलियों एवं पत्तियों पर एकल रूप से मक्खनी रंग के अंडे देती है जिससे मक्खनी अथवा पीले रंग की सूड़ियाँ निकलकर फसल को नुकसान पहुॅचाने लगती हैं। पूर्ण विकसित सूँड़ी लगभग 30 मिमी. लम्बी हरी, गहरे हरी, भूरी हरी अथवा स्लेटी रंग की तथा मध्य पृष्ठ भाग एवं बगल में हल्की पीली धारी लिए होती है। पूर्ण विकसित सूँड़ी जमीन में मिट्टी का खोल बनाकर प्यूपा में परिवर्तित हो जाती हैं।

प्रबन्धन

- फसल कटने के तुरन्त बाद खेत की गहरी जुताई कर देने से प्यूपा नष्ट हो जाते हैं।
- अरहर की बुवाई समय से (अगेती अरहर 15 से 30 जून तथा पिछेती अरहर 15 से 30 जुलाई तक) करनी चाहिए।
- अरहर की फसल में ज्वार की अन्तः फसल लेने से इस कीट का प्रकोप कम हो जाता है।
- इस कीट की निगरानी के लिए खेत में 5 गन्धपाश तथा नियंत्रण के लिए 15–20 गन्धपाश प्रति हेक्टेअर की दर से लगाकर नर कीटों को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए।

फलीबेधक कीट का वयस्क, सूँड़ी एवं प्रकोपित फली

- फूल आना प्रारम्भ होते ही निरीक्षण प्रारम्भ कर देना चाहिए। अरहर में एक दो छोटी सूँड़ी प्रति पौधा दिखाई देते ही एन.पी. वी. 250–300 एल.ई. प्रति हेक्टेयर की दर से 250–300 लीटर पानी में घोल कर सायंकाल छिड़काव करना चाहिए।

  अथवा

  1.0 से 1.5 किग्रा प्रति हेक्टेयर *बेसिलस थूरिंजिएसिंस कुर्सटाकी* 1000 लीटर पानी में घोल कर छिडकाव करने पर तीसरे अवस्था की सूँडी का प्रबन्धन हो सकता है।
- ईमामेक्टिीन बेन्जोएट 5 एस.जी. 0.3 ग्रा./ली. पानी की दर से या इन्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. 0.5 मि.ली./ली. पानी या स्पाईनोसैड 45 प्रतिशत एस.सी. 0.2 मि.ली./ली. पानी का छिड़काव करना चाहिए।

चित्तीदार फली भेदक : यह फली भेदक कीट अगेती अरहर का प्रमुख हानिकारक कीट है। फसल में पुष्पीकरण के दौरान अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों में इस कीट का प्रयोग अधिक होता है। चित्तीदार फली भेदक की सूँडी अरहर की कलियों, फूलों व फलियों एवं पत्तियों को मिलाकर गुच्छा सा बना लेती हैं और अन्दर ही अन्दर पौधों के भागों को खाती रहती हैं। यह कीट अरहर की जल्दी पकने वाली प्रजातियों (130 से 140 दिन अवधि), चौड़ी पत्तियाँ और समूहबद्ध पुष्पक्रम वाली प्रजातियों के लिए अति संवेदनशील होते है। ग्रसित फूल रंगहीन व भूरे होकर गिर जाते हैं।

फली को प्रकोपित करती चित्तीदार फली भेदक की सूँड़ी व पौधा

प्रबंधन

- अरहर की बुवाई समय से (15 से 30 जून तक) करने से इस कीट का प्रकोप काफी कम हो जाता है।
- इस कीट की संख्या आर्थिक क्षति स्तर से ऊपर पहुँचने पर प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. 2.0 मिली. प्रति लीटर पानी या मीथोमाइल 40 एस.पी. 0.6 मिली. प्रति ली. पानी या डी.डी.वी. पी. 76 ई.सी. 0.5 मिली. प्रति ली. पानी के साथ मिश्रण बनाकर फसल पर छिडकाव करना चाहिए।
- आवश्यकतानुसार इण्डोक्साकार्ब 14.5 एस.सी कीटनाशी 0.4 मिली. प्रति लीटर पानी या स्पाइनोसैड 45 एस.सी. 0.2 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर प्रकोपित फसल पर छिड़काव करना चाहिए।

ब्लिस्टर बीटल : इस कीट के वयस्क नारंगी व काले रंग के करीब 2.5 सेमी. लम्बे रहते है। इसकी एक मादा 60 से 70 अण्डे जमीन पर देती है। यह कीट प्रौढ़ पुष्पों को खाकर फलियाँ बनने की प्रक्रिया को रोक देते है परिणाम स्वरूप फूलो से फली नहीं बन पाती है तथा बहुत अधिक हानि होती है। एक व्यस्क कीट प्रतिदिन 20 से 30 फूलों को नुकसान पहुँचा सकता है। हाथ से छूने पर यह कीट पीले रंग का अम्लीय द्रव छोड़ता है, जिससे शरीर पर फफोले पड जाते है इसी कारण इसको ब्लिस्टर (फफोला) बीटल भी कहते है।

पुष्प कलिकाओं को क्षति पहुँचाते ब्लिस्टर बीटल कीट के वयस्क

प्रबंधन

- वयस्क कीटो को सांयकाल हाथ में दस्ताना पहनकर इकट्ठा करके मिट्टी के तेल में डाल कर मार देना चाहिए।
- इस कीट के नियंत्रण के लिए एसीफेट 75 एस.पी. 1.0 ग्राम प्रति लीटर पानी या क्लोरपाइरीफास 20 ई.सी. 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

(ब) उर्द एवं मूंग के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबन्धन

उर्द एवं मूंग की फसलों में कीट न केवल प्रत्यक्ष रूप से हानि पहुँचाते हैं बल्कि विषाणुओं का फसल में संचरण करके अप्रत्यक्ष रूप से भी हानि पहुँचाते हैं। कुछ प्रमुख कीटों का विवरण निम्नवत है:–

हरा फुदका : यह कीट हरे रंग के होते है तथा पत्तियों से रस चूसते हैं। पत्तियों की किनारे पीले रंग पड़ जाते हैं तत्पश्चात् पत्तियाँ मुड़ जाती हैं। यह लक्षण पादप रस की कमी के कारण व कीट की जहरीली लार के पत्तियों में प्रवेश करने के उपरांत होता है। अधिक प्रकोप की दशा में पत्तियों के किनारे मुड़ जाते हैं तथा ऐसी पत्तियाँ बाद में सूख जाती हैं जिसके फलस्वरूप पौधों की वृद्धि रूक जाती है। यह कीट मूँग एवं उर्द के अलावा अन्य दलहनी फसलों की उपज में भी भारी कमी करता है।

प्रबंधन

- बुवाई की तिथि में परिवर्तन करके इस कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है अन्तःवर्ती फसल जैसे ज्वार, बाजरा, तिल लेने से इस कीट का प्रकोप कम किया जा सकता है।
- इसके नियन्त्रण के लिए डाईमेथोएट 30 ई.सी. 1.2 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव तथा फोरेट 10 जी. का 15 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से उपयोग लाभदायक होता है।

हरा फुदका एवं प्रकोपित पौधा

सफेद मक्खी : यह न केवल मूंग व उर्द की फसलों का प्रमुख कीट है, अपितु यह पीत चित्तेरी विषाणु रोग का भी संवाहक है। यह पौधों की कोशिकाओं का रस चूसकर भोजन प्राप्त करता है जिसके कारण पौधे की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। पौधों की पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़ जाती है। सफेद मक्खी पौधों की पत्तियों पर काली फफूँदी की परत विकसित करती है जिसके कारण प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

सफेद मक्खी से प्रकोपित पत्ती

प्रबंधन

- खेत एवं आस–पास की मेडों, पानी की नालियों पर उगे हुए खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।
- मूँग की कीट अवरोधी प्रजातियाँ जैसे पन्त मूँग 4 , पी.डी.एम. 139, नरेन्द्र मूँग 1, एम. एल. 818, आई. पी. एम. 3, मेहा, आई. पी.एम. 2–14, मालवीय मूँग 16, मालवीय मूँग 12 तथा उर्द की पन्त उर्द 19, यू.जी. 218, उत्तरा, पन्त उर्द 30, के.यू. 300, डब्लू 108, शेखर उर्द 2, भोखर उर्द 3 आदि की बुवाई करना चाहिए।
- डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1.7 मि.ली. प्रति लीटर पानी का फसल पर छिडकाव करने से इस कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

पर्ण जीवक (थ्रिप्स) : इस कीट की प्रौढ तथा शिशु अवस्थायें पौधों में कलियों एवं फूलों का रस चूसते हैं। अधिक प्रकोप की स्थिति में पुष्प झडकर नीचें गिर जाते है। जिसके कारण पौधों पर फलियाँ नहीं बनती। ग्रीष्म कालीन मूँग की फसल में फूल बनते समय (मई से मध्य जून) इस कीट का अत्यधिक प्रकोप होता है। इस कीट के अत्यधिक प्रकोप की अवस्था में पौधा झाडी जैसी बढ़वार लेता है जो गहरी हरी रंग की दिखाई पडती है। ऐसी फसल में फलियाँ व दाने सिकुडे से दिखाई पडते हैं।

थ्रिप्स से प्रकोपित पुष्प

प्रबंधन

- समय पर सिंचाई (15 दिन के अन्तराल पर) फसल में इस कीट की संख्या की बढवार को रोकती है।
- डाइमेथोएट 30 ई.सी. 0.7 मि.ली. प्रति लीटर पानी या ट्राइजोफास 40 ई.सी. 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी या एन.एस. के.ई. 50 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिडकाव इस कीट के प्रबन्धन में लाभदायक होता है।

ब्लिस्टर बीटल : इस कीट के वयस्क नारंगी व काले रंग करीब 2.5 से.मी. लम्बे रहते है। यह कीट मूँग एवं उर्द के पुष्पों को खाकर फलियाँ बनने की प्रक्रिया को रोक देते है। परिणाम स्वरूप फूलो से फली नहीं बन पाती है तथा बहुत अधिक हानि होती है।

ब्लिस्टर बीटल के वयस्क एवं प्रकोपित पौधा

प्रबंधन :

- अरहर में दिये गये नियन्त्रण की भाँति ।

माँहू : यह कीट मूँग एवं उर्द की पत्तियों का रस चूसकर उन्हे नुकसान पहुचाँता है साथ ही साथ यह फसल में विषाणु का संचरण भी करता है। इस कीट के वयस्क काले रंग के, चमकीले व लगभग 2 मि.ली. लम्बे होते है। इस कीट के अत्यधिक प्रकोप की दशा में फसलों की उपज प्रभावित हो जाती है, जिससे आर्थिक क्षति होती है। पौधों के अग्र भाग की नई पत्तियों व फलियों में यह कीट झुंड में दिखाई देते है।

माँहू से प्रकोपित पौध, पुष्प एवं फली

प्रबंधन

- इस कीट के नियंत्रण के लिए एन.एस.के.ई. 5 प्रतिशत 50 ग्राम प्रति लीटर या डाईमेथोएट 30 ई.सी. 1.7 मि.ली. प्रति लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 0.2 मि.ली. प्रति ली. पानी का छिडकाव करना चाहिए।

चित्तीदार सूँडी : यह कीट मूलतः अगेती अरहर का महत्वपूर्ण कीट है। प्रारम्भ में यह मूँग एवं उर्द के कम महत्व का कीट आँका जा रहा है परन्तु यह कीट भी क्षति पहुँचा रहा है।

चित्तीदार सूँडी एवं उससे ग्रसित पुष्प

प्रबंधन

- ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई करना चाहिए।
- खेत में प्रकाश प्रपंच लगाकर आकर्षित कीटों को नष्ट कर देना चाहिए।
- नवजात सूड़ियों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए।
- अधिक प्रकोप की दशा में इन्डोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. 0.4 मि. ली. प्रति लीटर पानी की दर से अथवा स्पाइनोसैड 45 एस. सी. 0.2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करना चाहिए।

बिहार की रोयेदार सूँडी : यह मूँग एवं उर्द की पत्ती खाने वाला प्रमुख कीट है। यह पौधें की पत्तियां, फूल एवं फलियों को खाकर नुकसान पहुँचाता है। इसकी मादा पत्तियों की निचली सतह पर एक साथ 400 से 500 अण्डे एक ही स्थान पर देती है। इनकी छोटी सूँडियाँ निकलकर झुण्ड में एक साथ पत्तियों की पूरा हरा पदार्थ खा जाती है। एसी पत्तियाँ दूर से ही धूसर सफेद झिल्ली जैसी दिखाई देती है जिसमें बहुत सी शिशु सूड़ियाँ चिपकी होती है जो बड़ी होकर पूरे खेत में फैल जाती हैं और फसल को हानि पहुँचाती हैं। वयस्क सूँडियां पत्तियों का कोमल तना एवं टहनियों को खाती हैं जिससे कुछ दिनों में पौधों की लगभग सारी पत्तियाँ खत्म हो जाती हैं। इस कीट का प्रकोप अनियमित है। अनूकूलन वातावरण की स्थिति में ही इसका प्रकोप अधिक होता है। यह एक बहुभक्षी कीट है जो उर्द व मूँग की फसलों के अलावा, अरहर, बरसीम, सरसों व सूरजमुखी की फसलों में भी क्षति पहुँचाता है।

बिहार की रोयेदार सूँडी का अण्ड समूह, समूह में खा रही सूड़ियाँ एवं वयस्क

प्रबंधन

- झुंड में खा रही सूँड़ियों को इकट्ठा करके नष्ट करना एक प्रभावी उपाय है।
- बिवेरिया बैसियाना 4 मिली. प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करके छोटी सूँड़ियों का प्रबंधन किया जा सकता है।
- क्वीनालफास 25 ई.सी. 1.25 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा फेन्थोएट 50 ई.सी. 0.8 मि.ली. प्रति लीटर पानी का फसल पर छिडकाव प्रभावी होता है।

फली बग : इस कीट की शिशु एवं वयस्क अवस्थाएँ पौधो की पत्तियों, तना, फूलों व फलियों का रस चूसकर फसल को हानि पहुँचाते हैं। इस कीट द्वारा अधिकतम क्षति कोमल फलियों का रस चूसने से होती है। इस कीट के प्रकोप से फलियों पर हल्के पीले धब्बे दिखाई देते है इससे फलियों के अन्दर दाने छोटे व सिकुड़ जाते है तथा फलियाँ टेढ़ी मेढ़ी और आकार में छोटी हो जाती है।

उर्द एवं मूँग को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न फली बग

प्रबंधन

- पौधों को झटककर झाडने से इस कीट का यांत्रिक प्रबंधन सम्भव है।
- मेथोमाइल 40 एस.पी. 0.6 ग्रा. प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर छिड़काव करके नियन्त्रित किया जा सकता है।

तना मक्खी : इस कीट का जीवन चक्र 11 से 22 दिन का होता है। वयस्क कीट नीले या गहरे हरे रंग की होती है। इस कीट की सूँडियां पत्तियों में सुरंग बनाती है एवं उसके अन्दर किसी एक सिरे से प्रवेश करते हुए मध्य शिरा की ओर बढती हैं तथा अन्ततः तने में प्रवेश कर जाती है। पौधों की ऊपर की दो पत्तियों का मुरझा जाना व पौधों में पीलापन इस कीट के प्रकोप के लक्षण हैं। जिस भाग में इस कीट का प्रकोप होता है वो फूल जाता हैं और सड़ने लगता है। यह कीट मूँग और उर्द में क्रमशः 5–20 प्रतिशत तथा 3–62 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचा सकता है। इनकी अधिकता होने पर पत्तियाँ भूरे रंग की होकर फूल जाती है। ऐसे पौधों पर फलियां कम बनती हैं। इनमें अधिकतर फलियाँ खाली रह जाती हैं अथवा बीज बहुत छोटे आकार के होते हैं।

तना मक्खी से ग्रसित पौधा एवं वयस्क मक्खी

प्रबंधन :

- खेतों की साफ–सफाई, निराई–गुड़ाई करना चाहिए।
- अंकुरण की अवस्था में बीज को इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 5.0 मिली. प्रति किग्रा. को 100 मिली. पानी में एक घंटे तक भिगोने से तना मक्खी द्वारा फसल की प्रारंभिक अवस्था में नुकसान रोका जा सकता है।
- बुवाई के 15 दिनों में इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 0.2 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से फसल पर छिड़काव उपयोगी माना जाता है।

(स) मसूर के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबन्धन

मसूर का फली बेधक : इसका प्रकोप मसूर के अतिरिक्त मटर एवं अन्य दलहनी फसलों पर पड़ता है। इस कीट की सूड़ियाँ ही फसल को हानि पहुँचाती हैं जो कोमल पत्तियों, कलियों एवं फलियों में छेद बना कर दाने को खाती हैं तथा फसल को नुकसान पहुँचाती हैं। नवजात सूँड़ी हरे रंग की होती है जो पूर्ण विकसित होने पर लाल रंग की तथा बैगनी आभा लिए हो जाती है। प्रौढ़ पतंगा भूसे के रंग का होता है। इसके पंखों पर किनारे की तरफ गहरे रंग की धारी होती है तथा पंख बालों से ढँका होता है।

मादा कीट एकल अथवा समूह में पौधों के विभिन्न भागों पर अण्डे देती है जिससे शिशु निकलकर प्रारम्भ में फूल वाले भाग पर तथा बाद में फलियों में छेद बनाकर दानों को खाकर अपना जीवन निर्वाह करती हैं। पूर्ण विकसित सूँड़ी जमीन में जाकर प्यूपा में बदल जाती है जिससे प्रौढ़ निकल आता है।

प्रबंधन :

- फसल कटने के तुरन्त बाद खेत की गहरी जुताई कर देने से प्यूपा नष्ट हो जाते हैं।
- मैलाथियान 5 प्रतिशत धूल या कार्बरिल धूल 30 किग्रा. प्रति हेक्टेअर की दर से बुरकाव करना चाहिए।
- इन्डोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. 0.4 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

मसूर का माँहू : काले रंग की माँहू कोमल तनों, फूलों एवं फलों से रस चूस कर फसल को काफी हानि पहुँचाती है। देर से बोई गयी फसल इस कीट से अधिक प्रभावित होती है।

पौधे को क्षति पहुँचाती माहू का समूह

प्रबंधन :

- समय से अर्थात अक्तूबर के दूसरे पखवारे में बुवाई करने से माँहू का प्रकोप नहीं होता है ।
- माहू के नियंत्रण के लिए काक्सीनेला 2500 या क्राइसोपरला 50000 प्रति हेक्टेअर की दर से दस दिन के अन्तराल पर दो बार छोड़ना चाहिए।
- डाईमेथोएट 30 ई.सी. 1.7 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

बिहार की रोयेदार सूँडी : यह पत्तियों को खाकर पौधों को ठूँठ बना देता है ।

प्रबंधन :

- उर्द एवं मूंग में दिये गये प्रबंधक की भाँति ।

(द) चने के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन :

कटुआ कीट : यह लगभग 2.5 सेमी. लम्बा तथा 0.7 सेमी. चौड़ा मटमैले भूरे रंग का पतंगा होता है। इसके अगले पंख पिछले पंखों से रंग में गाढ़े काले होते हैं जिनके ऊपर लम्बाई में काले रंग के धब्बे होते हैं तथा किनारों पर आड़ी दिशा में हल्के काले रंग की लहरदार पट्टी पायी जाती है। इस कीट की हरे अथवा भूरे रंग की सूड़ियॉ रात में निकलकर नये पौधों को जमीन की सतह से या पुराने पौधों की शाखाओं को काट कर जमीन पर गिरा देती हैं।

कटुआ कीट से ग्रसित पौधा | कीट की सूँड़ी | प्रौढ़ कीट

फली बेधक कीट : प्रौढ़ पतंगा पीले बादामी रंग का होता है। अगली जोड़ी पंख पीले भूरे रंग के होते हैं और पंख के मध्य में एक काला निशान होता है। पिछले पंख कुछ चौड़े मटमैले सफेद से हल्के रंग के होते हैं तथा उनके किनारे पर काले रंग की पट्टी होती है। सूड़ियॉ हरे अथवा भूरे हरे रंग की होती हैं। नवजात सूड़ियॉ प्रारम्भ में कोमल पत्तियों को खुरचकर खाती हैं बाद में ये पत्तियों, कलिकाओं तथा फलियों पर आक्रमण कर देती हैं। सूड़ियाँ फलियों में छेद बनाकर सिर को अन्दर घुसाकर अथवा घुसकर दानों को खाती रहती हैं। एक सूँड़ी अपने जीवन काल में 30 से 40 फलियों को प्रभावित कर देती है।

चने की पत्ती एवं फली को खाती हुई फली बेधक की सूँड़ी तथा प्रौढ़ कीट

कूबड़ कीड़ा : इसकी सूड़ियाँ हरे रंग की होती हैं जो अर्ध लूप बनाकर चलती हैं। मादा पतंगा काले भूरे रंग का लगभग 17 मिमी. लम्बा होता है। नर पतंगा आकार में इससे कुछ छोटा तथा गहरे रंग का होता है। इसका पूरा पंख मुलायम रोयों से ढँका होता है। कीट की सूँड़ियॉ पत्तियों, कोमल टहनियों, कलियों, फूलों एवं फलियों को खाकर नुकसान पहुँचाती हैं।

कूबड़ कीट

प्रबंधन

- समय से बुवाई करनी चाहिए।
- छिटपुट बुवाई नहीं करनी चाहिए।
- थोड़ी–2 दूर पर सूखी घास के छोटे–2 ढेर को रख कर कटुआ कीट की छिपी हुई सूड़ियों को प्रातः खोज कर मार देना चाहिए।
- चने के साथ अलसी, सरसों, गेहूँ या धनियाँ की सह फसली खेती करने से फली बेधक कीट से होने वाली हानि कम हो जाती है।
- खेत के चारों ओर एवं लाइनों के मध्य अफ्रीकन जाइन्ट गेंदें को ट्रैप क्राप के रूप में प्रयोग करना चाहिए।
- प्रति हेक्टेयर की दर से 50–60 बर्ड पर्चर लगाना चाहिए।
- फूल एवं फलियॉ बनते समय सप्ताह के अन्तराल पर निरीक्षण अवश्य करना चाहिए। फली बेधक के लिए 5 गंधपास प्रति हेक्टेयर की दर से 50 मीटर की दूरी पर लगाकर भी निरीक्षण किया जा सकता है ।
- निरीक्षण में उपरोक्त किसी भी कीट के आर्थिक क्षति स्तर पर पहुँचने पर 250 से 300 सूँड़ी समतुल्य एच.एन.पी.वी. (चने के फलीबेधक की न्यूक्लीयर पाली हेड्रोसिस वाइरस) 250 से 300 लीटर पानी में घोलकर सायंकाल सप्ताह के अन्तराल पर दो तीन छिड़काव करना चाहिए। एच.एन.पी.वी. के घोल में 0.5 प्रतिशत गुड़ तथा 0.1 प्रतिशत टीनोपाल भी मिला देना चाहिए।

अथवा

बेसिलस थूरिन्जेंसिस वेराइटी कुरस्टकी की 1 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से या ईमामेक्टिीन बेन्जोएट 5 एस.जी. 0.3 ग्रा/ली. पानी या इन्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. 0.5 मि.ली./ली. पानी या स्पाईनोसैड 45 प्रतिशत एस.सी. 0. 2 मि.ली./ली. पानी का छिडकाव करना चाहिए। या फेनवेलरेट 0.4 प्रतिशत धूल या फेन्थोएट 2 प्रतिशत धूल 25 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकाव करना चाहिए। लगातार निरीक्षण करते रहना चाहिए आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव/बुरकाव कीटनाशी बदलकर करना चाहिए।

(य) मटर के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

तने की मक्खी : यह गहरे काले रंग की घरेलू मक्खी की तरह होती है। इसका प्रकोप अगेती बोई हुई मटर की फसल में अधिक होता है। इसका प्रकोप फसल उगने के साथ ही शुरू हो जाता है। नवजात गिडारें पत्तियों से होते हुए तने में सुरंग बनाकर अन्दर घुस जाती हैं जिसके फलस्वरूप प्रकोपित पौधे पीले पड़ कर सूख जाते हैं।

आर्थिक क्षति स्तर

क्र.सं.	कीट का नाम	फसल की अवस्था	आर्थिक क्षति स्तर
1	कटुआ कीट	वानस्पतिक अवस्था	1 सूँड़ी प्रति वर्ग मीटर
2	कूबड़ कीट	फूल एवं फलियॉ बनते समय	2 सूँड़ी प्रति दस पौधे पर
3	चने का फली बेधक	फूल एवं फलियॉ बनते समय	2–3 अण्डे प्रति पौधा या 2–3 छोटी सूड़िया प्रति 10 पौधा या 1 पूर्ण विकसित सूँड़ी प्रति 10 पौधा या 4–5 पतंगे प्रति गंधपास लगातार 2–3 दिन तक आने के 7–10 दिन बाद

मटर की तना मक्खी से प्रकोपित पौधे

पत्ती में सुरंग बनाने वाला कीट : पूर्ण विकसित गिडार मटमैले सफेद रंग की होती है। नवजात गिडारें पत्तियों में एपीडर्मिस के नीचे सुरंग बना कर पत्तियों को खाती हैं जिसके फलस्वरूप प्रकोपित पत्तियों में सफेद रंग की टेढ़ी–मेढ़ी रेखाएं बन जाती हैं। इसके आक्रमण के कारण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।

पत्ती में सुरंग बनाने वाले कीट से ग्रसित पत्तियाँ

फली बेधक कीट : यह गहरे भूरे रंग का पतंगा होता है जिसके ऊपरी पंख पर सफेद पीली धारियां होती हैं तथा पिछले पंख के किनारों पर गहरी पारदर्शी लाइन पायी जाती है। पूर्ण विकसित सूँड़ी गुलाबी रंग की होती है। कीट की गिडारें फलियों में बन रहे दानों को खाकर नुकसान पहुँचाती हैं। प्रकोपित फलियाँ रंगहीन, पानीयुक्त तथा दुर्गन्धयुक्त हो जाती हैं।

फली बेधक कीट एवं प्रकोपित मटर की फली

प्रबंधन

- समय से बुवाई करनी चाहिए क्योंकि अगेती बोई गई फसल में तना छेदक मक्खी तथा देर से बोई गयी फसल में फली बेधक कीट के प्रकोप की सम्भावना बढ़ जाती है ।
- अगेती बोई गयी फसल में कूँड में कार्बोफ्यूरान 15 किग्रा. अथवा फोरेट 25 किग्रा./हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए। या
- फसल जमते ही सप्ताह के अंतराल पर निरीक्षण करते रहें तथा 5 प्रतिशत प्रकोपित पौधे दिखते ही मिथाइल ओ डेमेटान 25 ई.सी. या डाईमेथोएट 30 ई.सी. के 1 मिली. प्रति लीटर पानी की दर से बने घोल का छिड़काव करना चाहिए।
- सुरंग बनाने वाली कीट से प्रकोपित पत्तियों को सूँड़ी एवं कृमिकोश सहित तोड़कर जमीन में गाड़ देना चाहिए ।
- फली बेधक से 5 प्रतिशत प्रकोपित फलियॉ दिखाई देते ही बैसीलस थूरिजेंसिस एक किग्रा. प्रति हेक्टेयर या ईमामेक्टीन बेन्जोएट 5 एस.जी. 0.3 ग्रा./ली. पानी या इन्डोक्साकार्ब 15.8 ई.सी. 0.5 मि.ली./ली. पानी या स्पाईनोसैड 45 प्रतिशत एस.सी. 0.2 मि.ली./ली. पानी का छिडकाव करना चाहिए।

आर्थिक क्षति स्तर

क्र.सं.	कीट का नाम	फसल की अवस्था	आर्थिक क्षति स्तर
1	तना की मक्खी	फसल उगने के एक से डेढ़ महीने के अन्दर	5 प्रतिशत प्रकोपित पौधे
2	फलीबेधक	फलियॉ आने पर	5 प्रतिशत प्रकोपित फलियॉ

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

चने की फली बेधक की पहचान तथा नियंत्रण

यीतेश कुमार[1], एम. आर. सिंह[2], वाय.के. यदु[1], अनुप्रिया चंद्राकार[3] एम. पी. शर्मा[2] एवं सन्तोष कुमार पांडेय[2]
[1]इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर
[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[3]जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

चना भारत देश की दलहनी फसलों मे से एक मुख्य फसल है तथा इसकी खेती देश के अधिकांश भूभागों पर होती हैं। विभिन्न नई–नई प्रजातियों व तकनिकों को अपनाने के बावजूद भी इसकी उपज मे आशातीत वृद्धी नहीं हो पायी है। इसके परिणाम स्वरूप देश में प्रोटीन की आपूर्ति सही तरीके से नहीं हो पा रही है। अतः दलहन की उपज मे बढ़ोत्तरीं हेतु इसके उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारको पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता हैं। चने के उत्पादन को प्रभावित करने वाले बहुत से कारक है परंतु इन सब कारकों में चने का फली बेधक एक मुख्य कारक है जो अपनी उग्रता स्तर पर पूरी फसल को चौपट करने की क्षमता रखती है। अतः समय पर इसका नियंत्रण अत्यंत आवश्यक होता हैं।

यह कीट भारत वर्ष मे पंजाब, उ.प्र., गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, बिहार, म.प्र., तथा छत्तीसगढ़ आदि राज्यों मे अत्यधिक क्षति पहुँचाता हैं।

चने का फली बेधक बहुभोजी प्रकृति के होने के कारण लगभग सभी दलहनी फसलों जैसे– अरहर, मटर व अन्य फसलों जैसे–कपास, मक्का, टमाटर, तंबाकू इत्यादि को भी क्षति पहुँचाता हैं।

चने के फली बेधक कीट की विभिन्न अवस्थाओं की पहचान

इस कीट की चार अवस्था अण्डा, सूँडी, शंखी व प्रौढ़ पाई जाती है, जिनकी पहचान निम्नवत है–

अण्डा–मादा प्रौढ़ अपने अण्डे को चने की पत्ती, फूलों व हरी फलियों पर एक–एक की संख्या में अलग–अलग देती है। प्रत्येक अण्डे पर ऊँची नीची झुर्रियों से चित्रकारी या नक्काशी की हुई प्रतीत होती है तथा सम्पूर्ण अण्डा लंबा गोलाकार व चमकदार हरियाली पीले अथवा हल्के बादामी रंग का होता है।

फली बेधक का अण्डा

सूँड़ी (इल्ली) : अण्डे से तुरंत निकला हुआ युवा इल्ली बहुत छोटा होता है, तथा हरे रंग का होता है और जब ये बड़ा हो जाती है, लगभग पाँचवे निर्मोचन के करीब तो इसका रंग चमकीला हरा तथा नीचे की ओर भूरा सा होता है तथा शरीर पर बिखरे रोम होते हैं।

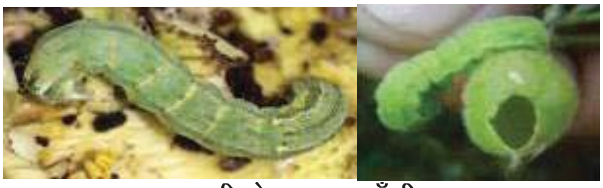

फली बेधक का सूँड़ी

शंखी (प्यूपा): शंखी अवस्था लाल भूरा होती है तथा इसका पश्च अंतिम सिरा नुकीला होता है।

प्रौढ़ : प्रौढ़ शलभ मजबूत और पीले बादामी रंग का होता है। अगली जोड़ी पंख पीले भूरे रंग के होते है और पंख के मध्य में एक विशिष्ट काला निशान होता है। अग्र पंखो पर ऊपर की ओर आड़ी लहरदार गहरी सिलेटी रंग की रेखायें एवं विभिन्न आकार के काले धब्बे तथा नीचे की ओर एक काला वृक्काकार तथा गोल निशान होता हैं। पश्च पंख कुछ चौड़े मटियाले सफेद से हल्के रंग के होते है। इनके ऊपर बाहरी किनारे के पास एक चौड़ी काली सी पट्टी होती है। सिर, वक्ष तथा उदर पीताभि बादामी बालो से ढके रहते है। प्रौढ़ कीट प्रथम बार प्रायः अक्टूबर या नवम्बर में तथा इसके बाद फरवरी–मार्च मे पुनः दिखाई देता है।

फली बेधक का शंखी

फली बेधक का प्रौढ़ शलभ

क्षति की पहचान

यह कीट प्रायः पूरे वर्ष सक्रिय रहता है, तथा चने के खेत में यह सर्वप्रथम नवंबर में दिखाई देता है और मार्च तक सक्रिय रहता है। इस कीट की केवल इल्ली अवस्था ही हानिकारक होती है। छोटे–छोटे नन्हें सूँड़ी हरे रंग के होते है तथा इनका निम्नतल सफेद होता है। अण्डे से निकला युवा इल्ली प्रारम्भ में चने की कोमल पत्तियों व टहनियों का भक्षण करती है तथा अधिक मात्रा मे क्षति होने पर पौधा मुरझा कर सूख जाता हैं।

ये सूँड़ी, पुष्प, नवोद्भिद कलियों व फूलों तथा नवोद्भिद फलियों का भक्षण कर आगे की फली निर्माण प्रक्रिया को रोक देता है। जब ये सूँडी थोड़ी आकार में बड़ी होती है, तो ये दाना बन रहे फलियो का बेधन कर अन्दर बन रहे दानों को खा जाती है। जब ये सूँड़ी फली मे छेद करती है तो ये अपने शरीर का आधा भाग फली के अंदर प्रवेश करा देती है और शरीर का आधा भाग फली के बाहर झूलता रहता है। इस तरह सूँडी एक फली को खाने के बाद दूसरे फली में पहुँच जाती है। इस तरह एक सूँड़ी लगभग 30-40 फलियों को खा कर नष्ट कर देती हैं।

फली बेधक की सूँड़ी से ग्रसित चने की फली

फली बेधक का जीवन चक्र

फली बेधक कीट अपना जीवन चक्र अण्डा अवस्था से लेकर प्रौढ़ अवस्था में पूर्ण करता है।

अण्ड अवस्था–मादा अक्टूबर के अंत या नवंबर के प्रारम्भ मे अण्डा देना आरंभ करती है और दिसंबर तक अण्डा देती रहती हैं। मादा 3000–4000 तक अण्डा देती है। दो से चार दिन मे अण्डोद्भेदन द्वारा अण्डो से इल्ली बाहर निकल आती है।

सूँडी अवस्था : अंडोद्भेदन से निकला युवा सूँड़ी पौधे की नर्म पत्तियों, टहनियों, कलियों आदि का भक्षण करती है व बाद में एक फली से दूसरी फली को खाते हुए यह सूँड़ी 05 बार निर्मोचन करती है। 25–30 दिन में सूँड़ी पूर्ण विकसित हो जाती है। पूर्ण विकसित सूँडी पौधे को छोड़कर गिर जाता है।

शंखी (प्यूपा) अवस्था : सूँडी भूमि पर 7–15 से.मी. गहरा छिद्र बनाकर मिट्टी का कोकून या खोल बनाता है और शंखी अवस्था मे बदल जाती है। अनुकूल दिनो मे शंखी अवस्था 8–15 दिन की होती है, लेकिन सर्दियों मे विशेषतः उत्तरी भारत मे यह समय बढ़कर 1–3 माह हो जाता है।

प्रौढ़ अवस्था : फली बेधक का प्रौढ़ फरवरी के अंत अथवा मार्च के प्रारम्भ में बाहर निकल आता है। इस समय खरीफ की फसलों की दाले, कपास, अरंडी आदि इसके भोज्य पौधे होते हैं। एक वर्ष में इसकी 2–8 पीढ़ियाँ हो सकती हैं। जीवन चक्र औसतन 03–07 सप्ताह मे पूरा हो जाता है।

आर्थिक स्तर

यह पैमाना किसी कीट की किसी फसल मे एक निश्चित संख्या का स्तर है, जिसमें कि हमें इस कीट के नियंत्रण हेतु द्रुत प्रतिकृया दिखाने की जरूरत होती है। फली की बेधक कीट की आर्थिक देहली स्तर चने की प्रजनन अवस्था में इस तरह है–

- 02 – 03 अण्डे प्रति पौधे
- 02 – 03 युवा सूँड़ी प्रति 10 पौधे
- 01 पूर्ण विकसित सूँड़ी प्रति 10 पौधे

चने के फली बेधक कीट का नियंत्रण

इस कीट के नियंत्रण हेतु निम्नलिखित विधियाँ इस प्रकार है –

कृषिगत क्रिया

- छोटे खेतों मे फलियो से लटकते हुए सूँड़ियों को एकत्रित करके नष्ट किया जा सकता है।
- अक्तूबर के अंतिम सप्ताह मे ही बुवाई कर दें।
- पूर्ण अपघटित कार्बनिक खादों का उपयोग करें।
- फसल काटने के बाद फसल के अवशेष व कूड़ों को नष्ट कर देना चाहिए।
- गर्मियों में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करना चाहिए जिससे कि भूमि मे छिपे शंखी या सूँडी नष्ट हो जाएँ।
- फसल चक्र को अपना कर इसके प्रकोप से बचा जा सकता है।
- पक्षी बैठन खूँटों (बर्ड पर्चेस) को खेत में जगह जगह गाड़ देना चाहिए, जिससे पक्षी इस पर आकर बैठते है और सूँड़ियों का भक्षण करते हैं। परंतु जब बीज के पकने की अवस्था आए तो खूँटा निकाल देना चाहिए नही तो पक्षी पूरे बीज को ही खा जाएंगे। 50 × 60 पक्षी बैठन खूँटे प्रति हेक्टयर स्थापित करे।

ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई

फसल चक्रण

पक्षी बैठन खूँटा (बर्ड पर्च)

यांत्रिक उपाय

- हस्त जाल द्वारा प्रौढ़ को पकड़कर मार देना चाहिए।
- प्रकाश प्रपंच द्वारा प्रौढ़ को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। 200 वॉट (W) की बल्ब वाले 02 प्रकाश प्रपंच प्रति हेक्टयर काफी है।
- गेहूँ, सरसों और अलसी को अंतरवर्तीय फसल के रूप मे लेने से बेधक कीट का प्रकोप कम हो जाता है।
- टमाटर व मिर्च को खेत के समीप कदापि न उगाये।
- गेंदे के फूल के पौधों को खेत के चारों ओर मेड़ में उगायें, इससे गेंदे के फूल, फली बेधक के कीट को अण्डा देने के लिए आकर्षित करते हैं तथा प्रकृति में पाये जाने वाले इन

कीटो के प्राकृतिक शत्रुओं को भी आकर्षित करते है, व फूल के परागकणो से इन प्राकृतिक शत्रुओ की विभिन्न अवस्थाओं का पोषण होता है और ये जैविक नियंत्रण की आधारशिला को मजबूत बनाते हैं।

- उर्वरक का फसलों में संतुलित प्रयोग करना चाहिए, उर्वरक की जितनी मात्रा उस जगह के लिए वैज्ञानिको द्वारा अनुसंशित की गई हो उतना ही उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए।

हस्तजाल

प्रकाश प्रपंच

जैविक नियंत्रण

- अण्ड परजीवी ट्राइकोग्रामा माईनुटम और ट्राइकोग्रामा आस्ट्रेलिकस के 1.5 लाख अण्डे प्रति हेक्टयर के हिसाब से विमुक्त करे। ये परजीवी फली बेधक के अण्डे मे अपना अण्डा देकर उसे नष्ट कर देते है।
- ब्रेकान हिबेटर की 1000 – 1200 वयस्क प्रति हेक्टेयर कि दर से विमुक्त करें।
- कंपोलिटिस क्लोरीडी सूँड़ी परजीवी का विमोचन काफी प्रभावी होता है।
- क्राइसोपरला कार्निया की 01 लाख प्रथम अवस्था (इन्स्टार) लार्वी को प्रति हेक्टयर के हिसाब से फसल में विमोचन करे। इसका विमोचन बुवाई के 20 – 30 दिन बाद प्रत्येक सप्ताह करें।
- बैसिलस थुरिनजेन्सिस वैरा. कुरस्टाकी का 750 – 1000 ग्राम पाउडर का प्रति हेक्टयर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए।
- न्यूक्लियर पॉली हाइड्रोसिस वाइरस को 250 एल. ई. को 500 लीटर जल के साथ प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। इसका छिड़काव 0.1 % टीपाल व 0.5 % गुड़ के साथ पुष्पन अवस्था मे 10 – 15 दिन के अंतराल में करें।

ट्राइकोग्रामा द्वारा अण्डे का परजीवीकरण

क्राइसोपा द्वारा नाशी कीटों का भक्षण

एन. पी. वी. या कीटनाशक का छिड़काव कीट की प्रथम अवस्था मे ही प्रभावी होता है।

- नीम के बिनौले (एन. एस. के. ई.) के 05% काढ़ा के 200 मि. ली. को 400 ली. जल मे घोलकर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करे।
- नीम का तेल/करंज तेल (पुंगम ऑयल) की 80 ई. सी. की 02 मिली. को प्रति लीटर के हिसाब से छिड़काव करे या एक लिटर तेल 500 लीटर जल में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

सांकेतिक रसायन (सेमियोकेमिकल) आधारित नियंत्रण

इस विधि मे कीटो की संचार प्रक्रिया मे भाग लेने वाले रसायनों का प्रयोग इन कीटों के विरुद्ध इनके नियंत्रण मे होता है।

- 12– 15 फीरोमोन – ट्रैप प्रति हेक्टेयर 10 मीटर के अंतराल से स्थापित करें तथा बाजार मे मिलने वाले हेलिलुर नामक सेप्टा का उपयोग करें। एक हफ्ते मे इस सेप्टा को बदलकर नई सेप्टा उसकी जगह पर लगा देवे। किसान को इस सेप्टा को हाथ से पकड़ते समय यह ध्यान रखना चाहिए की उसका हाथ स्वच्छ हो, कोई तंबाकू या मसाले का अंश हाथ मे ना लगा हो, नहीं तो यह सेप्टा की गुणवत्ता पर प्रभाव डाल सकता है। फीरोमोन ट्रैप का स्थापन फसल के कैनोपी (फसल आच्छादन) के थोड़े ऊपर ही, लगभग 15 सेंटीमीटर पर करें, मतलब की सेप्टा वाला भाग फसल से 15 सेंटीमीटर ऊपर हो व बाकी भाग फसल के साथ नीचे हो।

रासायनिक विधि द्वारा नियंत्रण

- क्लोरपाइरिफॉस 20 ई. सी. सक्रिय तत्व की 2.0 – 2.5 लीटर को 500 लीटर जल के साथ घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।
- जब फली बेधक का अत्यधिक प्रकोप हो तो प्रोफेनोफॉस 50 ई. सी. की 1500 मिलीलीटर मात्रा को 500 लीटर जल के साथ घोलकर छिड़काव करें।
- क्वीनालफॉस 25 ई. सी. की 1000 मिलीलीटर मात्रा को 500 लीटर जल के साथ घोलकर छिड़काव करें।

फीरोमोन ट्रेप

फीरोमोन सेप्टा

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

जैविक खेती में रोग नियंत्रण हेतु जैव नियंत्रकों का प्रयोग

दीक्षा जोशी एवं एस के अवस्थी

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारतवर्ष में सभ्यता के आरम्भ से ही फसल उत्पादन की जैविक विधि का उपयोग होता आ रहा है। जैविक खेती के अंतर्गत सम्पूर्ण फसल प्रबंधन तंत्र को संज्ञान में लिया जाता है और इसमें जैव विविधता, जैविक चक्र और मृदा जैव सक्रियता के संतुलन और संरक्षण पर मुख्य जोर दिया जाता है ताकि कृषि वातावरण और मृदा स्वास्थ उत्तम रहें। विश्व में जैविक कृषि करने वाले कुल किसानों में से लगभग आधे कृषक भारत में हैं। यदि हम क्षेत्रफल की बात करें तो भारत में वर्ष 2003–04 में करीब 42000 हेक्टेयर कृषि क्षेत्रफल जैविक प्रबंधन के अंतर्गत था जो सन 2009–10 तक बढ़कर 10,85,648 हेकटयर हो गया। इसमें से सबसे अधिक जैविक क्षेत्रफल कपास, फल और सब्जी फसलों की खेती के अंतर्गत है। यह निश्चित है कि रासायनिक और कृत्रिम खादों, कीटनाशकों और फफूंदीनाशकों के अत्यधिक प्रयोग के दुष्परिणामों के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण भविष्य में विश्व भर में जैविक खाद्य पदार्थों की मांग और बढ़ेगी और आने वाले समय में जैविक खेती के अंतर्गत क्षेत्रफल में और बढ़ौत्तरी होगी।

सफल जैविक खेती प्रमुखतः तीन चीजों पर आधारित है: (i) जैविक खादों का उचित प्रयोग (ii) प्रभावी रोग नियंत्रण और (iii) प्रभावी कीट नियंत्रण। वर्तमान कृषि पद्धति प्रमुखतः कृत्रिम रासायनिक खाद, कीटनाशक व फफूंदीनाशकों के प्रयोग पर आधारित है। परंतु जैविक खेती में किसी भी प्रकार के कृत्रिम खाद अथवा फफूंदीनाशकों/कीटनाशकों का प्रयोग पूर्णतः वर्जित है तथा जो कुछ खनिज पदार्थ स्वीकृत भी हैं उनका उपयोग बहुत कड़े मापदण्डों पर निर्धारित है और सिर्फ एक आखिरी उपाय के रूप में कड़े नियमों के अंतर्गत और जैविक प्रमाणीकरण संस्थान की स्वीकृति के पश्चात् ही उनका प्रयोग किया जा सकता है। अतः जैविक खेती में रोग प्रबंधन मुख्य रूप से आनुवांशिक उपायों (प्रतिरोधी किस्में) और विभिन्न कर्षण क्रियाओं (सहफसली खेती, अंतःफसली खेती, फसल चक्रीकरण इत्यादि) के प्रयोग पर निर्भर करता है। यदि आनुवांशिक या कर्षण विधि को अपनाकर भी प्रभावी रोग नियंत्रण संभव नहीं हो पाता वहाँ पर कृषक सूक्ष्मजीवी व्याधिनाशकों (जैव नियंत्रकों) का उपयोग कर सकते हैं। जैव नियंत्रकों का प्रयोग वातावरण के अनुकूल है और इनके प्रयोग से अलक्षित जीवों जैसे कि मनुष्यों, मछलियों, मधुमक्खियों आदि पर किसी भी प्रकार के हानिकारक प्रभाव पड़ने की संभावना अत्यंत कम होती है। साथ ही जैव नियंत्रकों को जैविक खेती में प्रयोग की जाने वाली अन्य रोग नियंत्रण प्रणालियों जैसे की आनुवांशिक और कर्षण तकनीकों के साथ आसानी से समन्वित करके प्रभावी रोग नियंत्रण पाया जा सकता है।

जैविक खेती में जैव नियंत्रकों का प्रयोग करने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक है कि प्रयोग किए जा रहे जैव नियंत्रक पंजीयन कमेटी द्वारा पंजीकृत हों। भारत मेंजैव नियंत्रकों से विकसित जैव नियंत्रक उत्पादों का पंजीकरण केंद्रीय कीटनाशी बोर्ड व पंजीयन कमेटी द्वारा किया जाता है। अब तक इन्सेक्टीसाइड ऐक्ट (1968) सेक्शन 9 (3B) एवं 9 (3) के अंतर्गत लगभग 10 जीवाणुओं (*सूडोमोनास फ्लोरेसन्स, बर्कहोल्डेरिया, बैसिलस सबटिलिस, सिरेशीया मारसेसन्स* आदि), 20 से ज्यादा कवक (*ट्राइकोडर्मा, ऐस्पर्जिलस नाइजर, वर्टिसिलियम, कोनिओथीरियम, पेसिलोमाइसिस, पैनिसिलियम* आदि) तथा 2 विषाणुओं पर आधारित जैव नियंत्रक उत्पाद देश में पंजीकृत हैं। रोग नियंत्रण के लिए प्रयोग किए जाने वाले जैव नियंत्रकों में *ट्राइकोडर्मा, सूडोमोनासफ्लोरेसन्स* और *बैसिलससबटिलिस* मुख्य है।

ट्राइकोडर्मा : यह एक सर्वव्यापी कवक है जो विश्व भर में मृदा और अन्य जैविक पदार्थों पर पायी जाती है। इस कवक की विभिन्न प्रजातियाँ प्रमुख रूप से *ट्राइकोडर्मा हरजियानम, ट्राइकोडर्मा वाइरेन्स, ट्राइकोडर्मा विरिडी* और *ट्राइकोडर्मा एस्पेरेलम* पर आधारित कई जैव नियंत्रक उत्पाद वर्तमान में बाजार में उपलब्ध हैं। *ट्राइकोडर्मा* आधारित जैव नियंत्रकों का प्रयोग विभिन्न फसलों में बीज व मूल विगलन, जड़ विगलन, श्वेत सड़न, कौलर रौट, उकठा आदि बीमारियों के नियंत्रण के लिए किया जाता है। यह फफूंदी रोग कारकों के विरुद्ध कई तरीकों से कार्य करती है। प्रत्यक्ष रूप से ट्राइकोडर्मा परीजीविता, कवकरोधी जैवरसायन स्रावित करके और पोषण तथा स्थान के लिए रोगकारकों के साथ प्रतिस्पर्धा करके रोगकारक की बढ़त को रोकता है। साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से यह पौधों में रोगकारक के विरूद्ध प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न करके रोग नियंत्रण में सहायक रहती है। इसके अलावा ट्राइकोडर्मा मृदा में उपस्थित कई प्रकार के खनिज और पोषक तत्वों का अवशोषण करके पौधों के लिए आसानी से उन्हें उपलब्ध करा देती है जिससे पौधों के विकास पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है और उपचारित पौधों की बढ़त अच्छी होती है। इस कवक की बहुमुखी क्रियाशीलता के कारण वर्तमान में विश्व भर में सबसे अधिक पंजीकृत जैव नियंत्रक उत्पाद ट्राइकोडर्मा पर आधारित हैं और लगभग हर फसल में रोग

नियंत्रण के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

सूडोमोनासः यह एक जीवाणु है जो की मृदा में बहुतायत में पाया जाता है। जैव नियंत्रक के रूप में इस जीवाणु की *सूडोमोनास फ्लोरेसेन्स* नामक प्रजाति का प्रयोग सबसे ज्यादा हो रहा है। ट्राइकोडर्मा की ही भाँति यह जीवाणु भी रोगकारक सूक्ष्मजीवों के विरूद्ध विभिन्न जैवरसायन निकालता है जो कि रोगकारक के लिए हानिकारक होते हैं और उनकी बढ़त को रोकते हैं, साथ ही पोषण तथा स्थान के लिए रोगकारकों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं और पौधों में रोगकारक के विरूद्ध प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न करने में भी सक्षम हैं। रोग नियंत्रण के साथ–साथ यह जीवाणु भी पौधों के विकास की वृद्धि में सहायक रहता है।

बैसिलसः यह भी एक जीवाणु है जिसकी *बैसिलस सबटिलिस* नामक प्रजाति का प्रयोग जैव नियंत्रक के रूप में किया जा रहा है। रोग नियंत्रण के लिए यह जीवाणु भी सूडोमोनासकी तरह प्रतिजीविता और रोगकारक के साथ प्रतिस्पर्धा करके रोग नियंत्रण करता है।

जैव नियंत्रकों के प्रयोग की विविध जैव नियंत्रकों का रोग नियंत्रण के लिए प्रयोग बीजोपचार, मृदा उपचार,पौध उपचार और पर्णीय छिड़काव के रूप में किया जा सकता है। जैव नियंत्रकों से ज्यादा से ज्यादा प्रभावी ढंग से रोग नियंत्रण पाने के लिए लक्षित रोगकारक के जीवन चक्र और प्रसारण के तरीकों का उचित ज्ञान होना आवश्यक है। बीज और मृदा जनित रोगों के नियंत्रण के लिए बीजोपचार और मृदा उपचार उत्तम तरीका है, वहीं वायु से प्रसारित रोगों के लिए पर्णीय छिड़काव का प्रयोग करने से कुछ हद तक रोग नियंत्रण किया जा सकता है।

बीजोपचारः पौध रोगों के प्रबंधन के लिए, जैव नियंत्रकों के उपयोग की सबसे सरल विधि बीजोपचार है। बीजोपचार करने से बीज जनित व कई प्रकार के मृदा जनित रोगों से पौधों को बचाया जा सकता है। यह विधि विभिन्न फसलों में लगने वाले बीज विगलन, जड़ विगलन, पौध विगलन व उकठा रोगों की रोकथाम में प्रभावी रहती है। यहाँ तक की कई आंतरिक बीज जनित रोग जैसे की गेहूँ के कंडुआ रोग को भी जैव नियंत्रकों से बीजोपचार द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। बीजोपचार करने पर जैव नियंत्रक का प्रभाव बीज की सतह व बीज के चारों ओर के वातावरण के साथ ही जड़ की सतह व जड़ के चारों ओर के वातावरण पर भी प्रभाव डालता है। जैव नियंत्रक बीज और विकसित हो रही जड़ की सतह पर पूरी तरीके से फैल कर स्थापित हो जाते हैं और मृदा जनित रोगकारकों को पौधे को संक्रमित करने से रोकते हैं।

पौध उपचारः कई फसलों, जैसे कि सब्जियाँ व धान, में नर्सरी में पौध उगा कर खेत में रोपित करी जाती है। इन फसलों में पौध को उखाड़कर उसकी जड़ों को जैव नियंत्रक के घोल में 25–30 मिनट तक डुबा कर रखा जाता है। बाद में इस उपचारित पौध कि खेत में रोपाई कर दी जाती है। इससे पौध को कई प्रकार के मृदा जनित रोगों से बचाया जा सकता है। शिमला मिर्च, बैंगन, टमाटर आदि सब्जियों में लगने वाले कौलर रौट रोग, उकठा व धान में शीथ ब्लाइट रोग के नियंत्रण के लिए यह एक अच्छी विधि है।

मृदा उपचारः कई रोगकारक कवक जैसे कि *पीथीयम, फाइटोफ्थोरा, राइजाइक्टोनिया सोलानी, स्क्लैरोशियम रोल्फसाई, स्क्लैरोटीनिया स्क्लैरोटीओरम* आदि मृदा में कई वर्षों तक जीवित रह सकते है। यह कवक विभिन्न फसलों (टमाटर, शिमला मिर्च, गोभी, मिर्च, बैंगन, बीन, मटर, सरसों, सूरजमुखी, मूँगफली, चुकंदर, चना, मसूर, उरद, मूंग, अरहर आदि) में बीज विगलन, जड़ विगलन, उकठा, सफेद सड़न, तना व कौलन रौट, आद्र गलन आदि रोग पैदा कर काफी आर्थिक नुकसान फसल को पहुँचाते हैं। इन रोगों के नियंत्रण के लिए जैव नियंत्रकों को मृदा में मिलाकर विभिन्न मृदा जनित रोगों को रोका जा सकता है। परंतु बड़े पैमाने पर खेत में जैव नियंत्रकों को मिलाना कठिन है। इसके लिए बहुत भारी मात्रा मैं जैव नियंत्रक की आवश्यकता होगी तथा इनको खेतों में सामान रूप से फैलाने में भी समस्या होती है। अतः जैव नियंत्रकों को, विशेषकर ट्राइकोडर्मा के उत्पादों को, बड़े स्तर पर उपयोग करने के लिए इन्हें गोबर की खाद में मिलाकर प्रयोग किया जाता है। इस विधि में जैव नियंत्रक उत्पाद को खेत में ही गोबर कि खाद की ढेरी में मिला दिया जाता है। ऐसे में यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि जैव नियंत्रक मिलाने से पहले खाद में 30–40% नमी जरूर हो। जैव नियंत्रक मिलाने के बाद खाद कि ढेरी को पॉलीथीन शीट से ढँक दिया जाता है और 15–20 दिनों तक छोड़ देते हैं। इस अवधि के दौरान प्रत्येक 5–7 दिनों के अंतराल पर गोबर की खाद को पलट दिया जाता है ताकि जैव नियंत्रक पूरी खाद में अच्छे से विकसित हो जाए। इस जैव नियंत्रक युक्त खाद को बुवाई के समय समान रूप से खेत में मिला दिया जाता है। खेत में मिलाते समय खेत में उचित नमी होना आवश्यक है। गोबर की खाद के अलावा अन्य किसी भी जैविक खाद जैसे कि केंचुए की खाद, प्रेस मड, पोल्ट्री मैन्यूर इत्यादि का भी प्रयोग किया जा सकता है। यह खाद न सिर्फ जैव नियंत्रक को खेत में आसानी से फैलाने में सहायक है बल्कि साथ ही ये जैव नियंत्रक को खेत में स्थापित और विकसित होने के लिए आधार भी देती हैं।

पर्णीय छिड़कावः पर्णीय रोग जैसे कि धान में भूरे धब्बे, ब्लास्ट, गेहूँ के धब्बों आदि के निदान के लिए जैव नियंत्रकों को छिड़काव के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। चूंकि पर्णीय छिड़काव के लिए प्रयोग किए जाने पर जैव नियंत्रक सीधे तौर पर सूर्य के ताप, किरणों आदि से प्रभावित होते हैं इसलिए इनका छिड़काव हमेशा शाम के समय करना चाहिए। यह भी पाया गया है कि छिड़काव के रूप में जैव नियंत्रकों का प्रयोग वर्षा ऋतु में ज्यादा प्रभावी रहता है क्योंकि उचित आर्द्रता होने पर जैव नियंत्रकों को पर्ण सतह पर विकसित और स्थापित होने में आसानी होती है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

एकीकृत रोग–कीट नियंत्रण अपनाकर अरहर का अधिक उत्पादन लें

प्रदीप कुमार बरेलिया, राजेश कुमार पाण्डे एवं अजय कुमार
कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

अरहर मध्य प्रदेश की एक प्रमुख दलहन फसल है जो कि खरीफ मौसम में की जाती है, देश में इसकी उत्पादकता 760 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है। अरहर उगाने वाले प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडू, पंजाब व हरियाणा है। मध्य प्रदेश में अरहर की खेती लगभग 4.0 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जा रही है जिसकी उत्पादकता 870 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है। जबकि अरहर की उत्पादन क्षमता 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है अतः इसका उत्पादन बढ़ने की प्रबल संभावना है। यह लंबी अवधि की फसल है इसलिए प्रारंभिक अवस्था से लेकर कटाई तक कई प्रकार के रोग व कीटों का आक्रमण होता है जो कि अरहर की कम उत्पादकता का एक प्रमुख कारण है, एक सर्वेक्षण के अनुसार कीट व्याधियों से अरहर में 15–20 प्रतिशत तक नुकसान होता है किसान भाई उन्नत शस्य क्रियाएं व रोग कीटों का समन्वित नियंत्रण कर अधिक उत्पादन ले सकते हैं।

उन्नत शस्य क्रियाएं:– हल्की दोमट या मध्यम प्रकार की प्रचुर स्फुर वाली भूमि जिसमें पानी का निकास अच्छा हो अरहर के लिए उपयुक्त है वर्षा आरंभ होने के बाद दो–तीन बार हल चलाकर घास–फूस निकाल कर खेत तैयार करें व मध्य जून से जुलाई प्रथम सप्ताह तक 20 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बोआई करें। बोआई कतारों में करें, लाईन से लाईन की दूरी 60 सेमी. व पौधे से पौधे की दूरी 20 सेमी. रखें।

पोषक तत्व प्रबंधनः– भूमि की भौतिक दशा को ठीक रखने के लिए 5 टन गोबर की खाद अथवा 2 टन वर्मी कम्पोस्ट अथवा 2 टन बायोगैस स्लरी को खेतों में डालें। मृदा परीक्षण की सिफारिश के अनुसार रासायनिक उर्वकों का प्रयोग करें। सामान्यतः दहलनी फसलो हेतु प्रति हेक्टेयर 20 कि.ग्रा. नत्रजन व 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति 100 कि.ग्रा. डी.ए.पी. से हो जाती हैं। बुवाई पूर्व अरहर के बीज को राइजोबियम जैव उवर्रक की 10 ग्राम मात्रा तथा स्फुर घोलक जीवाणु की 5 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से निवेशित कर बोयें।

खरपतवार प्रबंधन :– बोने के 20–25 दिन बाद हस्तचलित हो कुल्फा को चलायें जिससे खरपतवार नष्ट होने के साथ साथ भूमि में वायु संचार भी होता है जिससे फसल की बढ़वार ठीक होती है। रासायनिक विधि से नियंत्रण में शाकनाशी रसायनों की अनुसंशित मात्रा को लगभग 600 मीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर के मान से फ्लैट फेन नोजल से निर्धारित समय पर समान रूप से छिड़काव करें।

अरहर के साथ अंतःवर्तीय फसल पद्धति :– लम्बी अवधि की वर्षा आधारित फसल होने व जोखिम के कारण किसानों का ध्यान कम अवधि की फसलों की ओर आकर्षित हुआ है। साथ ही जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि के कारण कम फूल आना व कम दाना बनने से उत्पादन लगातार कम हो रहा है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जहाँ मुख्य रूप से अरहर की फसल ली जाती है वहाँ उन्नत तकनीकी पर आधारित अरहर –सोयाबीन (2:4) या अरहर–ज्वार (2:2) अंतःवर्तीय फसल पद्धति को अपनाकर प्रति इकाई क्षेत्र से फसल चक्र के सिद्धान्त के अनुरूप दलहनी फसल के साथ ज्वार लेकर भूमि की उर्वराशक्ति का समुचित उपयोग कर सकते है।

प्रमुख रोग–कीट व उनका एकीकृत नियंत्रण

(अ) **प्रमुख रोग** – अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ पानी ठहरता हो वहां फाइटोप्थोरा ब्लाइट रोग से अधिक हानि होती है, रोग के लक्षण पौधे के मुख्य तने या शाखाओं पर वर्षा के बाद गहरे भूरे रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते है इस स्थान पर तना कमजोर होकर टूट जाता है कभी–कभी वाली जगह पर तना घटकर एक गांठ सी बन जाती है, रोगी पौधों की पत्तियां लटककर किनारों से मुड जाती है और गिरने लगती हैं व पौधा सूख जाता है।

सूखा रोग (उकठा या विल्ट) – अरहर उगाने वाले क्षेत्रों में सबसे अधिक हानि इसी रोग जनक फ्यूजेरियम उडम मृदा में रहती है व अरहर के पौधों में जड़ों के माध्यम से प्रवेश कर उसके संवहन तंत्र को अवरूद्ध करता है

शाकनाशी का नाम	मात्रा / हेक्टेयर	प्रयोग	खरपतवार नियंत्रण
फ्लूक्लोरालिन	3000 मि.ली.	बुवाई पूर्व	समस्त खरपतवार
पेंडीमेथेलीन	3000 मि.ली.	बुवाई के बाद अंकुरण पूर्व	संकरी पत्ती वाले
इमाजाथाईपर	750 मि.ली.	बुवाई पश्चात् 15–20 दिन बाद	संकरी व चौड़ी पत्ती वाले

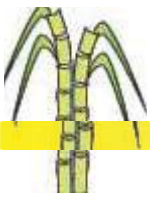

जिससे रोगी पौधे की पत्तियों पीली पड़कर मुरझाने लगती है। और पौधा चोटी से कुम्हलाकर लटक जाता है। इस प्रकार धीरे–धीरे पूरा पौधा सूख जाता है, इन प्रभावित पौधों के तने की छाल निकालने पर लंबाई में गहरे भूरे रंग की काली धारियाँ तने पर दिखती हैं।

(ब) **प्रमुख कीट**–चने की इल्ली पीली, हरी, गुलाबी, भूरी या काली होती है व इनके शरीर के किनारों पर हल्की एवं गहरी धारियां होती है, छोटी इल्लियाँ हरे पदार्थ को खुरचकर खाती हैं, बड़ी इल्लियाँ कलियाँ, फूलों एवं फलियों को नुकसान पहुंचाती हैं। प्रौढ़ कीट भूरे रंग की होती है, अगले पंखों में सेम के बीज के समान एक–एक काला धब्बा रहता है, पिछले पंखों के बाहरी किनारों पर काली पट्टी रहती है।

पिच्छी की शलभ – इसकी इल्लियाँ हरे या भूरे रंग की होती हैं तथा शरीर में छोटे–छोटे रोयें तथा धारियाँ रहती है, प्रौढ़ भूरे रंग का होता है एवं इसके आगे के पंखों में सफेद धब्बा रहता है व पिछले पंखों में एक–एक काला धब्बा रहता है। इस कीट की इल्लियाँ पुष्प कलिका एवं पुष्पों को खाती हैं, फलियां आने पर यह फलियों में छेद करके अंदर घुस जाती हैं व दानों को खाती हैं।

फली बग (पॉड बग) – भूरे व हरे रंग के फली बग पौधों के विभिन्न कोमल भागों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते है, आरंभिक अवस्था में ये अपने सुई मुखांग से कोमल तनों, पत्तियों व फूल फलियों का रस चूसते है बाद में फलियों के नरम दानों का रस चूसते है, फसलस्वरूप फल्लियां सिकुड जाती है व दाने छोटे तथा सिकुडे बनते है।

(स) **एकीकृत नियंत्रण –**

- गर्मियों में गहरी जुताई करें, पूर्व लगी अरहर की फसल के अवशेषों को इकट्ठा कर नष्ट करें तथा अच्छे जल निकास वाले खेतों में अरहर लगाएं।
- रोग प्रतिरोध जातियाँ अपनायें, जैसे अरहर की जेए –4, आशा, जेकेएम–7, सी–11, एमए–3 व बाहर को लगावें।
- बीज को फफूंदनाशक द्रव थायरम +बाविस्टीन (2:1) की 3 ग्राम मात्रा या ट्राइकोडर्मा की 10 ग्राम मात्रा द्वारा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बोयें।
- प्रथम छिड़काव के लगभग 20 दिन बाद जबकि फलियाँ बन चुकी हों तब डायमिथियेट 30 ईसी 1 लीटर या मिथाइल डेमेटान 25 ईसी 1 लीटर दवा 700–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।
- अरहर–ज्वार (2:2 लाइनें) या अरहर–सोयाबीन (2:4) अंतरवर्तीय फसल पद्धति को अपनाएं।
- 50 प्रतिशत पुष्पन पूर्ण होने पर मोनोक्रोटोफॉस 36 ईसी 750 मिली. दवा को 700–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें, यह मात्रा प्रति हेक्टेयर के लिए है।

कटाई व उपज :– इस प्रकार उन्नत शस्य क्रियाऐं अपनाने पर अरहर की 12–15 क्विंटल उपज प्राप्त होती जिसको भली भाँति सुखाकर 8–10 प्रतिशत नमी पर भण्डारित करना चाहिए।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

मधुमेह प्रबंधन में ''मूँग'' का योगदान

कामना तलरेजा[1] एवं अनीता सावनानी[2]

[1]बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

मूँग एक दलहन है जिसकी खेती मुख्यतः भारत, चीन एवं दक्षिण–पूर्वी एशिया के अनेक देशों में बहुतायत से की जाती है। भारतीय पाक कला में मूँग का उपयोग फलियों, दालों एवं खड़ी मूँग के रूप में किया जाता है। खड़ी मूँग प्रोटीन, डायटरी फाइबर (रेशा), मैग्नीशियम एवं 'B' समूह के विटामिनों से भरपूर होती है। इसके सही गुण इसे मधुमेह (डायबिटीज़) के नियंत्रण एवं प्रबंधन के लिहाज से उपयोगी बनाते हैं।

- **रेशा एवं मधुमेह प्रबंधन**

100 ग्राम मूँग मे 4.1 ग्राम रेशा पाया जाता है पिछले 20 वर्षों में हुए अनेक शोधों से यह प्रमाणित हो चुका है कि अधिक मात्रा में रेशे (30–40 ग्रा./दिन) के समावेश से मधुमेह रोगियों के रक्त में शर्करा का नियंत्रण होता है यही नही अपितु जामा/आर्चीव शोध पत्रिका के मई 2014 के अंक में छपी रिपोर्ट के आधार पर कहा जा सकता है कि खाने में रेशे एवं 'मैग्नीशियम का अधिक उपयोग करने से टाईप II मधुमेह के खतरे से भी बचा जा सकता है। इस लिहाज से मूँग न केवल मधुमेह नियंत्रण में सहायक है अपितु यह मधुमेह से बचाव में भी महत्वपूर्ण योगदान रखती है।

- **प्रोटीन एवं मधुमेह प्रबंधन**

100 ग्रा. मूँग में 24 ग्रा. प्रोटीन होता है जो इसे शाकाहारी लोगों के लिए प्रोटीन का उत्तम स्रोत बनाता है। 29 अप्रैल 2014 में 'साइन्स डेली.कॉम' नामक वेबसाइट में छपी रिपोर्ट के मुताबिक कोलम्बिया में हुए एक शोध से यह प्रमाणित होता है कि मधुमेह के रोगी यदि सुबह के नाश्ते मे प्रचुर मात्रा में प्रोटीन लेते हैं तो इनकी नाश्ते एवं दोपहर के खाने के बाद वाली रक्त शर्करा का स्तर नियंत्रित हो जाता है।

- **ग्लाईसिमिक इंडेक्स एवं ग्लाइसिमिक लोड तथा मधुमेह प्रबंधन**

ग्लाईसिमिक इंडेक्स एवं ग्लाइसिमिक लोड मधुमेह से संबंधित वह महत्पूर्ण सूचकांक है जो यह निर्धारित करते हैं कि अमुक खाद्य पदार्थ किस रफ्तार से एवं कितनी मात्रा में रक्त शर्करा का स्तर बढ़ाता है। मूँग का ग्लाईसिमिक इंडेक्स एवं ग्लाईसिमिक लोड कम है जो इसे मधुमेह के रोगियों के लिए एक उत्तम खाद्य पदार्थ बनाता है।

जामा/आर्चीव नामक शोध पत्रिका में छपे एक शोध के अनुसार Type-II डायबिटिस से ग्रसित व्यक्ति यदि सूखे मेवे, बीन्स एवं दलहन जैसे खाद्य पदार्थो का समावेश अपने भोजन में करते हैं तो इनका ग्लाईसिमिक कंट्रोल सुधरता है।

उपरोक्त गुणों को ध्यान में रखते हुए मधुमेह के रोगियों को अपने आहार में प्रतिदिन प्रचुर मात्रा में मूँग एंव अन्य दलहनों का समावेश करना चाहिए। वे सुबह के नाश्ते में उबले मूँग की चाट अथवा अंकुरित मूँग युक्त सलाद ले सकते हैं। वे दोपहर को सब्जियाँ युक्त दलिया अथवा खिचड़ी में भी मूँग को डालकर पका सकते हैं।

यह सर्वविदित है कि भारत विश्व का डायबिटिक कैपिटल के रूप में विख्यात है भारत में मधुमेह के रोगियों की संख्या दिन दोगुनी – रात चौगुनी बढ़ रही है। इन हालात में भारत में बहुतायत में पाये जाने वाले दलहन जैसे मूँग, काला चना इत्यादि को आहार में स्थान देने से भारत में व्याप्त इस 'महामारी' से 'बचाव' एवं नियंत्रण संभव हो सकता है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

क्या है ट्राइको कार्ड?

राघवेन्द्र कुमार एवं संगीता श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

फसलों की समुचित वृद्धि तथा समग्र विकास के क्रम में नाशी जीवों के नुकसान से अनेक गंभीर आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती है। इन दिनो प्रायः कीट नियंत्रण तथा कृषि प्रबन्धन में रासायनिक दवाओं का घड़ल्ले से प्रयोग किया जाता है। एक तरफ जेनेटिक मॉडिफाइड हायब्रिड बीज, रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाओं के अंधाधुंध प्रभाव से वातावरण में प्रदूषण फैल रहा है, दूसरे तरफ जनमानस में कैंसर तथा अन्य घातक बीमारी के फैलने से लोग व सरकार चिन्तित रहते है। विकसित देशों के कीटनाशक दवा के निर्माण तथा इस्तेमाल पर अंशतः प्रतिबंध लगा रखा है और वहाँ जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा। हमारे देश में इस दिशा में व्यापक पहल शुरू किए गए है लेकिन बहुराष्ट्रीय कीटनाशक दवा कम्पनी के प्रभाव तथा दवाब के कारण भोले–भाले किसानों की समृद्धि लुटते चले जा रहे हैं। यह एक अत्यन्त गंभीर चिंता का विषय है।

फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों में ऊतक बेधक नाशी कीट आर्थिक रूप से सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अनेक रूप, रंग तथा अवस्था खेतों में खड़े फसलों को क्षति पहुँचाते है। गन्ना फसल को नुकसाान पहुँचाने में चोटी बेधक, तना बेधक, प्ररोह बेधक, गुरदासपुर बेधक, गुलाबी बेधक, जड़ बेधक, प्लासी बेधक आदि उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में देखे जाते है।

नाशी जीवों को जैविक साधन जैसे परजीवी, जीवभक्षी, तथा व्याधिजन द्वारा नियंत्रित करने की प्रबंधन विधि जैविक नियंत्रण या बायोकन्ट्रोल कहलाती है। यह सर्वविदित है कि प्रत्येक निम्नस्तरी जीव उच्च स्तरीय जीव के भोज्य पदार्थ होते है, और जिसके तहत जैविक तथा अजैविक घटकों के निर्धारित संतुलन कायम रहता है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक जीव दूसरे किसी जीव पर आश्रित रहते है, खाद्य श्रृंखला बनती चली जाती है, और अन्ततः खाद्य जाल का विस्तृत निर्माण होता है। परिस्थितिकीय सिद्धान्त का यह अनुपम जीवन दर्शन जैविक नियंत्रण में लागू होता है। इसके तहत आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण जीवों की संख्या को नियंत्रित करके फसलों की पैदावार बढ़ाने में ट्राइकोग्राम्मा सबसे लोकप्रिय मित्र कीट के रूप में जाना जाता है।

समकालीन परिवेश में परजीवियों में ट्राइकोग्रामा को जैवनियंत्रण प्रयोगशाला में संवर्धित करके खेतों में विमोचित किया जाता है। यह कीट गन्ने के साथ–साथ अन्य फसलों पर लेपिडोप्टेरा वर्ग के उत्तक बेधक कीटों के अण्डो पर पूर्ण जीवन निर्वाह करते है।

प्रकृति में ट्राइकोग्रामा की अनेक जाति तथा वंश मिलते है जो कपास, धान, गन्ना, मक्का, दाल, अरण्डी, टमाटर, आलू, सोयाबीन, नींबू, सेब, जंगली वन पेड़, खरपतवार, लाह आदि के परिस्थितिक तंत्र से जुड़े होते है। यह मित्र कीट अत्यन्त छोटे आकार, 0.4 से 0.7 मिलीमीटर लम्बाई तथा 0.15 से 0.25 मिलीमीटर चौड़ाई वाले होते हैं। कीट वैज्ञानिक इन्हें पैर पर पाए जाने वाले उपांग 'टर्सी' के विशेष उपस्थिति के आधार पर पहचान करते हैं।

यह बात भी जानना अत्यन्त जरूरी है कि ट्राइकोग्रामा के व्यस्क कीट स्वतंत्र जीवी प्रकृति के होते है। मादा कीट अपने नवजात अण्डो को आश्रय कीट के अण्डो पर जीवन निर्वाह के लिए छोड़ देते है। विकास के क्रम में लार्वा आश्रय कीट के अंडो को खा कर व्यस्क होते ही बाहर निकल जाते है। व्यस्क कीटों में पंख निकल आते हैं जिसकी सहायता से वे उड़ कर प्रजनन तथा अण्डा देने के लिए एक जगह से दूसरे जगह पहुँचते है। प्रकृति के इस अजीबोगरीब जीवन निर्वाह की प्रक्रिया तथा अवस्था के चलते ट्राइकोग्रामा को 'अण्डा पराश्रयीप्राणी' के रूप में जाना और पहचाना जाता है।

कीटविज्ञान के दृष्टिकोण में ट्राइकोग्रामा तथा ट्राइकोग्रेम्मटॉडिया को ट्राइकोग्रेम्मटिड उपवर्ग तथा हायमोप्टेरा वर्ग में वर्गीकृत किया गया है। इस उपवर्ग के अन्तर्गत लगभग 400 से अधिक जाति तथा वंश कीट शामिल है जो 200 से अधिक आश्रय कीटों के अण्डो पर आंशिक जीवन चक्र व्यतीत करते है। हमारे देश में लगभग 26 प्रकार के ट्राइकोग्रम्मटिड पाए जाते है जिनमें ट्राइकोग्रामा सबसे अधिक लोकप्रिय है।

ट्राइकोग्रामा की लगभग 130 जातियों में से 20 जाति भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र में पायी जाती हैं। ट्राइकोग्रामा किलोनी, टा. फ्लेन्डेरसी, टा. जेपोनिकम, टा. एजराई तथा टा. एसीएई प्रमुख जाति हैं। हमारे देश में गन्ना फसल में प्राय ट्राइकोग्रामा किलोनीस, टा. जेपोनिकम में तैयार किए गए मित्र कीट है जो व्यवसायिक रूप से उपलब्ध हैं।

ट्राइकोग्रामा को बड़े पैमाने में करोड़ों की संख्या में उत्पादित करने की उन्नत तकनीकि विश्व के अनेक देशों में विकसित की जा चुकी है। प्रयोगशाला से निकल कर यह मित्र कीट बड़े पैमाने में औद्योगिक रूप से पैदा किए जा रहे हैं और इस कार्य में दिन प्रतिदिन सम्मुन्त तकनीकी के उपयोग में लाए जा रहे है। मित्र कीटों के पालन–पोषण हेतु प्रायः सीटोट्रोग्रा

सीरेलीला नामक आश्रय कीटों के अण्डो पर किया जाता है। चीन में ट्राइकोग्रामा को रेशमकीट तथा कोरसेरा सीफोलोनिका के अण्डो पर पाला जाता है। भारत में इसे सिर्फ कोरसेरा सीफोलीनिका, जो एक प्रकार का अन्न भंडारण नाशीकीट है आश्रय कीट प्रयोगशाला में होता है।

ट्राइकोग्रामा के उत्पादन में आश्रयकीटों के पालन पोषण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है इसलिए सस्ते मोटे अनाज जैसे ज्वार, मक्का, बाजरा मूँगफली आदि को उपयोग में लाते है। आश्रय कीटों की अनाज में जीवन चक्र के लार्वा तथा प्यूपा अवस्था पूरे करके सिर्फ व्यस्क कीटों को अलग कर लिया जाता है। व्यस्क पतंगा कीट प्रजनन कार्य करने के बाद अण्डो के समूह को अलग जमा कर लिया जाता है। इन्हें अल्ट्रा किरणों से उपचारित करके गोंद लगे गत्तेदार कार्डो पर चिपकाया जाता है। इसे 'ट्राइको कार्ड' या 'अण्डा कार्ड' के रूप में जाना जाता है।

खेतों में ट्राइको कार्ड खास विधि से लटका दिए जाते है, जिनपर एक निर्धारित संख्या में ट्राइकोग्रामा सुशुप्ता अवस्था में चिपके रहते है। समय आने पर यह नन्हें कीट निकलकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ कर उत्तक बेधक कीट के अण्डों तक पहुच जाते हैं।

ट्राइको कार्ड को कीट विशेषज्ञ अथवा कृषि सलाहकार के सुझाई गई सिफारिश के अनुसार खेत में विमोचन यानी छोड़ने के लिए भेजा जाता है। इसके कुछ कार्ड दुबारा संवर्धन कार्य के लिए अलग बचा कर रख लिया जाता है। कार्ड को 10 से 15 दिनों तक निम्नतम तापमान पर सामान्य फ्रिज में भंडारण के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

ट्राइकोग्रामा के व्यवसायिक उत्पादन के दिशा में अनेक चुनौतियां है। प्रायः देखा गया है कि गर्म मौसम तेज धूप के अल्ट्रा किरणे रासायनिक दवा के प्रयोग तथा अन्य प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर लेने के अनेक कारण से कीटों में मृत्यु दर दिन प्रतिदिन बढ़ने लगती है। इसके लिए वातावरण के प्रतिकूल प्रभाव से सहनशील तथा उच्च गुणवत्ता वाले जैव अभियांत्रिक ट्राइकोग्रामा कीटों के निर्माण कार्य में व्यापक पहल की आवश्यकता है जो आण्विक विज्ञान तथा जैव प्रौद्योगिकी के विविध तकनीकी उपायों से संभव हो सकता है। दूसरी तरफ कीट वैज्ञानिक ट्राइकोग्रामा के उत्पादन में सहायक आश्रय कीट को कृत्रिम विधि से प्रयोगशाला में बनाए जाने में सफल रहे है। इन कृत्रिम अण्डों पर ट्राइकोग्रम्मा कीट बड़े आराम से अंडा दे कर वंश को बढ़ाते है और पादप जगत में नाशी कीटों का नाश होता चला जाता हैं। इसके चलते आश्रय कीटों के पालन पर व्यय की स्वतः बचत हो सकती है।

ट्राइकोग्रामा पर किए गए शोध परिणाम के आधार पर कृषि वैज्ञानिक गन्ना फसल हेतु 50,000 कीट प्रति हेक्टेयर और अन्य फसल, 75,000 कीट प्रति हेक्टेयर मक्का तथा 150,000 कीट प्रति हेक्टेयर कपास में प्रयोग करने की सिफारिश करते है।

वांछित परिणाम के लिए प्रत्येक फसल वर्ष में नाशी बेधक कीटों से प्रभावित खेत में ट्राइकोग्रामा का प्रयोग विविध चरणों में विशेषज्ञ की देखरेख में करना चाहिए। कीट छिड़काव के 15 दिन पहले तथा बाद तक के अवधि में रासायनिक दवाओं का उपयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिए। ध्याान रहे रासायनिक कीटनाशक का असर ट्राइकोग्रामा पर सामान्य रूप से अन्य कीटो के साथ होता है। अगर खेतों के आस पास रासायनिक दवा का उपयोग नहीं होता है, तो यह मित्र कीट की संख्या स्वतः गति से पादप परिस्थितिकी में विद्यमान रहते है। फिर भी जैविक कृषि के दौर में ट्राइकोग्राम किसानों के बीच लोकप्रिय हो रहे है, जो अत्यन्त शुभ सूचक है।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

डिजिटल लाइब्रेरीः ज्ञान का भंडार

आशीष सिंह यादव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

दोस्तों, देश में हर किसी को स्तरीय पुस्तकें पढ़ने को मिल सके इसके लिए केन्द्र सरकार ने एक डिजिटल लाइब्रेरी की स्थापना की है। इसमें लाखों पुस्तकें ऑनलाइन उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग कोई भी मुफ्त में कर सकता है। आइये जाने कि इस लाइब्रेरी की क्या है खासियत और हम इसका लाभ कैसे उठा सकते हैं:

- भारत सरकार ने एक डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया (डीएलआई) की स्थापना की है जो मुफ्त में उपलब्ध लाखों दुर्लभ पुस्तकों का एक डिजिटल कलेक्शन है।
- डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया की शुरुआत वर्ष 2000 में इस विजन के साथ हुई थी कि महत्वपूर्ण पुस्तकों को डिजिटल रूप में संरक्षित किया जाये और उसे हर किसी को मुफ्त में उपलब्ध कराया जाये।
- डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया के तहत अभी तक सिर्फ पुस्तकें ही उपलब्ध हैं। लेकिन आगे चल कर इसमें ऑडियो–विजुअल सामग्री भी उपलब्ध कराई जायेगी।
- इस लाइब्रेरी की वेबसाइट – http://www-dli-ernet-in/ पर जाकर आप कोई भी पुस्तक डाउनलोड कर सकते हैं, जो पीडीएफ रूप में या स्कैन कॉपी के रूप में उपलब्ध होती है।
- डिजिटल लाइब्रेरी एक ऑनलाइन लाइब्रेरी होती है, जिसमें किताबों, ऑडियो विजुअल मैटीरियल आदि का कलेक्शन होता है, जिन्हें इलेक्ट्रानिक फार्मेट में स्टोर किया जाता है।
- डिजिटल लाइब्रेरी का फायदा यह है कि इसके लिए आपको लाइब्रेरी जाने की जरूरत नहीं होती है, आप घर बैठे, कॉलेज में या फील्ड में बैठ कर अपने किसी डिवाइस पर किताबें पढ़ सकते हैं।
- इस लाइब्रेरी का सबसे बड़ा फायदा उन स्टूडेंट्स को मिलेगा जो किताबें महँगी होने के कारण खरीद नहीं पाते और वंचित रह जाते हैं। इस लाइब्रेरी के द्वारा वे अच्छे राइटर्स की किताबों का घर बैठे अध्ययन कर सकेंगे।
- पहले चरण में दस लाख पुस्तकों की डिजिटल लाइब्रेरी तैयार करने की योजना है। फिलहाल करीब 5.5 लाख पुस्तकें डिजिटल स्वरूप में उपलब्ध करा दी गई हैं, जिनमें कुल 19. 16 करोड़ पेज हैं।
- इन पुस्तकों में भारतीय भाषाओं की करीब दो लाख पुस्तकें उपलब्ध हैं। डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया की यह वेबसाइट दुनिया भर में देखी तथा सर्च की जाती है और इसे विदेश के यूजर्स से भी फीडबैक मिलता रहता है।
- इसमें भारतीय भाषाओं के अलावा अरबी, डैनिश, डच, अंग्रेजी, फारसी, फ्रेंच, जर्मन, ग्रीक, आइरिस, पोलिश आदि विदेशी भाषाओं की पुस्तकें भी उपलब्ध हैं।

पानी रे पानी

मिथिलेश तिवारी एवं एस.आई. अनवर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

जल की बचत की चर्चा सर्वत्र व्याप्त है, इसका कारण है– जल की बढ़ती मांग और निरंतर घटती आपूर्ति। ग्लोबल वार्मिंग के चलते स्वच्छ जल के स्रोत कम होते जा रहे है। ग्लेशियर पिघलने की गति बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप नदियों, नालों में जलस्तर बढ़कर बाढ़ की स्थिति उत्पन्न कर देता है। समुद्र में जल–स्तर बढ़ने लगता है। नतीजा यह निकलता है कि जहाँ पानी की आवश्यकता होती है वहाँ वह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता है।

शुरूआत करें जल बचाकर

नलों को खुला न छोड़े, पानी पीते वक्त गिलास में पानी न छोड़े। यदि बच जाएं तो उसे गमलों में डालें। आँगन की रोज सफाई करें मगर पानी अधिक बर्बाद न करें। महीने में दो बार धुलाई या निर्धारित दिनों में पोछा लगाकर काम चलाया जा सकता है। गाड़ी धोने के लिए बाल्टी भर पानी काम में लें और पोछे का पानी नालियां आदि साफ करने के काम में लें। घर में काम करने वाले व्यक्ति को पानी बचाने की सख्त हिदायत देना जरूरी है।

टंकी में पानी चढ़ाते वक्त ध्यान रखें की टंकी ओवरफ्लों न हों। या तो ऐसा सिस्टम खरीद लें जिससे टंकी पूरी भरते ही घंटी बज जाए और मोटर स्विच ऑफ की जा सके या फिर मोटर टंकी भरते ही स्विच स्वतः ही बंद हो जाए। अधिकांशतः पानी की बर्बादी टंकियों से गिरते पानी से अधिक होती है।

एक व्यक्ति थोड़ा जागरूक हो तो कई गैलन पानी बचा सकता है। पानी भरकर रखने, सहेजने की आदत को भी बढ़ावा देने की आवश्यकता है। अचानक जलापूर्ति बंद होने पर यही जल आपके काम आता है।

बच्चों में पानी–बिजली बचाने की आदत डालने की जिम्मेदारी हर व्यक्ति की है। अपने घर में ही नही, पड़ोस में भी यदि नल बह रहा हो तो उसे बंद किया जा सकता है। शाम की गपशप की थीम भी जल बचाने की मुहिम में कारगर हो सकती है। इससे आप रिलैक्स भी होगें और एक अच्छा कार्य करने की संतुष्टि भी मन में रहेगी।

पानी राष्ट्रीय संपति है, किसी एक घट की बपौती नहीं। कल जब यही पानी नहीं होगा तो सब क्या करेंगे?नहाते वक्त, कपड़े धोते वक्त, बर्तन मांजते वक्त, सफाई करते वक्त अपनी–अपनी क्षमता अनुसार यदि व्यक्ति प्रण करें कि जल की एक बँद भी बेकार नहीं जाने देगें, उसे सहेजेंगे, अपने बच्चों को भी संस्कारों में यही देंगे तो निस्संदेह पानी बचेगा। जल बचाव के विचार ही जल बचत को प्रभावी बनाने में सहायक होते है।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

कविताएँ

एस.आई. अनवर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

वो तरक्की कर गया

जिसने वतन को लात मारी, वो तरक्की कर गया।
जिसने तोड़ी रिश्तेदारी, वो तरक्की कर गया।

मेहमान को घर से भगाया, कह दिया मसरूफ़ हूँ,
जिसने छोड़ी वज़ादारी, वो तरक्की कर गया।

माँ–बाप की चलने न दी, उनको सुनाई बात दो,
बीवी की मानी बात सारी, वो तरक्की कर गया।

गाँव की गलियों को छोड़ा कार लेने के लिए,
जिसने की उसकी सवारी, वो तरक्की कर गया।

हर बदी उसने करी दुनिया कमाने के लिए,
नेकियों को लात मारी, वो तरक्की कर गया।

माँ–बाप से वहशत हुई ससुराल जिसको भा गया,
बीवी जिसको जाँ से प्यारी, वो तरक्की कर गया।

दुनिया को पाने की ख़ातिर, मर गया जिसका ज़मीर,
बात को सुनलो हमारी, वो तरक्की कर गया।

धर्म का पालन किया जिसने वही घाटे में है,
जिसने सीखी दुनियादारी, वो तरक्की कर गया।

बेवफ़ा, खुदगर्ज़ जो है वही बीमार है,
जिसमें है ये सब बीमारी, वो तरक्की कर गया।

हम भी 'अनवर' से यही कहते थे इसको मान लो,
फिर भी उसने बात ना मानी, वो तरक्की कर गया।

बाज़ार

हर चीज की क़ीमत है हर चीज का बाज़ार,
तुम भी तो ख़रीदार हो और हम भी ख़रीदार।

जिस को समझ है आजकल बस वो ही परेशान,
तुम भी तो समझदार हो और हम भी समझदार।

दिल में तुम्हारे है धुआँ, और मेरे दिल में आग,
हम भी तो रिश्तेदार हैं और तुम भी रिश्तेदार।

हम मशरिक़ से निकलें हैं, तुम मगरिब में डूबोगे,
हम इसके तरफ़दार हैं तुम उसके तरफ़दार।

औरत की तरक्की से अब काहे उलझते हो,
तुम भी तो तरफ़दार थे और हम भी तरफ़दार।

पहले भी मुँह में राम था अब फ़र्क़ है इतना,
पहले बगल में थी छुरी थी अब हाथ में तलवार।

देते थे जिनपे जान वही जान के दुश्मन,
तुम भी तो जाँनिसार थे और हम भी जाँनिसार।

माँ–बाप के एहसान को किसने है चुकाया,
तुम भी तो कर्ज़दार हो और हम भी कर्जदार।

मैं कहूँ तो तुम सुनो और तुम कहो तो मैं,
तुम भी तो शेरबाज़ हो और हम भी शेरबाज़।

बुढ़ापे की लाठी

मैं खुश था बहुत जब बढ़ी उसकी काठी,
मैं समझा था वो है बुढ़ापे की लाठी,
ज़ईफ़ी में आख़िर कमर ही बची थी,
टूटी कमर जब पड़ी उसकी लाठी।
बुढ़ापे में देखो मैं सभी पाठ भूला,
जवाँ वो हुआ है तभी तो त्रिपाठी।
वो कहता है मैं एक खिलता कँवल हूँ,
वो कहता है मुझको कढ़ी जैसे बासी।
डरता हूँ हर दम जुबां खोलने से,
करूँ न मैं क्या जो उसने खटिया उठा दी।
अक़ल मुझको आई मैंने नज़रें झुका लीं,
मेरे सामने उसने गर्दन उठा ली।
वो कहता है मुझसे किया तूने क्या है,
कहूँ तुमसे क्या–क्या उसने मुझको सुना दी।
मैं समझा था जिसको बुढ़ापे की इज़्ज़त,
इज़्ज़त की मय्यत उसी ने उठा दी।
मैं समझा था जिसको बुढ़ापे की लाठी .....

अख़बार की तरह

हम ज़िंदगी को पढ़ गए अख़बार की तरह,
ताज़ा ख़बर है आज हैं बीमार की तरह।
बोली लगा रहे हैं ख़रीदार की तरह,
लगता है आज घर मेरा बाज़ार की तरह।
है खुशियों की दास्तान सुनाऊँ किस तरह,
ग़म की कहानियाँ हैं अंबार की तरह।
मंज़िल की चाह बाक़ी है और पाँव में छाले,
बैठे हैं लंबी राह पर लाचार की तरह।
लंबी शब–ए–फ़राग़ में सब आरज़ूएँ गुम,
दिल ने भी साथ छोड़ा है दिलदार की तरह।
कहने को हमने फैसले अच्छे लिए मगर,
जीते हैं शबोरोज सज़ावार की तरह।
हम ज़िंदगी को पढ़ गए अख़बार की तरह.....

मौला–मौला

सख़्ती नरम कर मौला–मौला, मुझ पे रहम कर मौला–मौला,

तेरा नाम कभी न भूलूँ, इतना करम कर मौला–मौला।

इद्दत–ए–ख़ूँ है तेरे करम से, ख़ून गरम कर मौला–मौला।

जिसका किया है तूने वादा, उसका जनम कर मौला–मौला।

अब्र–ए–रहमत–उमड़ के आए, बरसे जम कर मौला–मौला।

रात अंधेरी राह में काँटे, राह नरम कर मौला–मौला।

तेरे रहम पर मेरा भरम है, मुझ पर रहम कर मौला–मौला।

ऐडिस इजिप्टी का प्रहार : डेंगू

पृशा अंजस
5–सी, लामार्टिनियर बालिका विद्यालय, लखनऊ

एक छोटा सा जीव है मच्छर
करता हमें स्वस्थ से बीमार,
जिससे हम हो जाते लाचार।
ना हमें अच्छा लगे खाना, न मिठाई, न अचार,
पहले तो हमने खुद ही गंदगी फैलाई,
मच्छरों को दावत देकर बुलाई,
इस मौसम में अब डेंगू से होता बुरा हाल,
बच्चे, बूढ़े सब दौड़ रहे अस्पताल,
इस रोग की नहीं होती जल्दी पहचान,
तपता है बदन, रोगी हो जाता परेशान,
इसका उपचार मिलना न होता आसान,
अस्पतालों में छिड़ता भारी घमासान,
पहले हम न हुए सावधान,
अब इससे बचने का ढूँढ़ना होगा समाधान,
सरकार को साफ–सफाई का रखना होगा प्रावधान,
साफ–सफाई स्वच्छ खान–पान,
तथा रहन–सहन का रखें हम भी ध्यान।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

जन्म–मृत्यु–एक रहस्य

एम. सी. दिवाकर
गन्ना विकास निदेशालय
भारत सरकार, कृषि एंव किसान कल्याण मन्त्रालय, लखनऊ

मानव जीवन इस संसार में दुबारा मिलना अति दुर्लभ है। कहा जाता है कि अनेक जन्मों के पुण्यों के पश्चात् ही चौरासी लाख योनियों में भटकते हुए मनुष्य को ईश्वर कृपा से मानव जीवन प्राप्त होता है। ईश्वर ने विनय द्वारा मनुष्य को बुद्धि और विवेक प्रदान किये हैं और अन्य जीवों से भिन्न व श्रेष्ठ बनाया है। इसके बावजूद विडंबना यह है कि ईश्वर की कृपा से इस दुर्लभ मानव देह पा कर भी हम माया के वशीभूत हो कर प्रायः परमानंद से विमुख ही रहते हैं। स्वभावतः संसार का प्रत्येक प्राणी आनंद ही चाहता है।

मनुष्य जन्म अपने आप में अनुपम है। जन्म और मृत्यु जीवन के दो पहलू हैं। सभी जीव इस निरंतर चलने वाले आवागमन के चक्र में फँसे हुए हैं। जब किसी व्यक्ति का जन्म होता है तो उसकी मृत्यु निश्चित है। संसार शब्द से अभिप्राय जन्म और मृत्यु के चक्र से है। जन्म और मृत्यु परमात्मा के हाथ में है। जीव को स्वयं ना तो जन्म चुनने का अधिकार है और ना ही मृत्यु प्राप्त करने का अधिकार है। जीव केवल जी सकता है। जीवन पर उसका कोई अधिकार नहीं होता। जब मृत्यु का समय आता है तो परमात्मा उसे अपने हाथों से मृत्यु नहीं देता। वह जीव को ऐसी प्रेरणा देता है कि वह स्वयं अपने आचरण एवं व्यवहार से जीवन नष्ट कर देता है। बुद्धि विवेक से नियंत्रित होती है। जब जीव का अंतकाल आता है तो उसकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है। वह अच्छे–बुरे का विचार छोड़ देता है। अच्छा आचरण छोड़ देता है। उसके शरीर से तेज नष्ट हो जाता है। शक्ति क्षीण हो जाती है। वह स्वयं ऐसा आचरण करने लगता है कि उसका जीवन अशांत हो जाता है। काम, वासना और क्रोध के कारण उसका सारा जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है, फलतः उसका जीवन स्वयं काल के गाल में प्रवेश कर जाता है। यदि मनुष्य निर्मल मन से परमात्मा को स्वयं समर्पित कर दे तो बात बनने में देर नहीं लगती है।

जन्म लेना और मरना हमारा धर्म नहीं है, बल्कि शरीर का धर्म है। हमारी आयु अनादि और अनंत है, जिसके अंतर्गत अनेक शरीर उत्पन्न होते हैं और मरते रहते हैं। जैसे हम वस्त्र बदलते रहते हैं, पर वस्त्र बदलने पर हम नहीं बदलते। हमारा शरीर वैसे ही रहता है। मनुष्य नई–नई वस्तु चाहता है तो भगवान भी उसे नई–नई वस्तु (शरीरादि सामग्री) देते रहते हैं। शरीर पुराना हो जाता है तो भगवान उसे नया शरीर दे देते हैं। अतः नई–नई इच्छा करना ही जन्म–मरण का कारण है। नई–नई इच्छा करने वालों को अनंत काल तक नयी–नयी वस्तु मिलती ही रहेगी। मनुष्य में एक इच्छा शक्ति है और एक प्राण–शक्ति है। इच्छा–शक्ति के रहते हुए प्राण–शक्ति नष्ट हो जाती है तब नया जन्म होता है। अगर इच्छा–शक्ति ना हो तो प्राण–शक्ति नष्ट होने पर जन्म नही होता।

जीवात्मा के शरीर में पहले बाल्यावस्था आती है फिर युवावस्था आती है अंत में वृद्धावस्था आती है। शरीर में कभी एक अवस्था नहीं रहती है, उसमें हमेशा वृद्धि एवं विकास होता रहता है। जैसे स्थूल शरीर बचपन से जवानी एवं जवान से बूढ़ा हो जाता है तो इन अवस्थाओं के परिवर्तन को ले कर कोई शोक नहीं होता है, ऐसे ही जीवात्मा इस शरीर से दूसरे शरीर में जाता है तो ऐसे में भी शोक नहीं करना चाहिये। जैसे बालकपन, जवानी एवं वृद्धावस्थाये हैं ऐसे देहांतर की प्राप्ति (मृत्यु के बाद दूसरा शरीर धारण करना) होती है। इससे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर के साथ साथ सूक्ष्म शरीर में भी परिवर्तन होता है। यदि जीवात्मा का परिवर्तन होता है तो अवस्थाओं के बदलने पर भी 'मै वही हूँ' ऐसा ज्ञान नहीं होता। परंतु अवस्थाओं के बदलने पर भी 'जो पहले बालक था, जवान था, वही मैं अब हूँ –ऐसा ज्ञान होता है। इससे सिद्ध होता है कि शरीर में अर्थात् स्वयं में परिवर्तन नहीं हुआ है।

शरीर की अवस्थाओं के बदलने पर तो ज्ञान होता है लेकिन शरीरांतर की प्राप्ति होने पर पहले के शरीर का ज्ञान क्यों नहीं होता है ? इसका मुख्य कारण यह है कि मृत्यु एवं जन्म के समय बहुत ज़्यादा कष्ट होता है। इस कष्ट के कारण से बुद्धि में पूर्व जन्म की स्मृति नहीं रहती जैसे लकवा मार जाने पर, अधिक वृद्धावस्था होने पर बुद्धि में पहले जैसा ज्ञान नहीं रहता, ऐसे ही मृत्युकाल में तथा जन्म काल में बहुत बड़ा धक्का लगता है और पूर्व जन्म का ज्ञान नहीं होता। परंतु जिसकी मृत्यु में ऐसा कष्ट नहीं होता अर्थात् शरीर का अवस्थानंतर की प्राप्ति की तरह अनायास ही देहांतर की प्राप्ति हो जाती है ऐसी स्थिति में याद्दाश्त रह सकती है। जो मनुष्य अचानक मृत्यु को प्राप्त हो फिर कहीं जन्म लेता है उनका पुराना संस्कार एवं पूर्व जन्म की स्मृति रहती है। इसलिये वे लोक में पूर्वजन्म की बातों के ज्ञान से युक्त हो कर जन्म लेते हैं। फिर ज्यों–ज्यों वे बड़े होने लगते हैं त्यों–त्यों स्वप्न जैसी वह पुरानी स्मृति नष्ट होने लगती है।

जीव अपने कर्मों का फल भोगने के लिये अनेक योनियों में जाता है, स्वर्ग और नरक में जाता है। इस तरह चौरासी लाख योनियों से स्वर्ग और नरक से छुटकारा पा जाता है, लेकिन स्वयं (आत्मा) वही रहता है। योनियाँ (शरीर) बदलती है, आत्मा नहीं बदलती। जीव एक रहता है तभी तो वह अनेक योनियों में, अनेक लोकों में जाता है, जो अनेक योनियों में जाता है वह स्वयं किसी के साथ लिप्त नहीं होता, कहीं नहीं फँसता। अगर वह लिप्त हो जाये, फँस जाये तो फिर चौरासी लाख योनियों को कौन भोगेगा ? स्वर्ग नरक में कौन जायेगा ? मुक्ति कौन पायेगा ? मुक्ति का अर्थ है कि जन्म–मरण के निरंतर चल रहे चक्र से छुटकारा पाना। यह केवल शरीर छोड़ने के बाद परलोक में ही मुक्ति मिल सकती है बल्कि इसे इसी जीवन में जीतेजी मरकर प्राप्त किया जा सकता है। इच्छारहित व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता। जब सभी इच्छाएं हृदय से निकल जाती हैं, वह नश्वर से अनश्वर हो जाता है। वह ब्रह्म को पा लेता है। इस शरीर में आत्मा शरीर रहित और अमर हो जाती है। यह परम ब्रह्म और प्रकाशमय हो जाती है।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय –3), लखनऊ

छमाही प्रगति

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–3) की बैठक का आयोजन दिनांक 28.06.2016 को भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में किया गया। बैठक की अध्यक्षता डा. ए.डी. पाठक, निदेशक, भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ ने की। बैठक के प्रारम्भ में नराकास (कार्यालय–3) के सचिव डा. ए. के. साह, प्रधान वैज्ञानिक तथा राजभाषा प्रभारी ने सभी सदस्य कार्यालयों से आये कार्यालय प्रमुखों एवं अन्य सदस्यों का स्वागत किया। साथ ही उन्होंने छमाही प्रतिवेदन की समीक्षा के आधार पर प्रस्तुतीकरण किया। उसके पश्चात् 10 सदस्य कार्यालयों को कार्यालयी कार्यो हेतु एवं 4 कार्यालयों को उनकी राजभाषा पत्रिका हेतु पुरस्कृत किया गया। कार्यक्रम का संचालन श्री अभिषेक कुमार सिंह, तकनीकी अधिकारी (राजभाषा) ने किया। कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथी के रूप में राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) से सुश्री प्रतिभा मलिक, उपनिदेशक (कार्यान्वयन), उत्तर क्षेत्र–2 ने भाग लिया। सदस्य कार्यालयों द्वारा कार्यालयी कार्यो में प्रथम एवं द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले संस्थानों से आये कार्यालय प्रमुखों एवं राजभाषा पत्रिका में प्रथम एवं द्वितीय स्थान पाने वाले कार्यालय प्रमुखों ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए।

कार्यालयी कार्यों हेतु पुरस्कृत कार्यालय

कार्यालयों का नाम	स्थान
मण्डल रेल प्रबन्धक कार्यालय, पूर्वोत्तर रेलवे, लखनऊ	प्रथम
पुलिस उप महानिरीक्षक (कार्यालय अध्यक्ष), ग्रुप केन्द्र, के.रि.पु.बल, बिजनौर, लखनऊ	द्वितीय
सीएसआईआर –भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ	तृतीय
मण्डल रेल प्रबन्धक, उत्तर रेलवे, लखनऊ	चतुर्थ
पुलिस महानिरीक्षक मध्य सेक्टर, के.रि.पु.बल, गोमती नगर, लखनऊ	पंचम
भारतीय सर्वेक्षण विभाग, लखनऊ	षष्टम
पासपोर्ट कार्यालय, लखनऊ	सप्तम
राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण, लखनऊ	सप्तम
क्षेत्रीय कार्यालय, केन्द्रीय रेशम बोर्ड, लखनऊ	अष्टम
अनुसंधान अभिकल्प और मानक संगठन, (रेल मंत्रालय), लखनऊ	नवम

पुरस्कृत राजभाषा पत्रिकाओं की सूची

विषविज्ञान संदेश : सीएसआईआर –भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ	प्रथम
मत्स्य लोक : भाकृअनुप–राष्ट्रीय मत्स्य आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ	द्वितीय
भू–दर्पण : भारतीय सर्वेक्षण विभाग, लखनऊ	तृतीय
लेखा भारती : रक्षा लेखा प्रधान नियंत्रक (मध्य कमान), लखनऊ	सांत्वना

शब्दकोश

(पिछले अंक के आगे)

A

Atmosphere-controlled	नियन्त्रित वातावरण
Atomic weight	परमाणु भार
Atrium	अलिन्द
Atropurpurens	गहरा बैंगन
Attenuated	क्षीण
Attractant	आकर्शी
Attributable	परिलक्षित
Attribute	गुण
Augar	वर्मी
Augmentation	संवर्धन
Augmentation cropping	संवर्धन फसल
Augumented crop	सहामक फसल
Auricled	पालियुक्त
Autocarp	स्वनिषेच फल
Autocataysis	स्वोत्प्रेरण
Autoclave	ऑटोक्लेव
Autoecious	एकाश्रयी
Autoecious rust	एकाश्रयी किट्ट
Autoecology	स्वपरिस्थितिकी
Autogamous	कवकयुग्मी
Autogamy	स्वममुत्पत्ति या स्वमुग्मन
Autogenesis	स्वत:जनन
Autogenetic	स्वजनित
Autogenic	स्वगत
Autoimmune	स्वप्रतिरक्षित
Autologous	स्वजात
Autolysis	आत्मलयन
Automatic planter	स्वचालित बुआई संयन्त्र
Automatic seed drill	स्वचलित वपित्र
Automycophagy	कवक स्वभोजिता
Autopartenogenesis	अन्मोन्म अनिषैकोत्पादन
Autophyte	स्वपोषपादप
Autoploid	स्वगुणित
Autopolyploid	स्वबहुगुणित
Autosome	देहगुणसूत्र मा अलिंगसूत्र
Autosome	अलिंगसूत्र
Autospore	जनकाभ बीजाणू
Autosynthesis	समजात गुणसूत्र मुग्मन
Autotomy	स्वखण्डन
Autotrophic	स्वपोषित
Autotropism	स्वप्रभावी
Autumn flowering	शरदी पुष्पन
Auxin	ऑक्सिन
Auxospore	प्रबलबीजाणु
Availability	प्राप्मता
Available	प्राप्म
Available form	प्राप्म अवस्था
Available nitrogen	उपलब्ध नत्रजन
Available water	प्राप्म जल
Average elasticity	औसत मूल्य सापेक्षता
Average holding	औसत जोत
Average marginal productivity	औसत सीमांत उत्पादकता
Average product per head	प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन
Average size of holding	औसत जोत का परिमाप
Average value	औसत मूल्य
Average yield	औसत उपज
Avirulence	अनुग्रता
Avirulent	अनुग्र
Axial	अक्षीय
Axil	अक्ष
Auxiliary bud	कक्षस्थ कलिका
Axial placentation	स्तंभीय बीजांडन्यास
Auxiliary bud	कक्षस्थ कलिका
Axis	अक्ष मा मुख्म धुरी
Axoneme	अक्षसूल
Axotonic	वृद्धि प्रेरित
Azonal soil	असूस्तरी मृदा
Azygoid	एकाकीसूत्री
Azygospore	अमुग्मनज
Azygote	अमुग्मज

B

Buccal aperture	मुख छिद्र
Buccate	सरस
Buck wheet	कुटू
Bud	कलिका
Bud injury	कलिका क्षति
Bud light	कलिका अंगमारी
Bud mutation	कलिका उत्परिवर्तन
Bud necrosis	कलिका क्षयन
Bud rot	कलिका विगलन
Bud selection	कलिका वरण
Bud shoot	कलिका प्ररोह
Bud stick	कलिका टहनी

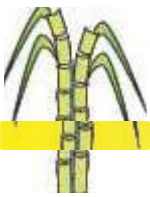

Budding	मुकुलन मा कामिक प्रवर्धन
Budding	चश्मा चढ़ना, मकुलन
Budding knife	चश्मा लगाने का चाकू
Buffer mixture	उभय प्रतिरोधी मिश्रण
Buffer- strip- cropping	उभय –प्रतिरोधी पट्टीदार खेती
Buffering	उभम प्रतिरोधन
Buffering capacity	उभम प्रतिरोधी क्षमता
Buffers	उभम प्रतिरोधक
Bulb	शल्ककन्द
Bulbar	कन्दीम
Bulbil	पत्र प्रकलिका
Bulblet	शल्ककंदिका
Bulk	स्थूलता, ढेर, अम्बार
Bulrush millet	बाजरा
Bunch variety	झुमका किस्म
Bundle	बंडल
Bundle sheath	पूलाच्छद
Bunt	वंटरोग
Burgundy mixture	बरगंडी मिश्रण
Burster	विभाजित
Butteress roots	पूष्ताजड़
Butterfly	तितली
By- product	उपजात
By-product	उपोत्पाद, गौण उत्पाद
Byssaceous	सूक्ष्मसूत्री
Byssoid	सूत्रवत

C

Cubeb	कबाब चीनी
Cuceerbit anthracnose	कुकरबिट भयामव्रण
Cucumber	खीरा
Cucurbits	खीरा वर्गीय
Culinary quality	पाक सम्बन्धी गुण
Culm	संधि स्तम्भ
Cultivable land	कृष्य भूमि
Cultivar	किस्म, कृषि जाति
Cultivate	जोतना, कृषि करना
Cultivated	कृष्ट मा कृष्म
Cultivated prototype	कृष्म प्रारूप
Cultivation	पालन, जुताई, संवर्धन
Cultivation	कृर्षण
Cultivation reduced soil	कम जुताई करना
Cultivator	किसान
Culturable land	कृष्य भूमि
Cultural control	परम्परागत नियन्त्रण
Cultural control	कृर्षण नियंत्रण
Cultural practice	भूपरिष्करणीम प्रक्रियाएर
Cultural practice	कृर्षण प्रक्रिया
Culture	खेती, जीवाणु समूह, संवर्धन या संवर्धक
Culture	संवर्धन, पालन
Culture filtrate	संवर्ध या संवर्धक के निस्संदक
Cumin	जीरा
Cumulus	कोशिका समुच्चम
Cuneate	फानाकार
Cupule	प्यालिका
Curl	कुंचन, मुड़ना
Curly top of tomato	टमाटर का कुंचिताग्र
Currant	किशमिश
Cuspidated	निशिताग्र
Custard apple	शरीफा
Cutivator	किसान, कल्टीवेटर मन्त्र
Cutting	कलम, कर्तन
Cutting	कलम
Cutworm	कर्तक कीट
Cyanocobalmin	सायनोकोबैलमिन
Cyathium	साऐथियम
Cycle	चक्र मा आवर्तन
Cyclic process	चक्रीम प्रक्रम
Cyclogenouss	बहिर्जात
Cyclosis	जीवद्रव्यभ्रमण
Cymbiform	नौकाकार
Cyme	सीमाक्षी
Cymose	ससीमाक्ष
Cypsela	सिप्सेला
Cyst	पुटी
Cystocarp	जनिफलिका
Cytochome system	साइटोक्रोम तंत्र
Cytogenes	कोशिकाजनन
Cytogenetic	कोशिकानुवंशिक
Cytogenetics	कोशिकानुवांशिकी
Cytogenous	कोशिकोत्पादक
Cytokinesis	कोशिकाद्रव्म विभाजन
Cytology	कोशिकी
Cytolysis	कोष्ठ क्षम
Cytopharynx	कोशिका ग्रसनी
Cytoplasm	कोशिका द्रव्म
Cytoplasm	कोशिका द्रव्य
Cytoplasmic inheritance	कोशिकाद्रव्य वंशागति
Cytosome	कोशिकाकाय
Cytotaxonomy	कोशिका वर्गिकी

D

Dwarf	बौना
Dwarf male	पुंतामन

Dwarf variety	बौनी किस्म
Dwarfism	वामनता
Dyad	द्विसंयुज
Dynamics	प्रावैगिकी, गतिकी
Dynamics	सक्रिय

E

Essential element	अनिवार्य तत्व
Essential fatty acid	आवशसक वसा अम्ल
Essential oil	सगंध तेल
Essential organ	जननांग
Establishment	सुस्थापित
Estimated	आकलन
Etaerio	पुंज
Eucarpic	अंशकाय फलिका
Euploid	सुगुणित
Eustele	सुरंभ
Eutrophic	सुपोषणी
Evaluation	मूल्यांकन
Evanescent	क्षणरथायी
Evaporation	वाष्पन
Evergreen	सदाहरित
Evert	बहिर्वलित
Evolution	विकास
Exalbuminous seed	ऐल्बुमिनहीन बीज
Exarch	बहिरादिदारूक
Excrescencece	अपवृद्धि
Excretion	उत्सर्जन
Exine	बह्वाचोल
Exo carp	बाह्वा फल भित्ती
Exodermis	बह्वा मूल त्वचा
Exogamy	वहिःजनन
Exogenous	बहिर्जात
Exotic	विदेशी
Exotoxin	बहिःआविशा
Exponential growth	चरधांतांकी वृद्धि
Extant	विद्यमान
Extension	प्रसार
Extinct	विलुप्त
Extracellutar	कोशिका बाह्वा
Extrachromosal inheritace	गुणसूत्र बाह्वा वंशागति

F

Fumigant	धूमक
Fungi	कवक
Fungicide	कवकनाशी
Funiculus	बीजांडवृत
Funiform	रज्जुभ
Furfuraceous	मृदु शल्की
Furrow	कूँड़
Fusiform	तर्कुरूप
Fusorium wilt	फ्यूजेरियम म्लानि
Fuzzy	रूयेदार

G

Guard cells	द्वार कोशिका
Guava	अमरूद
Gullet	ग्रसिका
Gully	अवनालिका
Gully head	अवनालिका
Gum	गोंद
Gumarabica	बबूल का गोंद
Gummosis	गोंदार्ति
Guttation	बिन्दु स्राव
Guttiferae	गटीफेरी
Gymnanthous	अनावृतपुष्पी
Gymnocarp	अनावृत हाइमीनियम
Gymnogynous	अनावृतजायांगी
Gymnosperm	अनावृतबीजी
Gynaeceum	जायांग
Gynandrous	पुजायांगी
Gynodioecious	अभिन्न स्थोभय स्त्रीलिंगी
Gynophore	जायांगधर
Gynotermone	स्बीटर्मोन
Gyrose	संवलित

H

Hygrochase	आर्द्रता – विकृत
Hygroscopic	आर्द्रताग्राही
Hygroscopic moisture	असंजित आर्द्रता
Hygrostat	आर्द्रतास्थापी
Hylodophyte	शुष्कवन पादप
Hypanthium	पुष्पाक्ष स्फीत
Hyperhaline	अतिलवणशील
Hyperplasia	अतिवर्धन
Hypersensitive reaction	अतिसंवेदनशील प्रतिक्रिमा
Hypersensitivity	अतिसंवेदनशीलता
Hypertonic	अतिपरासरी
Hypertophy	अतिवृद्धि
Hyphae	कवक तन्तु
Hypnesperm	सुप्तयुग्माणु
Hypobasal	अधराधार
Hypobasal cell	अधराधार कोशिका
Hypocotyl	बीजपत्राधर
Hypodermic	अधस्त्वक
Hypodermis	अधस्त्वचा
Hypogeal	अधोभूमिक
Hypogedl germination	अधोभूमिक अंकूरण
Hypogyny	जायांगधरता

Hyponasty	अधोवृद्धि बर्तन
Hyponasty	उपरिभूस्तारी तन्तु
Hypostatic	अभिभूत
Hypotonic	अल्प परासारी

L

Lysigenoma	लपन जातांग
Lysis	लपन करना
Lysogeny	लपनजकता
Lysosome	लयनकाय

M

Mycelium	कवकजाल
Mycology	कवक विज्ञान
Mycoprotein	कवक प्रोटिन
Mycorhiza	कवकमूल
Mycotrophic	कवक सहपोषित
Myriosporous	बहुबीजाणवी
Myrmechochorus	पिपीलिका प्रकीर्ण
Myrsinaceae	मिर्सिनेसी
Myrtaceae	मर्टेसी
Myrtle	मरटिल
Myxamoeba	श्लेष्म अमीबा

N

Nyctinastic	निशानुकुंची
Nyctitropic	निशनुवर्त्ती
Nymph	अर्भक, शिशु कीट
Nymphaeaceae	निम्फिएसी
Nyssaceae	नायसेसी

O

Ovary	अण्डाशम
Ovate	अण्डाकार
Overlap	अतिव्याप्ति
Overlap cropping	अविराम खेती
Overview	सिंहावलोकन
Ovicidal	अण्डे नष्ट करने वाले कीटनाशी
Ovule	बीजाण्ड
Ovule bearing	बीजांडधारी
Ovum	अण्डाणु
Oxidation	ऑक्सीकरण, उपचयन
Oxidizing	उपचामक
Oxylophyte	अम्लोद्भिद्

P

Psammon	बालुकावासी
Psammophyte	बालुकोद्भिद्
Pseudoallele	कूट विकल्पी
Pseudocarp	अभासी फलिका
Pseudocolpus	कूट विदरकी
Pseudoembryo	अभासी भ्रूण
Pseudogamy	अभासी युग्मन
Pseudoparenchyma	अभासी मृदुतक
Pseudoperianth	कूटसहपत्रपूंज
Pseudothecium	स्थूडोथीसियम
Pterocaulous	पक्षस्तंभी
Ptyxis	किसलय विलन
Pubescent	तरुण, रोमिल
Pubescent	श्रोमिल
Puckered	झुर्रीदार मा संकुचित
Pudding	पुडिंग
Pulvinus	पूर्णवृंततल्य
Pumpkin	कद्दू
Pure culture	शुद्ध संर्ध्य
Pure line	विशुद्ध वंशक्रम
Purity percentage	शुद्धता प्रतिशत
Purity test	शुद्धता जॉच
Purpule	बैंगनी
Purpureus	नील लोहित
Pygmy	बौना
Pyrenocarp	पाइरीनोकार्प
Pyrenoid	पाइरीनॉइड
Pyric climax	आग्नेय चरम
Pyrimidine	पिरिमिडीन

R

Rubber plant	रबड़ पौधा
Rubiaceae	रूबिएसी
Rubiginous	किट्टपर्णी
Ruffing	उत्कुंचन
Rufous	रक्ताभ
Rugose	रूक्षपृष्ठी
Rumination	चर्बिताभन
Run- off	अपवाह
Runner	धावक, उपरिभूस्तारी
Rush	नड़, सरपत
Rust	किट्ट
Rust disease	किट्ट रोग
Rutaceae	रूटेसी

S

Sub marginal	अवसीमान्त
Sub sampling	उपप्रतिचयन
Sub shrub	उपक्षुप
Suberin	सुवेरिन
Sublimation	उर्ध्वपातन
Submarginal	अवसीमान्त
Suborder	उपगण
Subsistence crop	निर्वाह सस्य
Sub-soil	अवमृदा

Subsoiling	अवभूमि गहरी जुताई
Subspecies	उपजाति
Substandard seeds	अवमानक बीज
Substrate	अध: स्तर
Subsurface irrigation	अधस्तरीय सिंचाई
Subtropical	उपोष्ण
Subtropical climate	उपोष्ण जलवायु
Subtropical horticulture	उपोष्ण बागवानी
Succession	अनुक्रम
Sucker	चुषक
Summary	संक्षेपण
Summation	संकलन
Sun brying	आयतन
Supercooling	अतिशीतलन
Superficial	सतही
Superficial placentation	परिभित्तिय बीजांडन्यास
Supplementary	अनुपूरक
Supplemented	न्यूनतापूर्ति
Support crop	आधार फसल
Surface	सतह
Surface	पृष्ठीम
Surface soil	पृष्ठ मृदा
Survey	सर्वेक्षण
Survey data	सर्वेक्षित ऑकड़े
Survival	उत्तरजीविता
Susceptibility of infection	संक्रमण ग्राह्यता
Susceptible	सुग्राही
Suspension	निलंबन
Sustainability	टिकाऊपन
Sustainable resource	टिकाऊ संसाधन
Swamp	अनूप
Sward bean	सेमा
Sweating	जीवाणु किया
Sweep	प्रसर्प
Sweet pepper	स्वीट पैपर
Sweet potato	शकरकंद
Syconus	अंजीरफल
Symbiont	सहजीवी
Symbiosis	सहजीवता
Symbiotic	सहजीवी
Symphogenesis	बहुतंतुजन
Synapsis	सूत्रयुग्मन
Syncarpous	युक्तांडपी
Syndrome	लक्षण
Synergy	सहक्रिमा
Syngamy	युग्मक–संलयन
Synpetalous	संयुक्तदली
Synthesis	संश्लेषण
Synthetic	कृत्रिम
Systasis	सहस्थिति
Systematic	क्रमबद्ध
Systematic sampling	क्रमबद्ध प्रतिचयन
Systemic	संर्वांगी
Systemic infection	सर्वांगी प्रचंडता

T

Twig	टहनी
Twin	यमज
Twiner	वल्लरी
Twins	जुड़वां

U

Urticle	दृति
Uvarius	द्राक्षगुच्छाभ

V

Volatile	सुवाशप्य
Volume	आयतन
Vulgaris	सामान्य

W

Wood	काष्ठ
Wood lot	वृक्ष क्षेत्र
Working collection	कार्मसाधक संग्रहण
Workshop	कार्मशाला
Wound	घाव
Wrapping	लपेटना

Y

Yield	उपज
Yield trial	उपज परीक्षण
Yound seed	तरूण बीज

Z

Zygote lethality	युग्मनाज धातक
Zymogenesis	किण्वजन

अभिषेक कुमार सिंह
सी.पी. सिंह

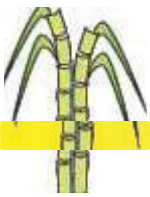

आपके पत्र

LIBRARY AND INFORMATION DIVISION
ICAR RESEARCH COMPLEX FOR N E H REGION
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
UMROI ROAD , UMIAM. MEGHALAYA - 793 103

RC(Lib)1/2015 -2016 Dated Umiam, the 22nd Jun 2016

To

Dr. A. K. Saha P.S.
ICAR- Indian Institute of Sugarcane Research
Rae Bareli Road, Dilkusha, Lucknow 226002 (U.P.)

Subject : Acknowledgement - regarding

Sir/Madam,

I am directed to acknowledge with thanks the receipt of the following publications forwarded with your office letter No. 10-16/88/2016-17 dt. 8.6.2016

1 - इक्षु (वर्ष 4 अंक 2 जुलाई - दिसंबर 2015)
2
3
4
5

Thanking you ,

Yours faithfully,
(S. Borgohain)
Library & Information Officer

श्री अभिषेक

Phone: 0522-2841022-24
Fax: 0522-2841026
Web : www.cishlko.org
e-mail : cishlibrary@gmail.com

भा.कृ.अनु. परिषद – केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
पुस्तकालय, सूचना एवं सूचीकरण यूनिट
रहमानखेड़ा, डाकघर काकोरी, लखनऊ– 226 101
ICAR-Central Institute For Subtropical Horticulture
Library, Information & Documentation Unit
Rehmankhera, P.O. Kakori, Lucknow – 226 101

फा.सं.54–1/2015/2015–16/ 11070 दिनांक 14.06.2016

सेवा में,
डा. ए. के. साह
प्रभारी राजभाषा प्रकोष्ठ एवं प्रधान वैज्ञानिक (प्रसार)
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पो0 दिलकुशा
लखनऊ –226 002

विषय: पावती 'इक्षु' राजभाषा पत्रिका वर्ष 4 अंक 2 जुलाई–दिसम्बर, 2015.

महोदय,

"इक्षु राजभाषा पत्रिका वर्ष "4 अंक 2 जुलाई–दिसम्बर, 2015" दिनांक 13.06 2016 को एक प्रति प्राप्त हुई। जो कि हमारे संस्थान के पुस्तकालय पाठकों के लिए सन्दर्भ के रूप में उपयोगी होगी।

राजभाषा पत्रिका इक्षु भेजने के लिए अति सधन्यवाद।

भवदीय

अध्यक्ष 14/6/2016
पुस्तकालय सलाहकार समिति

समाचार प्रभाग

'किसानों को समय से करें भुगतान'

बिड़ला शुगर मिल के निदेशक को लाइफ टाइम अचीवेंट अवार्ड

राजभाषा हिंदी के प्रयोग पर 10 कार्यालयों को मिला पुरस्कार

दैनिक जागरण

हिंदी पर बैठक आज

गन्ना अनुसंधान संस्थान में तकनीकी मेला

स्मार्ट सिटी के साथ अब स्मार्ट विलेज भी

10 मदरसों में स्किल डिवेलपमेंट प्रोग्राम शुरू

किसान अब घर बैठे बेच सकेंगे उत्पाद : गृहमंत्री

ई-प्लेटफार्म

300 स्मार्ट विलेज भी बनाएगा केन्द्र

केंद्र सरकार बनाएगी 300 स्मार्ट गांव

प्रदेश सरकार की उपेक्षा से चीनी मिलें बंद : राधामोहन सिंह

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन

जनसंदेश टाइम्स

गन्ने की फसल पर व्यवहारिक शोध जरूरी: डॉ.सोलोमन

उन्नत किस्में अपनाएं गन्ना किसान

गन्ना उत्पादन बढ़ाएं, चीनी की लागत घटाएं

हिंदी कार्यशाला

29 मार्च, 2016

28 जून, 2016

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना जागरूकता कार्यक्रम

कृषि विज्ञान केंद्रों का वार्षिक क्षेत्रीय कार्यशाला

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय-3), लखनऊ

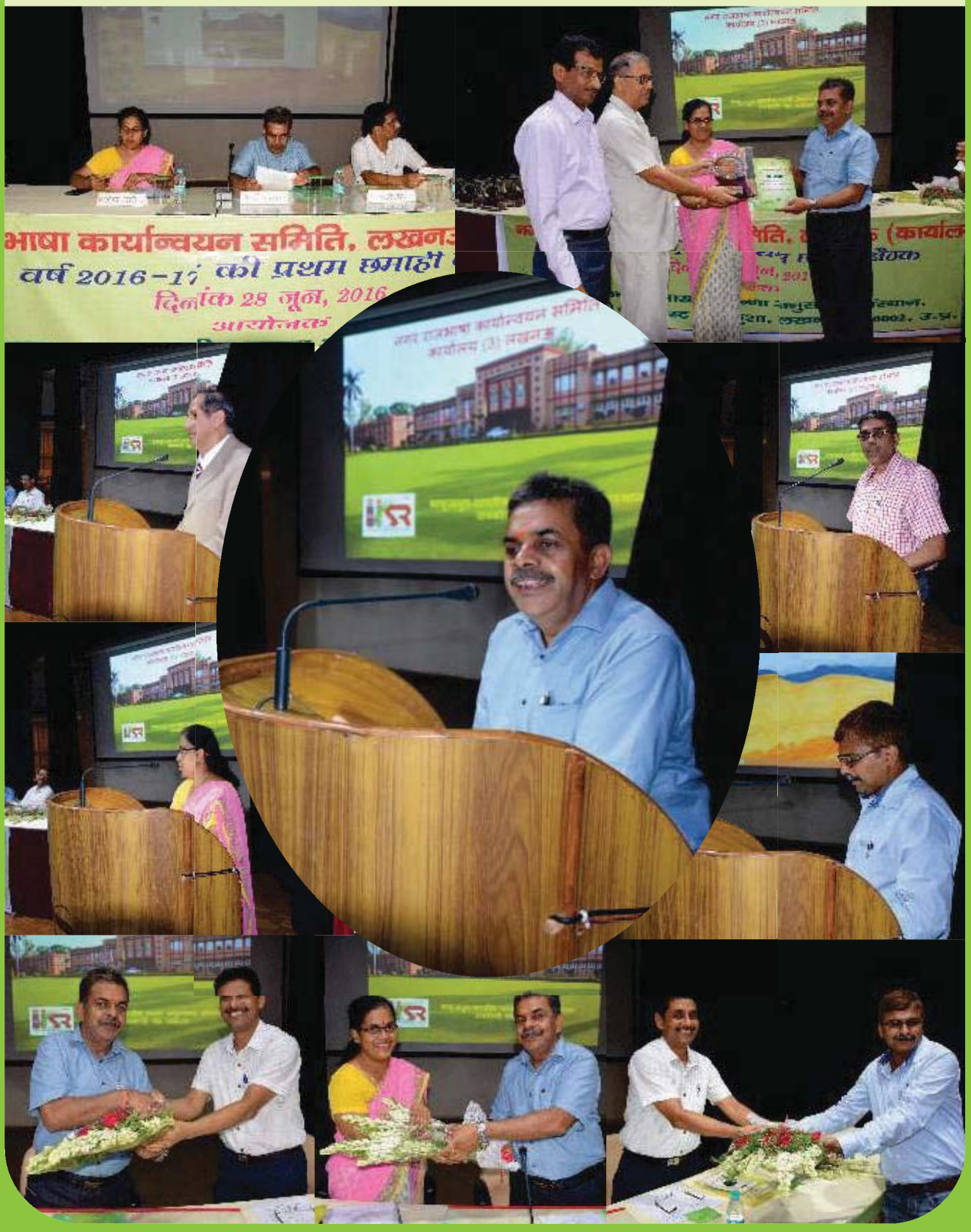

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–3), लखनऊ

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agri search with a human touch

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

विजन

प्रभावी, वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा जीवन्त गन्ना कृषि विकसित करना।

मिशन

भारत में चीनी और ऊर्जा की भावी आवश्यकता को पूरा करने के लिए गन्ने के उत्पादन, उत्पादकता, लाभदेयता तथा टिकाऊपन में वृद्धि करना।

अधिदेश

- गन्ने तथा अन्य शर्करा फसलों के उत्पादन एवं सुरक्षा तकनीकों के सभी पक्षों पर मूलभूत एवं प्रयुक्त शोध करना
- गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर के सहयोग से उपोष्ण क्षेत्रों हेतु प्रजातियों के प्रजनन का कार्य करना
- गन्ना में फसल विविधता एवं मूल्य संवर्द्धन पर अनुसंधान
- समन्वित शोध, सूचना तथा प्रजनन सामग्री के परस्पर आदान–प्रदान हेतु राज्य कृषि विश्वविद्यायलयों, शोध संस्थानों और अन्य संस्थानों के साथ सहयोग स्थापित करना।
- क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर कृषकों, उद्योगों तथा अन्य उपयोगकर्ताओं को प्रशिक्षण, सलाह और विशेष सेवाएं प्रदान करना।

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर